



THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ४४

SH-11



हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

[भाग १]

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण

१९५६ ई०

मूल्य ढाई रुपये

मुद्रक
ओम्प्रकाश कपूर
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय
कबीरचौरा, बनारस, ४८०७-१२

दो शब्द

जैन साहित्य विशाल है। इस साहित्यका विपुल भाग अपभ्रंश और हिन्दी भाषामें लिखा गया है। अपभ्रंश भाषा हिन्दीकी जननी है। हिन्दीका विकास और विस्तार अपभ्रंशसे ही हुआ है। शैली एवं आकृतिगठनमें हिन्दी अपभ्रंश भाषाकी ऋणी है। हिन्दीमें महाकाव्यों का प्रणयन संस्कृत साहित्यके महाकाव्योंके आधारपर नहीं हुआ है, बल्कि अपभ्रंश भाषाके महाकाव्योंके आधारपर हुआ है। रामचरित-मानस और पद्मावत जैसे प्रसिद्ध काव्यग्रन्थोंकी शैली अपभ्रंशकी है। देशीभाषामें भी जैन कवियोंने अनेक काव्यग्रन्थोंका निर्माण किया है। इस भाषामें भी अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य और गीतिकाव्य लिखे गये हैं। अतः प्रत्येक निष्पक्ष जिज्ञासुके हृदयमें इतने विशाल साहित्यके जाननेकी इच्छा बराबर हुआ करती है।

साहित्यरत्नके विद्यार्थियोंको अध्यापन कराते समय मुझे अनेक आलोचनात्मक प्रश्नोंको देखनेका अवसर मिला। श्री डॉ० रामकुमार वर्मा, आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार और आलोचकोंने जैन साहित्यके विवेचनके समय केवल अपभ्रंश भाषामें निबद्ध साहित्यपर ही विचार किया है तथा यह विचार भी उपलब्ध अपभ्रंश साहित्यको देखते हुए अपर्याप्त ही है। हिन्दी जैन साहित्यके अमूल्य रत्नोंके अवलोकनका समय या अवसर हिन्दीके हमारे मान्य आलोचकोंको मिला ही नहीं, इसके कई कारण हैं—सबसे प्रबल एक कारण तो यह है कि हिन्दी जैन साहित्य अभी सर्वसाधारणके लिए उपलब्ध नहीं है। अधिकांश उच्चकोटिके ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित हैं। जो प्रकाशित भी हैं, वे भी समीको उपलब्ध नहीं तथा उनकी छपाई-सफाई आदि बहुत प्राचीन एवं निम्नस्तरकी है, जिससे एक सुरुचि सम्पन्न पाठकको ऐसी पुस्तकें छूनेका भी साहस नहीं होता। अतः अधिकांश आलोचक जैन साहित्यके सम्बन्धमें यही लिखकर छोड़ देते हैं कि इस साहित्यका भाषाकी दृष्टिसे महत्त्व है, विचारोंकी दृष्टिसे नहीं।

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

पर वास्तविकता इससे बहुत दूर है ; क्योंकि जैन साहित्यका भाषाकी दृष्टिसे उतना महत्त्व नहीं, जितना विचारोंकी दृष्टिसे है। इस साहित्यमें मानवताको अनुप्राणित करनेवाली भावनाओंकी प्रचुरता है। ससारके किसी भी साहित्यके समक्ष इस साहित्यको तुलनाके लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। नवसमयी हृदयको आन्दोलित करनेवाली पिच्छिल रसधारा इस साहित्यमें विद्यमान है। शब्द और अर्थकी नवीनता, शब्दों के सुन्दर विन्यास, भावोंका समुचित निर्वाह, कल्पनाकी ऊँची उड़ान, मानवके अन्तरंग और बहिरंगका सजीव विश्लेषण इस साहित्यमें सर्वत्र मिलेगा। अतः हृदयमें एक भावना उत्पन्न हुई कि कतिपय हिन्दी जैन ग्रन्थोंका अध्ययन कर एक अनुशीलन प्रस्तुत किया जाय। यद्यपि हिन्दी भाषामें निबद्ध जैन साहित्य विशाल है, उसका सागोपाग अनुशीलन प्रस्तुत करना, तनिक कठिन है, तो भी इस प्रयासमें लब्धप्रतिष्ठ कवियों एवं लेखकोंकी प्रमुख रचनाओंका परिशीलन उपस्थित करनेका आयास किया गया है।

अपभ्रंश भाषाका साहित्य इतना विशाल है कि इस साहित्यपर एक बृहत्काय अनुशीलनात्मक ग्रन्थ लिखना आवश्यक है, अतएव प्रस्तुत परिशीलनमें इस भाषाकी दो-एक रचनाएँ ही ली गई हैं। मैंने अपनी रुचिके अनुसार महाकवि स्वयम्भूदेव, पुष्पदन्त, धनारसीदास, मैया भगवतीदास, भूधरदास, दानतराय, दौलतराम, वृन्दावन प्रभृति प्राचीन हिन्दी जैन कवियों एवं अनूपगर्मा, धन्यकुमार सुपेश, बालचन्द्र एम. ए. आदि नवीन कवियोंकी उन्हीं रचनाओंका परिशीलन प्रस्तुत किया है, जो मुझे रुचिकर हुई हैं।

यह परिशीलन दो भागोंमें प्रकाशित हो रहा है। प्रथम भागमें प्राचीन कवियोंकी काव्य रचनाओंका परिशीलन है तथा इस परिशीलन में भी सभी प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ नहीं भी आ सकी हैं। रचनाओं का निर्वाचन मैंने किमी क्रमसे नहीं किया है और न रचनाओंके मान-दण्डको ही प्रधानता दी है। जो ग्रन्थ मेरे अध्ययनका विषय रहा है तथा किसी भी कारणसे जो मुझे प्रिय है, उसीका परिशीलन उपस्थित किया

दो शब्द

गया है। अतः बहुत संभव है कि श्रेष्ठ रचनाएँ छूट भी गयी हों और निम्न कोटिकी रचनाओंको स्थान मिल गया हो।

मेरी इच्छा इस परिशीलनमें कवि और उनकी रचनाओंके सम्बन्धमें ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत करने की थी, किन्तु जिन दिनों इस परिशीलनको तैयार कर रहा था, उन दिनों श्री बाबू कामताप्रसादजीका 'हिन्दी जैन साहित्यका सभित इतिहास' प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तककी ऐतिहासिक भूलोंपर जैन आलोचकोंकी रोष-चिनगारियाँ उदबुद्ध हो रही थीं, अतएव ऐतिहासिक क्षेत्रमें कदम बढ़ानेका साहस नहीं हुआ। भूल होना स्वभाविक बात है, अतः प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण है। आलोचकोंका कर्त्तव्य है कि सहिष्णुतापूर्वक आलोचना करते हुए भूलोंकी ओर संकेत करें। उन आलोचनाओंको देखकर मुझे ऐसा लगा कि कतिपय लब्धप्रतिष्ठ प्राचीन लेखक नवीन लेखकोंको इस क्षेत्रमें आया हुआ देखकर असहिष्णु हो उठते हैं और सहानुभूति एवं सहृदयतापूर्वक आलोचना न कर तीव्र रोष और क्षोभ दिखलाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आज जैन साहित्यपर आलोचना-प्रत्यालोचनात्मक ग्रन्थोंका प्रायः अभाव है। नवीन लेखकोंको कहींसे भी प्रोत्साहन नहीं मिलता, बल्कि निराशा ही मिलती है। कतिपय ग्रन्थमालाओंसे उन्हीं विद्वानोंके ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं, जो उनसे सम्बद्ध हैं या उन सम्बद्ध विद्वानोंके मित्र हैं। कहनेके लिए समाजोंमें हमारे मान्य आचार्य बहुत कुछ कह जाते हैं, पर वे अपने हृदयको टटोलें कि सत्य क्या है? यदि ख्यातनामा विद्वान् प्रोत्साहन दें और नवीन लेखकोंका मार्ग प्रदर्शन करें तो जैन साहित्यपर बेजोड़ कृतियाँ शीघ्र ही प्रकाशमें आ सकती हैं। अस्तु,

परिशीलन शब्द परि उपसर्ग पूर्वक शील घातसे भाव अर्थमें ल्युट् प्रत्यय करनेपर बनता है, जिसका अर्थ होता है सभी दृष्टियोंसे आलोडन-विलोडन कर अध्ययन प्रस्तुत करना। उपर्युक्त अर्थकी दृष्टिसे तो इस कृतिका नाम सार्थक नहीं है, यतः समस्त दृष्टिकोणोंसे रचनाओंका शीलन नहीं किया गया है, पर इस शब्दका व्यावहारिक और प्रचलित अर्थ यह भी लिया जाता है कि शास्त्रीय दृष्टिसे रचनाओंका विश्लेषण करना। मेरी दृष्टि प्रधानतः यह रही है कि परिशीलित रचनाओंका कथानक भी अवश्य दिया जाय। क्योंकि जैन साहित्यकी अधिकांश कथाएँ इस प्रकारकी हैं, जिनका आधार लेकर श्रेष्ठतम नवीन काव्य लिखे जा सकते हैं। अतएव आलोचनाके साथ कथावस्तु देनेकी चेष्टा की गयी है।

हिन्दो-जैन-साहित्य-परिशीलन

इस परिशीलनके तैयार करनेमें वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्री प० नाथूरामजी प्रेमीसे मुझे पर्याप्त सहयोग मिला है। आपने एकवार इसे आद्योपान्त देखा तथा अपने बहुमूल्य सुझाव उपस्थित किये, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। नींवकी ईंटकी तरह समस्त भार वहन करनेवाले श्री प० अयोध्याप्रसादजी गोयलीयका आभार प्रकट करनेके लिए मेरे पास शब्द नहीं। आप एकवार आरा पघारे थे, मैंने उस नमय इस कृतिके कुछ अंश पढ़कर आपको सुनाये। आपने मेरी पीठ टोकी, फलतः आपके द्वारा प्राप्त उत्साहसे यह रचना कुछ ही समयमें तैयार हो गयी। इस कृतिको परिष्कृत रूप देनेका श्रेय लोकोदय ग्रन्थमालाके सुयोग्य सम्पादक श्री बाबू लक्ष्मीचन्द्रजी जैन एम०ए० को है, आपने इसे संक्षिप्त रूप देकर एक कुशल मालीका कार्य किया है। अन्यथा इस कृतिके पाँच-पाँच सौ पृष्ठके दो भाग होते। प्रेस-कापी तैयार करनेमें श्रीजैन बालाविश्राम आराकी साहित्य विभागकी छात्राओं, वहाँके शिक्षक श्री प० माधवराम शास्त्री और अपने भतीजे आयुष्मान् श्रीराम तिवारीसे भी पर्याप्त सहयोग मिला है। परामर्श प्राप्त करनेमें पूज्य भाई प्रो० खुशालचन्द्रजी गोराला एम० ए०, साहित्याचार्य, मित्रवर बनारसीप्रसाद 'भोजपुरी', प्रो० रामेश्वरनाथ तिवारीसे भी समय-समयपर सहयोग प्राप्त होता रहा है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके अधिकारी एवं प्रोफ़ेसर्सोघनमें सहायक श्री चतुर्वेदीजीका भी हृदयसे आभारी हूँ। समस्त ग्रन्थोंकी प्राप्ति जैन-सिद्धान्तभवन आराके ग्रन्थागारसे हुए, अतः उस पावन-संस्थाके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। अन्तमें समस्त सहायक महानुभावोंके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

जैनसिद्धान्त भवन, आरा }
२ फरवरी ५६

—नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

<p style="text-align: center;">प्रथमाध्याय</p> <p>हिन्दी जैन साहित्यका प्रादुर्भाव १९</p> <p>दार्शनिक आधार २२</p> <p>पुरातनकाव्य साहित्य २७</p> <p>हिन्दी जैन प्रबन्ध-काव्य २८</p> <p>देवी मापाके जैन प्रबन्ध- काव्य २९</p> <p>देवी भाषाके प्रबन्ध-काव्यों- का जायसी, तुलसी तथा हिन्दीके अन्य कवियोंपर प्रभाव ३१</p> <p>अपभ्रंशके वादकी पुरानी हिन्दीके जैन प्रबन्ध- काव्य ३९</p> <p>हिन्दी जैन साहित्यके पर- वर्ती प्रबन्ध-काव्य ४१</p> <p>हिन्दी जैन महाकाव्य ४२</p> <p>पञ्चमचरित-पञ्चचरित्र [जैन रामायण] ४३</p> <p>तिसट्ठिमहापुरिस- गुणालकार ४८</p> <p>सुदर्शन-चरित ४९</p>	<p style="text-align: center;">पार्श्वपुराण</p> <p>हिन्दी जैन खण्डकाव्य ५३</p> <p>नागकुमार-चरित ५४</p> <p>यशोधर-चरित ५४</p> <p>जम्बूस्वामीरासा ५५</p> <p>अन्य रासा ग्रन्थ ५५</p> <p>नेमिचन्द्रिका ५९</p> <p>चरित्र और कथाकाव्य ६२</p> <p>गजसिंह गुणमाल-चरित ६४</p> <p>श्रीपाल-चरित ६६</p> <p>चन्द्रप्रभ-चरित ६७</p> <p style="text-align: center;">द्वितीयाध्याय</p> <p>हिन्दी-जैन-गीतिकाव्य और उसकी इतर गीतिकाव्यसे तुलना ७३</p> <p>जैन पदोमे संगीतात्मकता ७४</p> <p>जैन-पदोंमें आत्मनिष्ठा और वैयक्तिकता ७७</p> <p>समन्वित अभिव्यक्ति ७९</p> <p>कवि बनारसीदासके पद ८०</p> <p>मैया भगवतीदासके पदः परिचय और समीक्षा ८२</p>
--	--

आनन्दघनके पद : परिचय		चेतन कर्म-चरित्र	१५५
और समीक्षा	८४	गत-अष्टोत्तरी	१६५
यशोविलयके पद : परिचय		मधुविन्दुक चौपाई	१७३
और समीक्षा	८६	पञ्चमाध्याय	
भूधरदासके पद : परिचय		प्रकीर्णक काव्य	१७८
और समीक्षा	८७	सक्तिसुक्तावली	१८२
द्यानतरायके पद : परिचय		ज्ञानत्रावनी	१८३
और समीक्षा	९०	अनित्यपञ्चीसिका	१८५
दौलतरायके पद : परिचय		उपदेश-शतक	१८७
और समीक्षा	९१	दानत्रावनी	१८९
कवि भागचन्द्रके पद :		व्यौहारपञ्चीसी	१९०
परिचय और समीक्षा	९८	पूर्णपञ्चासिका	१९२
कवि बुधजनके पद : परि-		भूधर-शतक	१९४
चय और समीक्षा	१००	बुधजन सतसई	१९९
कवि वृन्दावनके पद :		नेमिव्याह	२०१
परिचय और समीक्षा	१०२	वारहमासा नेमिरात्रुल	२०२
पद्माका तुलनात्मक विवेचन	१०३	छहदावा	२०५
तृतीयाध्याय		छठवाँ अध्याय	
ऐतिहासिक गीतिकान्य	१२८	आत्मकथा काव्य	२०८
चतुर्थाध्याय		सातवाँ अध्याय	
आध्यात्मिक रूपक काव्य	१३८	रीति-साहित्य	२२०
नाटक समयसार	१४०	रससिद्धान्त	२२४
तेरह काडिया	१४७	अलंकार	२३६
भवसिन्धुचतुर्दशी	१५२	छन्दशास्त्र	२३८
अव्यात्म हिंदोलना	१५५	क्रोप	२४०

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

•

प्रथमाध्याय

हिन्दी-जैन-साहित्यका प्रादुर्भाव

प्राचीन परम्परामें साहित्यको सनातन सत्यकी उपलब्धिका साधन माना है। इसीलिए कतिपय मनीषियोंने “आत्म तथा अनात्म भावनाओंकी भव्य अभिव्यक्तिको साहित्य कहा है। यह साहित्य किसी देश, समाज या व्यक्तिका सामयिक समर्थक नहीं, बल्कि सार्वदेशिक और सार्वकालिक नियमोंसे प्रभावित होता है। मानवमात्रकी इच्छाएँ, विचार-धाराएँ और कामनाएँ साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं। इसमें हमारे वैयक्तिक हृदयकी भोति सुख-दुःख, आशा-निराशा, भय-निर्मयता एवं हास्य-रोदनका स्पष्ट स्पन्दन रहता है” आन्तरिक रूपसे विश्वके समस्त साहित्योंमें भावों, विचारों और आदर्शोंका सनातन साम्य-सा है; क्योंकि आन्तरिक भाव-धारा और जीवन-भरणकी समस्या एक है। प्राकृतिक रहस्योंसे चकित होना तथा प्राकृतिक सौन्दर्यको देखकर पुलकित होना मानवमात्रके लिए समान है। अतएव साहित्यमें साधना और अनुभूतिके समन्वयसे समाज और ससारसे ऊपर सत्य और सौन्दर्यका चिरन्तन रूप पाया जाता है। इसीकारण साहित्यकार चाहे वह किसी भी जाति, समाज, देश और धर्मका हो अनुभूतिका भाण्डार समान रूपसे ही अर्जित करता है। वह सत्य और सौन्दर्यकी तहमें प्रविष्ट हो अपने मानससे भगवत्शिरूपी सुप्ताओंको चुन-चुनकर शब्दावलीकी लड़ीमें शिवकी साधना करता है।

सौन्दर्य-पिपासा मानवकी चिरन्तन प्रवृत्ति है। जीवनकी नश्वरता और अपूर्णताकी अनुभूति सभी करते हैं, सभी इसका मर्म जाननेके लिए उत्सुक रहते हैं, इसी कारण साहित्य अनुभूतिकी प्राचीन उदय होता है। मानवके भीतर चेतनाका एक गूढ़ और प्रबल आवेग है, अनुभूति इसी आवेगकी, सच्ची, सजीव और साकार लहर है। इस अनुभूतिके लिए

व्यक्ति, धर्म, जाति, समाज और देशका तनिक भी बन्धन अपेक्षित नहीं। इसी कारण मनीषियोंने आत्म-दर्शनको ही साहित्यका दर्शन माना है, अपनेमें जो आभ्यन्तरिक सत्य है, उसे देखना और दिखलाना साहित्य-कारकी चरम साधना है।

जैन-साहित्य-स्रष्टाओंने अखण्ड चैतन्य आनन्दरूप आत्माका ही अपने अन्तस्में साक्षात्कार किया और साहित्यमे उसीकी अनुभूतिको मूर्त रूप प्रदान कर सौन्दर्यके शाश्वत प्रकाशकी रेखाओ-द्वारा वाणीका चित्र अंकित किया। इन्होंने अपनी अनुभूतिको आत्म-साधनाका विषय बनाकर चिरन्तन मगल-प्रभातका दर्शन किया। इन्होंने आभ्यन्तरिक धरातलमें अंकुरित अशान्ति एवं असन्तोषका उपचार ऊपरी सतहपर लगे दोषोंके परिमार्जनसे न कर प्रस्फुटित अनुभूतिके झरनेमें मज्जन कर, किया।

जैन-साहित्यकारोंने अधूरी और अपूर्ण मानवताके मध्यमें उस सक्रान्ति एवं उथल-पुथलके युगमें, जब कि भारतकी राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ प्रबल वेगके परस्पर साथ परिवर्तित होती जा रही थीं, खड़े होकर पूर्ण मानवका आदर्श प्रस्तुत किया। जैनाचार्य आरम्भसे ही लोक-भाषामें मानवताका पाठ पढ़ाते आ रहे हैं। भगवान् महावीरका उपदेश भी उस कालकी सार्वजनीन अर्धमागधी भाषामें हुआ था। अतः सातवीं-आठवीं शतीमें जैन-लेखकोने प्राकृत और संस्कृतका पछा छोड़ प्रताड़ित और बिखरी हुई मानवताको तत्कालीन लोक-प्रचलित अपभ्रंश भाषामें सुरक्षित रखनेका प्रयास किया।

नवीं शतीमें जन-साधारणकी भाषा बन जानेके कारण अपभ्रंशका प्रचार हिमालयकी तराईसे गोदावरी और सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक था। यह जीवट और भाव-प्रवणमें सक्षम भाषा थी, अतः जैनाचार्योंने मानवके आदर्शोंके प्रचारके लिए तथा मूर्छित मानवताको सचेतन बनानेके लिए इस भाषामें प्रभूत साहित्य रचा। स्तोत्र-काव्य, कथा-काव्य, महाकाव्य

और खण्डकाव्य जैन-लेखको-द्वारा विरचित इस भाषामे पाये जाते हैं। शृंगार, वीर और नीतिकी स्फुट रचनाएँ भी इस भाषामे बड़ी मार्मिक और गम्भीर मिलती हैं। स्वयम्भू कविने (८-१०वीं शती) 'हरिवंशपुराण' और 'पउमचरित' की रचना की, पश्चात् इनके पुत्र त्रिभुवनने पिताके अधूरे कार्यको पूरा किया। इसी शताब्दीमे धनपालने 'भविष्यत्तकहा' और महाकवि धवलने 'हरिवंशपुराण' की रचना की। ग्यारहवीं शतीमें पुण्डन्त कविने 'महापुराण', श्रीचन्द मुनिने 'कथाकोष', सागरदत्तने 'जम्बूस्वामीचरित' और 'आराधनाकथाकोष' की रचना की। अमयदेव सूरिका 'जयतिभुवन गाथास्तोत्र', देवचन्द्रका 'सुलसाख्यान' और 'शान्तिनाथचरित', वर्द्धमान सूरिका 'वर्द्धमानचरित', अण्डुल रहमानका 'सन्देश रासक' और धादिङ्ग कविका 'पद्मिनी चरित' बारहवीं शतीकी प्रमुख अपभ्रंश रचनाएँ हैं। हेमचन्द्रके पश्चात् तेरहवीं शतीमे योगचन्द्रने 'योगसार' और 'परमात्मप्रकाश' तथा माहल्लधवलने 'नयचक्र' लिखा। अपभ्रंशकी ये रचनाएँ पुरानी हिन्दीके बहुत निकट हैं।

अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीके जैन-कवियोंने लोक-प्रचलित कहानियोंको लेकर उनमे स्वेच्छानुसार परिवर्तन करके सुन्दर काव्य लिखे। मध्य-कालके आरम्भमे समाज और धर्म संकीर्ण हो रहे थे, अतः जैन-लेखकोने अपने पुरातन कथानकों और लोकप्रिय परिचित कथानकोमे जैनधर्मका पुट देकर अपने सिद्धान्तोके अनुकूल उपस्थित किया तथा पञ्चनमस्कार फल या किसी व्रतसे सम्बद्ध दृष्टान्त प्रस्तुत कर जनताके हृदय-पटलपर मानवोचित गुण अंकित किये।

बाहरी वेश-भूषा, पाखण्ड आदिका—जिनसे समाज विकृत होता जा रहा था—बड़ी ही ओजस्वी वाणीमे जैन-साहित्यकारोने निराकरण किया। मुनि रामसिंहने भेषकी व्यर्थता दिखलानेके लिए उसे सोंपकी केचुलीकी उपमा दी है। ऊपरी आवरणको छोड़ देनेपर सोंप नवीन आवरण धारण करता है, पर विष उसका ज्योत्स्नो बना रहता है।

इसी तरह वेश बदल साधु हो जानेसे मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता, इसके लिए भोग-प्रवृत्तिका त्याग करना परम आवश्यक है ।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दीमें जैन-कवियोंने ब्रज और राजस्थानी भाषामे रासा ग्रन्थोंकी रचना की । गौतम रासा, सप्तक्षेत्ररासा एवं संघपति समरा रासा आदिमें अहिंसातत्त्वके कथानको-द्वारा सुन्दर अभिव्यञ्जना की गयी है । सोलहवीं शताब्दीमें ब्रह्म जिनदास कवि हुए, जिन्होंने मानवता-की प्रतिष्ठा करनेवाली 'आदिनाथपुराण' 'श्रेणिकचरित' आदि कई रचनाएँ लिखी । वास्तवमें इनसे ही प्रादेशिक भाषामे काव्य-रचनाका आरम्भ होता है । सत्रहवीं शताब्दीमें महाकवि बनारसीदास, रूपचन्द और हेमविजय आदि अनेक कवि हुए, जिन्होंने राजस्थानी और ब्रज-भाषामें गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ लिखीं ।

इस प्रकार सातवीं शतीसे आजतक जैन-हिन्दी-साहित्यकी धारा मानव जीवनकी विभिन्न समस्याओंका समाधान करती हुई अपनी सरसता और सरलताके कारण गृहस्थ जीवनके अति निकट आयी । इस धाराका सन्त कवियोंपर गहरा प्रभाव पड़ा; जिस प्रकार जैन-कवियोंने घरेलू जीवन-के दृश्य लेकर अपने उपदेश और सिद्धान्तोंका जन-साधारणमें प्रचार किया, उसी प्रकार सन्त-कवियोंने भी । अहिंसा सिद्धान्तकी अभिव्यक्ति करनेवाले लोक-जीवनके स्वाभाविक चित्र जैन-साहित्यमें उपलब्ध हैं; इस साहित्यमें सुन्दर, आत्मपीयूष रस छल-छलाता है । धर्मविशेषका साहित्य होते हुए भी उदारताकी कमी नहीं है । आत्मस्वातन्त्र्य प्रत्येक व्यक्तिके लिए अमीष्ट है । प्रत्येक मानव स्वावलम्बी बनना चाहता है और चाहता है उद्धाटित करना आत्मानुभूति-द्वारा अपने भीतरके तिरोहित देवाशको ।

दार्शनिक आधार

हिन्दी जैन-साहित्यकी मिति जैन-दर्शनपर आश्रित है । इसी कारण जैन-साहित्यकारोंने विलास और शृङ्गारसे दूर हटकर आत्मसमर्पण और उत्सर्गकी भावनाका अंकन किया है । अतएव शृङ्गार-रसका

वर्णन अल्प परिमाणमे हुआ है। नायिकाके यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, वैभव और आभूषणोका निरूपण न्यूनतम मात्रामे उपलब्ध है। यह बात नहीं कि हिन्दी-जैन-साहित्यमे अज्ञातयौवनाका मोलापन, ज्ञातयौवनाका मानसिक विश्लेषण, नवोदाकी लज्जाकी ललहाई, प्रौढ़ाका आनन्द-संमोहन, विदग्धाका चातुर्य, मुदिताकी उमग, प्रोषितपतिकाकी मिलनोत्कण्ठा, प्रवर्त्यत्यतिकाकी बेचैनी, आगमिन्यत्यतिकाकी अधीरता, खण्डिताका कोप एव कलहान्तरिताका प्रेमाधिक्यजन्य कलहका चित्रण नहीं है, पर प्रधानतया इसमे मानवकी उन भावना और अनुभूतियोंको पृष्ठाधार रूपमे स्वीकार किया गया है, जिनपर मानवता अवलम्बित है।

हिन्दी जैन-साहित्यके मूलाधारभूत जैन-दर्शनके मुख्य दो भाग हैं— एक तत्त्वचिन्तनका और दूसरा जीवन-शोधनका। 'जगत्, जीव और ईश्वरके स्वरूप-चिन्तनसे ही तत्त्वज्ञानकी पूर्णता नहीं होती है, किन्तु इसमें जीवन-शोधनकी मीमांसाका भी अन्तर्भाव करना पड़ता है। जैन-मान्यतामे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व माने गये हैं। इनके स्वरूपका मनन, चिन्तनकर आत्मकल्याणकारी तत्त्वोंमें प्रवृत्ति करना जैन-तत्त्वज्ञानका एक पहलू है। उक्त सातो तत्त्वोंमें जीव और अजीव ये दो मुख्य तत्त्व हैं। सच्चिदानन्द मय आत्मा या जीव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणोंका अक्षय भाण्डार है। यह अखण्ड, अमूर्त्तिक पदार्थ है, जो न शरीरसे बाहर व्याप्त है और न शरीरके किसी विशेष भागमें केन्द्रित है, किन्तु मनुष्यके समग्र शरीरमे व्याप्त है।

आत्माएँ अनेक हैं, सबका स्वतन्त्र अस्तित्व है। कर्म-अजीव (पुद्गल) के सम्बन्धके कारण ससारी आत्माएँ अशुद्ध हैं, राग-द्वेषसे विद्वृत हैं; जब कर्म-बन्धन हट जाता है, तब कोई भी आत्मा शुद्ध हो जाती है। यह शुद्ध आत्मा ही ईश्वर या मुक्त कहलाती है। प्रत्येक आत्मामे ईश्वर बननेकी

योग्यता विद्यमान है; अपने पुरुषार्थकी हीनाधिकताके कारण आत्माएँ भिखारी या भगवान् बननेकी ओर अग्रसर होती है।

आत्माकी शुद्धिके लिए राग-द्वेषको हटाना आवश्यक है तथा राग-द्वेषको हटानेके लिए दृढ़तर प्रयत्न करना ही पुरुषार्थ है। यह पुरुषार्थ प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गों-द्वारा सम्पन्न किया जाता है। प्रवृत्ति-मार्ग कर्म-बन्धका कारण है और निवृत्ति-मार्ग अबन्धका। यदि प्रवृत्ति-मार्गको घूम-घुमावदार गोलघर माना जाय, जिसमें कुछ समयके पश्चात् गमन स्थान पर इधर-उधर दौड़ लगानेके अनन्तर पुनः आ जाना पड़ता है, तो निवृत्ति-मार्गको पक्की सीढ़ी ककरीली सीमेंटकी सड़क कहा जा सकता है, जिसमें गन्तव्य स्थानपर पहुँचना सुनिश्चित है, पर गमन करना कष्टसाध्य है। जैन-दर्शन निवृत्ति-प्रधान है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय ही निवृत्ति-मार्ग है। जीवादि सातों तत्त्वोंकी सच्ची श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन, इन तत्त्वोंका सच्चा ज्ञान सम्यग्ज्ञान और आत्मतत्त्वको प्राप्त करनेका सम्यक् आचरण ही सम्यक्चारित्र कहलाता है। इस मार्गपर आरुढ़ होनेसे ही जन्म-मरणका दुःख दूर हो निःश्रेयस् या मोक्षकी प्राप्ति होती है।

जैन-दर्शनमें आत्माकी तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जब अज्ञान और मोहकी प्रबलताके कारण आत्मा वास्तविक तत्त्वका विचार न कर सके तथा कल्याणकी दिशामें विलकुल न बढ़ सके, बहिरात्मा कही जाती है। जब सच्चा विश्वास उत्पन्न हो जाता है, विवेकशक्तिके जाग्रत होनेसे राग-द्वेषके स्कार क्षीण होने लगते हैं, तब अन्तरात्मा कही जाती है और आत्मिक शक्तिको आच्छादित करनेवाले कारणोंके क्षीण हो जानेपर परमात्मा अवस्थाका प्रादुर्भाव होता है। आत्माकी ये तीन अवस्थाएँ रत्नत्रयके अभाव, प्रादुर्भाव और विकासके कारण होती हैं। निष्कर्ष यह है कि जब तक रत्नत्रयकी उत्पत्ति नहीं होती, आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर अन्यथा रूपसे प्रवृत्त होती है। रत्नत्रयका

प्रादुर्भाव हो जानेपर आत्मा स्वोन्मुखरूपसे प्रवृत्त करती है, जिससे राग-द्वेषके सस्कार शिथिल और क्षीण होने लगते हैं तथा रत्नत्रयके परिपूर्ण होनेपर आत्मा परमात्मा अवस्थाको प्राप्त हो जाती है। अतः आत्म-गोधनमें सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञानके साथ सदाचारका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन-सदाचार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप है। इन पाँचो व्रतोमें अहिंसाका विशेष स्थान है, अवशेष चारो अहिंसाके विभिन्न रूप हैं। कपाय और प्रमाद—असावधानीसे किसी जीवको कष्ट पहुँचाना या प्राणघात करना हिंसा है, इस हिंसाको न करना अहिंसा है। मूलतः हिंसाके दो भेद हैं—द्रव्यहिंसा और भावहिंसा। किसीको मारने या सतानेके भाव होना भावहिंसा और किसीको मारना या सताना द्रव्यहिंसा है। भावोंके कलुषित होनेपर प्राणघातके अभावमें भी हिंसा-दोष लगता है।

अहिंसाकी सीमा गृहस्थ और मुनि—साधुकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न है। गृहस्थकी हिंसा चार प्रकारकी होती है—संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी और विरोधी। विना अपराधके जान-बूझकर किसी जीवका वध करना संकल्पी हिंसा है। इसका दूसरा नाम आक्रमणात्मक हिंसा भी है। प्रत्येक गृहस्थ-को इस हिंसाका त्याग करना आवश्यक है। सावधानी रखते हुए भी भोजन बनाने, जल भरने, कूटने-पीसने आदि आरम्भ-जनित कार्योंमें होनेवाली हिंसा आरम्भी; जीवन-निर्वाहके लिए खेती, व्यापार, शिल्प आदि कार्योंमें होनेवाली हिंसा उद्योगी एवं अपनी या परकी रक्षाके लिए होने-वाली हिंसा विरोधी कही जाती है। ये तीनों प्रकारकी हिंसाएँ रक्षणात्मक हैं। इनका भी यथाशक्ति त्याग करना साधकके लिए आवश्यक है। 'स्वयं जियो और अन्यको जीने दो' इस सिद्धान्त वाक्यका सदा पालन करना सुख-शान्तिका कारण है। राग, द्वेष, घृणा, मोह, ईर्ष्या आदि विकार हिंसामें परिणमित हैं।

जैनधर्मके प्रवर्तकोने विचारोको अहिंसक बनानेके लिए स्याद्वाद-विचार समन्वयका निरूपण किया है। यह सिद्धांत आपसी मतभेद अथवा पक्षपात-

पूर्ण नीतिका उन्मूलन कर अनेकतामें एकता, विचारोंमें उदारता एवं सहिष्णुता उत्पन्न करता है। यह विचार और कथनको संकुचित, हठ एवं पक्षपातपूर्ण न बनाकर उदार, निष्पक्ष और विशाल बनाता है। वस्तुतः जीवन अहिंसक तभी बन सकता है, जब आचार और विचार दोनों अहिंसक हो जायें। पूर्ण अहिंसक ही राग-द्वेष और कर्म-बन्धनका ध्वंसकर मोक्ष या निर्वाणको प्राप्त करता है। मानव-जीवनका चरम लक्ष्य निर्वाण या मोक्षको प्राप्त करना ही है।

इस सक्षिप्त दार्शनिक विवेचनके प्रकाशमें हिन्दी-जैन-साहित्यकी पृष्ठ-भूमिकी निम्न भावनाएँ हैं :—

सम्यग्दर्शन ज्ञान—

१—अपनेको स्वयं अपना भाग्यविधाता समझकर परोक्ष शक्ति—ईश्वरादि शक्ति सुख-दुःख देनेवाली है, विश्वासको छोड़ पुरुषार्थमें प्रवृत्त होना।

२—आत्माके अस्तित्वका विश्वासकर मन-वचन-कायके अपने प्रत्येक क्रिया-व्यापारको अहिंसक बनाना।

३—अपने पुरुषार्थपर विश्वासकर सर्वतोमुखी विशाल दृष्टि प्राप्त करना।

४—राग-द्वेषादि सत्कार अनात्मभाव है, यह विश्वास उत्पन्न करना।

सम्यग्ज्ञान ज्ञान—

१—वैयक्तिक विकासके लिए हृदयकी वृत्तियोंसे उत्पन्न अनुभूतियोंको विचारके लिए बुद्धिके समक्ष उत्पन्न करना और बुद्धि-द्वारा निर्णय हो जानेपर कार्यमें प्रवृत्त हो जाना।

२—विरोधी विचार सुनकर ध्वङ्गाना नहीं, अपने विचारोंके समान अन्यके विचारोंका भी आदर करना तथा अपने विचारोंपर भी तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि रखना।

३—मिथ्याभिमान छोड़कर उदारतापूर्वक विचार-सहिष्णु बनना तथा अपनी भूलोंको सहर्ष स्वीकार करना ।

४—तत्त्वज्ञानके चिन्तन-द्वारा अहंभावका इदंभावके साथ सामञ्जस्य प्रकट करना ।

सम्यक्चारित्र्य जन्य—

१—निर्मय और निर्वैर होकर शान्तिके साथ जीना और दूसरोंको जीवित रहने देना ।

२—अहिंसा और संयमके समन्वय-द्वारा अपनी विशाल और उदार-दृष्टिसे विश्वबन्धुत्वकी भावनाको जागृत करना ।

३—वासना, इच्छा और कामनाओंपर नियन्त्रण करना तथा आत्मा-लोचनमें प्रवृत्त होना ।

४—दया, ममता, करुणा आदिके उद्घाटन-द्वारा मानवताको प्रतिष्ठित करना ।

५—भौतिकवादकी मृगमरीचिकाको अध्यात्मवादकी वास्तविकता-द्वारा दूर करना ।

६—शोषित और शोषकमें समता लानेके लिए अपरिग्रहवाद और संयमको जीवनमें उतारना ।

७—शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिए शुद्ध आहार-विहार करना ।

पुरातन काव्य-साहित्य

[८वीं शतीसे १९वीं शतीतक]

अपभ्रंश भाषाकी उत्पत्ति पाँचवीं शतीमें हुई थी और छठवीं शतीमें यह देशी भाषाका रूप ग्रहण कर चुकी थी । अतः छठवीं शतीसे ग्यारहवीं शतीतक इस भाषामें पुष्कल परिमाणमें साहित्यका सृजन होता रहा । आगे चलकर इसी भाषामें हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें हिन्दीका रूप और अन्य भाषा-भाषी प्रान्तोंमें भराठी, गुजराती आदि भाषाओंका रूप धारण किया ।

जैन-कलाकारोंने मध्यकालमें इसी देशी भाषाका आधार लेकर अपने आन्तरिक भावोंकी अधिक-से-अधिक स्पष्ट, मनोरञ्जक और प्रभावपूर्ण ढंगसे अभिव्यञ्जना की। जीवनका चिरन्तन सत्य, मानव कल्याणकी प्रेरणा एवं सौन्दर्यकी अनुभूतिको अनुपम, मधुर देशी भाषामें ही प्रकट करना अधिक उपादेय समझा गया। अतः प्रस्तुत प्रकरणमें देशी भाषा-अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, ब्रजभाषा और राजस्थानीके काव्य साहित्यकी विवेचना की जायगी।

लोक-भाषा होनेके कारण देशी भाषामें आरम्भमें गीत ही रचे गये। इन गीतोंमें जन-साधारणकी भावनाएँ अभिव्यञ्जित हुई हैं। सर्वसाधारणके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और हास-विलास इनके वर्ण्य विषय थे। भावनाओंकी सघनताकी अभिव्यञ्जना होनेके कारण इन गीतोंके लिए छन्दके बन्धनोंकी आवश्यकता नहीं थी। ८-९वीं शतीमें भक्ति, प्रेम, वीरता, करुणा, हास्य आदिकी अभिव्यक्तिके लिए दोहा, चौपाई, कडावक, घत्ता, छप्पय, रोला आदि मात्रा-वृत्तोंका भी देशी भाषामें प्रयोग होने लगा, फलस्वरूप इस भाषामें प्रबन्ध काव्योका आविर्भाव हुआ।

जैन-हिन्दी-साहित्यमें प्रबन्ध काव्यकी धारा आठवीं शतीसे ही प्रवाहित हुई और अबतक प्रवाहित हो रही है। इसका कारण यह है कि हिन्दी-जैन-कवियोंने प्राचीन कथाओंको लेकर ही अपने काव्यमयनका निर्माण किया है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती और नारायण आदि महान् व्यक्तियोंके सरस और हृदयग्राही जीवन-कानन-द्वारा दिव्य और चिरन्तन सौन्दर्यको प्रकाशित करना उन्होंने सरल तथा मानवताके कल्याणके लिए उपादेय समझा। हिन्दी-जैन-प्रबन्ध-साहित्यकी उषाने मध्यकालमें जनसाधारणके सर्वाङ्गीण जीवन-क्षितिजको आनन्द-विभोर बना दिया, जिससे जीवनका कोना-कोना आलोकित हो उठा।

प्रबन्ध-काव्यमें इतिवृत्त, वस्तुव्यापारवर्णन, भावव्यञ्जना और सवाद ये चार अवयव होते हैं। कथामें पूर्वापर क्रमबद्धताका रहना तो अनिवार्य

है ही, इसके बिना कोई काव्य प्रबन्ध कोटिमें नहीं आ सकता है। देशी भाषा और पुरानी हिन्दीमें जैन-प्रबन्ध-काव्योंकी भरमार है। ब्रजभाषा और राजस्थानी, ब्रजद्वारी भाषामें भी कतिपय सुन्दर जैन-प्रबन्ध-काव्य हैं।

अपभ्रंश भाषामें 'पउमचरिउ—रामायण, हरिवंशचरित—कृष्ण-चरित, रिद्धनेमिचरिउ, भविष्यत्तकहा, तिसट्टिमहापुरिसगुणालकार और वैरसामिचरिउ प्रमुख हैं। प्रबन्ध-काव्यकी सफलता देशी भाषा के कथाकी पूर्वापरक्रमवद्धताके साथ उसके मर्मस्थलोंकी जैन पहिचानपर निर्भर है। जो कथाके मर्मस्थलोंकी प्रबन्ध-काव्य परख रखता है, उसे प्रबन्ध-काव्यके सृजनमें पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। देशी भाषाके जैन कवियोंने कुटुम्बियोंके विछोह होनेपर इष्ट जनोका विलाप, युद्धमें योद्धाओंकी उमंग, रणयात्राका सजीव चित्रण, विरहके गीत आदि मर्मस्पर्शी स्थलोंकी परखसे मानवकी सहृदयता और सहानुभूति बढ़ानेमें बेजोड़ सफलता प्राप्त की है।

'पउमचरिउ' में वर्णित रावणकी वीरगति हो जानेपर मन्दोदरीके करुणापूर्ण विलापको सुनकर निद्रुरता भी रुदन किये बिना नहीं रह सकती। कविकी अनुभूति कितनी गहराईतक पहुँची है, वर्णनमें कितनी सजीवता है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है।

आएहिं सी आरियहि, अट्टारह हिव जुवइ सहासेहिं ।

णव वण माला डंभरेहि, छाइउ विज्जु जेम चउपासेहिं ॥

रोवइ लंकापुर परमेसरि ।

हा रावण ! तिहुयण जण केसरि ॥

पइ विणु समर तूरु कहों वज्जइ ।

पइ विणु बालक्रील कहों छजइ ॥

पइ विणु णव गह एक्कीकरणउ ।

को परिहेसइ कंठा हरणउ ॥

पद् विणु को विज्जा आराहइ ।
 पद् विणु चन्दहासु को साहइ ॥
 को गंधव्व वापि आडोहइ ।
 कण्हो छवि-सहासु संखोहइ ॥
 पद् विणु को कुवेर भंजेसइ ।
 तिजग-विहुसणु कहो वसे होसइ ॥
 पद् विणु को जमु विणिवारेसइ ।
 को कहलासुद्धरण करेसइ ॥
 सहस-किरणु गलवकुव्वर-सक्कहु ।
 को अरि होसइ ससि-वरुणकहु ॥
 को णिहाण रयणइ पाळेसइ ।
 को बहुरुविणि विज्जा लएसइ ॥

सामिय पडै भलिपण विणु, पुष्पविमाणे चडेवि गुरुभसिए ।

मेरु-सिहरे जिण-मंदिरइ, को मइणेसइ वंदण-हसिए ॥

इसी प्रकार हनुमानके युद्धका वर्णन भी बहुत ही ओजस्वी और मर्मस्पर्शी है, पढ़ते ही हृत्तन्त्रियों झकृत हो उठती हैं, मनमें उत्साह और स्फूर्ति जाग्रत हो जाती है। समस्त वातावरण युद्धोन्मुख दिखलायी पड़ता है, निर्जीव और शुष्क धमनियोमें भी स्वस्थ रक्तका संचार होने लगता है।

अपभ्रंश भाषाके पउमचरित, हरिवंशचरित, भविसयत्तकहा आदिके प्रबन्धमें तानिक भी शिथिलता या विशृंखलता नहीं है। कथाको न तो अनावश्यक विस्तार दिया गया है और न अक्रमबद्धता। कथानकमें गति-स्वामाविकता और प्रवाह है। वस्तुव्यापारवर्णन और भावाभिव्यञ्जना भी अनुपम है। चरित्र-चित्रणमें इन कवियोंने अपनी पूरी पढ़ता प्रदर्शित की है। रामके वन-गमनके समय दशरथकी मानसिक अवस्थाका चरित्र-चित्रण पितृहृदयकी अपूर्व झोंकी उपस्थित करता है।

‘पउमचरित’ में सीताहरणके पश्चात् रामकी अर्द्ध विधित और मोहा-भिभूत अवस्थाका चित्रण रामके मानवीय चरित्रमें चार चौद लगाता है।

अपभ्रंश प्रबन्ध-काव्योंमें वस्तुव्यापार वर्णन भी सुन्दर है। संवाद इतने प्रभावोत्पादक हुए हैं, जिससे इन प्रबन्धकारोंकी सहृदयताका सहज ही पता लगाया जा सकता है। यद्यपि वस्तु पुरातन है, पर जीवनके बाह्य और आन्तरिक दृश्योंका इतनी कुशलता और सूक्ष्मतासे उद्घाटन किया है, जिससे प्रबन्ध सहजमें ही चमत्कारपूर्ण हो गये हैं।

भावव्यञ्जना इन अपभ्रंश प्रबन्ध-काव्योंमें इतनी स्पष्ट है, जिससे पढ़ते ही हृदयकी रागात्मक वृत्तियोंमें सिहरन उत्पन्न हो जाती है। मनन-शील प्राणोंके आन्तरिक सत्यका आभास जो कि जीवनके स्थूल सत्यसे भिन्न है, प्रकट हो जाता है। जीवनकी अन्तस्चेतना तथा सौन्दर्यभावना उद्बुद्ध हो चिरन्तन सत्यकी ओर अग्रसर करती है। इन प्रबन्धकारोंने घटनावर्णन, दृश्य-योजना, परिस्थिति-निर्माण और चरित्र-चित्रणमें ही अपनेको उल्ल-क्षानेका प्रयास नहीं किया है; बल्कि भाव, रस और अनुभूतिकी अभिव्यञ्जना भी अनूठे ढंगसे की है।

देशी भाषाके जैन-प्रबन्ध-काव्योंकी रचनाशैलीके आधारपर जायसी, तुलसी तथा विद्यापति आदि कवियोंने अपने काव्योंका निर्माण किया है। पद्मावत और रामचरितमानसमें बहुत-सी बातें पउमचरित और भविस-यत्तकहाकी ज्यो-की-त्यो पायी जाती हैं। जिस देशी भाषाके प्रबन्ध-काव्योंका जायसी, ईश-वन्दनासे हुआ है, उसी प्रकार पद्मावत और तुलसी तथा हिन्दीके रामचरितमानसका भी। जैन-प्रबन्धकारोंने देशी अन्य कवियोंपर प्रभाव भाषाके प्रबन्ध-काव्योंमें जैसे वत्तीस मात्राओंकी अर्धालियोवाले पंदाटिका या अल्लिला नामक कतिपय छन्दोंके बाद वासठ मात्राओंवाला घत्ता रखा है, वैसे ही जायसी^१ और तुलसीने भी वत्तीस

१-जायसीके पद्मावतका रचनाकाल सन् १५४०, धनपालजी भवि-]

सयत्तकहाका रचनाकाल लगभग १००० ईस्वी सन्।

मात्राओवाली चौपाइयोकी अर्धालियोंके बाद अड़तालीस मात्राओवाले दोहे रक्खे हैं। भविसयत्तकहाकी तुकोंकी लड़ी हर एक चरणके अन्तमें कम-से-कम प्रत्येक दो चरणमें मिलती है, उसी प्रकार जायसी और तुल्सीकी भी। इसी तथ्यसे प्रभावित होकर प्रोफेसर श्री जगन्नाथराय शर्माने अपने 'अपभ्रंश-दर्पण'में लिखा है कि "हिन्दीका कौन कवि है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें अपभ्रंशके जैन-प्रबन्ध-काव्योंसे प्रभावित न हुआ हो? चन्दसे लेकर हरिश्चन्द्र तक तो उसके ऋण भारसे दवे हैं ही, आजकलकी नई-नई काव्यपद्धतियोंके उद्भावक भी विचारकर देखनेपर उसकी परिधिके बहुत बाहर न मिलेंगे।"^१

जायसीका पद्मावत तो भविसयत्तकहाके अनुकरणपर ही नहीं लिखा गया, अपितु उसका कथानक भी भविसयत्तकहासे मिलता-जुलता है। यदि भविसयत्तकहाके पात्रोंके नामोंको बदल ले तो कथाका अवगोप मानचित्र पद्मावतके प्रबन्धके मानचित्रसे ज्यों-का-त्यों मिलेगा। जिस प्रकारका प्रेम-चित्रण भविसयत्तकहामें है, ठीक उसी प्रकारका रत्नसेन-पद्मावतीकी कथामें भी। दोनों कृतियोंकी कथावस्तुमें बहुत साम्य है। सिंगलगाढका उल्लेख दोनोंमें है। अलाउद्दीन-द्वारा रानी पद्मिनीके अपहरणका प्रयत्न अस्वामाविक लगता है, भले ही वह ऐतिहासिक हो, किन्तु भविष्यदत्तकी स्त्रीका अपहरण उसके भाई बन्धुदत्त-द्वारा अधिक स्वाभाविक है। पद्मावतमें जायसीने यत्र-तत्र ही आध्यात्मिक संकेत रक्खे हैं, किन्तु भविसयत्तकहाको धार्मिक रूप ही दिया गया है। जायसीने पद्मिनीकी निराशा दिखलाकर मृत्यु दिखलायी है, पर भविसयत्तकहामें बन्धुदत्तने भविष्यदत्तकी स्त्रीका अपहरण किया है, अतः घटनाचक्रके अनुकूल होनेपर भविष्यदत्तको अपनी स्त्री वापिस मिल जाती है और बन्धुदत्त दण्ड पाता है।

पद्मावतकी वर्णनशैली भी पउमचरित और भविसयत्तकहासे बहुत अंशमें मिलती-जुलती है। बन्धुदत्तकी समुद्रयात्रा रत्नसेनकी समुद्रयात्रासे

तथा नखशिखवर्णन पद्मावतके नखशिखवर्णनसे भावमे ही नहीं, किन्तु शब्दोमे भी साम्य रखता है। उदाहरणार्थ वन्धुदत्तकी समुद्रयात्राके कुछ पद्य उद्धृत किये जाते हैं। इन उद्धृत-पद्योकी पद्मावतके पद्योंके साथ तुलना करनेसे स्पष्ट है कि भविसयत्तकहाके रचयिता धनपालकी जैलीका जायसीने कितना अनुकरण किया है—

णिज्जावय वयणुज्जु अमुहई, किरववई गणं भडई ।
 सचल्लह रयणायरहो जलि, खरपवहाणय-धय-वणई ॥
 दिढ-वधई जिह मल्लर-गणाई । णिल्लोहई जिह मुणिवर-मणाई ।
 णिभिम्णणई जिह सज्जण-हिचाई । अकियत्थई जिह दुज्जण-कियाई ॥
 वहणई वहँति जलहर-रउहि । दुत्तरि अत्थाहि महा समुहि ॥
 लेंघंतई दीवंत-र-थलाइ । पिक्खंति विविह कोऊ हलाई ॥
 इय लीलई वच्चंताई ताहँ । उच्छाह-सन्ति-विक्कम पराहँ ॥
 दुप्पवणें घणतरुवर-समीवे । वहणई लंगई मयणाय दीवे ॥
 कल्लोल-बोल-जलरल वमाले । असगाह-गाह गहणंतराले ॥
 तीरंतरे जं सघट्ट पोय । उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय ॥
 तं वयणु मुणिवि णायर जणहु, नं सिरि वज्जवंडु पडिऊ ।
 वोहिथई लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुहि चडिऊ ॥

—भविसयत्तकहा पृष्ठ २१

सायर तरै हिये सत पूरा । जो जिउ सत, कायर पुनि सूरा ॥
 तेइ सत बोहिस कुरी चलाए । तेइ सत पवन पंख जनु लाए ॥
 सत साथी, सत कर संसारु । सत खेइ लेइ लावै पारु ॥
 सत ताक सब आगू पाछु । जई जई मगर मच्छ औ काछु ॥
 उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा । चढ़े सरग औ परै पतारा ॥

—जायसी ग्रंथावली पृ० ६४

१—स्वयंभूके पठमचरितका रचनाकाल ई० सन् ७९० ।

इसी प्रकार विरह, युद्ध, ऋतु, नगर आदिका वर्णन भी पद्मावतमे भविसयत्तकहाके समान ही हुआ है। देशी भाषाके शब्दोंके स्थानपर तत्सम शब्दोंको रख देनेपर भविसयत्तकहाके अनेक वर्णनात्मक स्थल पद्मावतके हो जायेंगे।

हिन्दी साहित्यके अमरकवि तुलसीदास'पर स्वयंभूकी पठमचरित और भविसयत्तकहाका अभिट प्रभाव पड़ा है। महापंडित राहुल सांकृत्यायनने अपनी हिन्दी-काव्यधारामे बताया है कि "मालूम होता है, तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको जरूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयंभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामें क्यों नहीं ढाल दी। तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको देखा था, मेरी इस बातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मैं समझता हूँ कि तुलसी बाबाने "कचिदन्यतोपि" से स्वयंभू-रामायणकी ओर ही संकेत किया है। आखिर नाना पुराण, निगम, आगम और रामायणके बाद' ब्राह्मणोंका कौन-सा ग्रन्थ बाकी रह जाता है, जिसमे रामकी कथा आयी है। "कचिदन्यतोपि"से तुलसी बाबाका मतलब है, ब्राह्मणोंके साहित्यसे बाहर "कहीं अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमे रामकथा बड़े सुन्दर रूपमे मौजूद है। जिस सोरो या सूकरक्षेत्रमे गोस्वामीजीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोंमें जैन-धरोमे स्वयंभू-रामायण पढ़ी जाती थी। रामभक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पड़े थे, उससे यह बिल्कुल सम्भव है कि उन्हें जैनोके यहाँ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामीजीसे आठ सौ बरस पहले बना था किन्तु तन्द्रव शब्दोंके प्राचुर्य तथा लेखको-वाचकोके जब-तबके शब्द-सुधारके कारण भी आसानीसे समझमे आ सकता था"।^१

१-गोस्वामी तुलसीदासका जन्म सं १५८९ और स्वयंभूदेवका ईस्वी सन् ७७०।

२-हिन्दी काव्यधारा पृष्ठ ५२।

राहुलजीका उपर्युक्त कथन कहोतक यथार्थ है यह तो पाठकोपर ही छोड़ा जाता है, पर इतना सुनिश्चित है कि रामचरितमानसके अनेक स्थल स्वयम्भूकी पउमचरिउ—रामायणसे अत्यधिक प्रभावित हैं तथा स्वयम्भूकी शैलीका तुलसीदासने अनेक स्थलोंपर अनुकरण किया है। जिस प्रकार स्वयम्भूने पउमचरिउके आरम्भमें अपनी लघुता प्रदर्शित की है उसी प्रकार तुलसीने भी। स्वयम्भूका आत्मनिवेदन तुलसीके आत्मनिवेदनसे भाव-साम्य रखता है, अतः यदि यह माना जाय कि तुलसीने स्वयम्भूका अनुकरण किया है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? उदाहरणके लिए कुछ अश पउमचरिउके नीचे उद्धृत किये जाते हैं :-

बुह-थण सर्यभु पई विण्णवइ । महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ ॥
वायरणु क्याइ ण जाणियउ । णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ ॥
णा णिसुणित पंच महाय वब्बु । णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सब्बु ॥
णउ बुज्झिउ पिंणल-पच्छारु । णउ मामह-दंडीय लंकारु ॥
वे वे साय तो वि णउ परिहरमि । वरि रयडा बुत्तु कब्बु करमि ॥
सामाणभास छुड मा विहडउ । छुडु आगम-भुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होति सु हासिय-वयणाई । गामेल्ल भास परिहरणाई ॥
एहु सज्जन लोयहु किउ विणउ । जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
जं एववि रुसाइ कोवि खल्लु । तहो हत्थुत्थसिल्लु लेउ छल्लु ॥

पिसुणें किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुचइ ।

किं छण-इन्दु मरुगाहे, ण कंपंतु विसुचइ ॥

—पउमचरिउ १-३

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं । तातें विनय करउँ सब पाहीं ॥
करन चहउँ रघुपति गुनगाहा । लघु मति मोरि चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकुउ अंग उपाऊ । मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी । चहिय अमिअ जग जुरइ न छाछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरि दिठाई । सुनिहहिं बालवचन मन लाई ॥

जौं बालक कह तोतरि बात्ता । सुनहिं मुदित मन पितु अह माता ॥
हंसिहहिं कूर कुटिल कुचिचारी । जे पर दूपन भूपन धारी ॥

X

X

X

भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुन विविध प्रकार ॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे । सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ॥

—रामचरित मानस, बालकाण्ड

इसी प्रकार ऋतु, काल, सन्ध्या, नगर, समुद्र, नदी, वन, यात्रा, नारी-सौन्दर्य, विलाप, रनिवास, जलक्रीड़ा, विरह एव युद्ध आदि विषय, तथा छन्द, शैली आदि दृष्टियोंसे 'पउमचरित' से तुलसीदासने बहुत कुछ ग्रहण किया प्रतीत होता है ।

भविष्यत्तकहासे भी तुलसीदासने विषय और वर्णनशैलीकी अपेक्षासे अनेक घाते ग्रहण की है । पाठक देखेंगे कि निम्न पद्योंमें कितनी समानता है—

सुणिमिच्छई जाअई तासु ताम । गय पयहिणंति उड्डेवि साम ॥
वायंगि सुत्ति सहसहइ वाउ । पिय मेलावइ कुलकुलइ काउ ॥
वामउ किलकिंचिउ लावएण । दाहिणउ अंगु दरिसिउ मएण ॥
दाहिणउ लोयणु फंदइ सवाहु । णं भणइ एण मग्गोण जाहु ॥

उसको सुन्दर शकुन दिखलायी पड़े । श्यामापक्षी उड़कर दाहिनी ओर आगया । बाई ओरसे मन्द-मन्द वायु बह रही थी और प्रियतमसे मेल करानेवाली ध्वनिमें कौआ बोल रहा था । लावाने बाई ओर बोलना शुरू किया और दाहिनी ओर मृग दिखलाई पड़े ।

इसी भावकी कविवर तुलसीदासकी चौपाइयाँ देखिये—

दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरस सब काहुन पावा ॥
सानुकूल वह त्रिविध ययारी । सघट सबाल आव घर नारी ॥

लोवा फिरि-फिरि दरस दिखावा । सुरभी सन्मुख शिशुहिं पिआवा ॥
मृगमाला दाहिन दिशि आई । मंगल गन जनु दीन्ह दिखाई ॥

वात्सल्य और शृङ्गार रसके मर्मज्ञ कवि सुरदास भी देशी भाषाके जैन कवियोंसे अत्यधिक प्रभावित है । सुरने पदोकी रचना देशी भाषाके जैन कवियोंकी शैलीके आधारपर की है ।

देशी भाषाके जैन कवियोंने दो चरणोका एक चरण माना है, वे चौपाईके चार चरण नहीं लिखते, दो ही चरणमे छन्द समाप्त कर देते हैं । कहीं-कहीं एक चरण रखकर उसे ध्रुवकके रूपमे कुछ पक्तियोंके बाद दुहराया गया है । यही प्रक्रिया पदोकी टेक बन गयी है । देशी भाषामें संगीत और लयका समन्वय अपूर्व है । इस भाषाका काव्य वाद्यके साथ गेय गीतोमे माधुर्य और तालके साथ गाया जा सकता है । सुरदासने इसी शैलीको अपनाया है । बाललीला और शृङ्गारका वर्णन जैन साहित्यकी देन है । हेमचन्द्रके व्याकरणमे प्रोषितपतिकाके अनेक सुन्दर सरस उदाहरण आये हैं, जो गोपियोंकी विरह-विह्वल दशाका चित्र उपस्थित करनेमे सक्षम हैं । कवि पुष्पदन्तने ऋषभदेवकी बाललीलाका वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंगसे किया है । हमारा अनुमान है कि यह भक्त-कवि बाल-चित्रणमे जैनकवियोंसे अत्यधिक अनुप्राणित हैं । उदाहरणके लिए दो-चार पद्य उद्धृत किये जाते हैं ।

सेसवलीलिया कीलमसीलिया ।

पहुणादाविया केण ण भाविया ॥

धूलीधूसर ववगयकडिल्लु । सहजायक विलकाँतल्लु जडिल्लु ॥

हो हल्लरु जो जो सुहुं सुअहिं पइं पणवंतडभूयगणु ।

णंदइ रिज्झइ हुक्कियमलेण कासुवि मल्लिगुण ण होइ मणु ॥

धूली धूसरो कडि किंकिणीसरो ।

णिह्रमलीलड कीलइ बालड ।

—पुष्पदन्त—महापुराण—प्रथमखण्ड

महाकवि सूरदास'ने कृष्णकी बाललीलाओंका चित्रण बहुत-कुछ इसी प्रकारका किया है। तुलनाके लिए सूरदासकी कुछ पद्य-भक्तियों उद्धृत की जाती हैं—

कहाँ लौं वरणों सुन्दरताइ,
खेलत कुँअर कनक आगन में, नैन निरख छवि छाइ ।
कुलहि लसति सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरँग बनाइ ।
मानों नव धन ऊपर राजत, मधवा धनुष चढाइ ।
अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराइ ।

X X X X

खंडित वचन देत पूरन सुख, अल्प अल्प जलपाइ ।
घुदुरन चलत रेनु तन मंडित सूरदास बलि जाइ ॥

लोकजीवनके ऐसे अनेक स्वाभाविक चित्र जैन देशी भाषाके प्रबन्ध कव्योंमें अंकित किये गये हैं, जिनसे हिन्दीकाव्य अद्यावधि अनुप्राणित होता चला आ रहा है। दोहा छन्द मूलतः जैन कवियोंका है। ८-९ वीं शताब्दीमें यह छन्द जैनांमें इतना अधिक लोकप्रिय था कि इसी छन्दमें शृङ्गार, वैराग्य, नीति आदि विषयोंकी फुटकर रचनाएँ विपुल परिमाणमें हुईं। कुछ कवियोंने कनिषय छोटे-मोटे आख्यान भी दोहोंमें लिखे। हेमचन्द्रके व्याकरणमें ऐसे अनेक दोहोंका संग्रह है, जिनसे जैन कवियोंकी 'अल्प शब्दों-द्वारा अधिक भाव अभिव्यञ्जित' करनेकी शैलीका परिज्ञान सहजमें ही हो जाता है। भावकी दृष्टिसे ऐसी अनेक भावनाएँ दोहोंमें चित्रित हैं, जिनका पूर्ण विकास विहारीमें जाकर हुआ। यद्यपि शृङ्गार रसको बढ़ा-चढ़ा कर नहीं निरूपित किया, फिर भी विरह और प्रेमकी भावनाओंकी कमी नहीं है।

१—कवि सूरदासका समय वि. सं. १५४० और पुष्पदन्तका ई. सं. ९५९।

प्रबन्धचिन्तामणि, सोमप्रमका कुमारपाल-प्रतिबोध आदि रचनाएँ पुरानी हिन्दीके प्रबन्ध काव्योंमे परिगणित है। यद्यपि इन ग्रन्थोंकी प्रबन्ध-पद्धति शिथिल और विश्रुंखलित है, फिर भी गैली अपभ्रंशके बादकी पुरानी हिन्दीके और भाषाकी दृष्टिसे इन काव्योंका विशेष महत्त्व है। प्रबन्ध चिन्तामणि भोज-प्रबन्धके ढंगकी जैन-प्रबन्ध काव्य रचना है। इसमे जैन धर्मका उद्योतन करनेवाली कई कथाओंका संग्रह किया है। कथाका आरम्भ करते हुए बताया गया है कि एक दिन विक्रमादित्य रातको नगरका परिभ्रमण करने गया और एक तेलीसे निम्न दोहेका अध्याश सुना। दोहेका उत्तरार्द्ध सुननेकी अभिलाषासे राजा वहाँ बहुत देर तक ठहरा रहा, पर उसे निराश ही लौटना पड़ा। प्रातःकाल दरवारमें उसने तेलीको बुलाया और उससे दोहेको पूरा कराया—

अम्मणिओ संदेसबओ नारय कन्ह कहिज ।

जगु बालिछिहि डुब्बिड' बलिबंधणह मुहिज ॥

अर्थात्—हे नारद, कृष्णसे हमारा सन्देश कह देना कि नगर दरिद्रतासे पीड़ित है, बलि-बन्धन (करका बोझ) छोड़ दो।

इसमे सुख, तैलप, भोज, कुमारपाल, अभय, रावण आदि राजाओंको जैन धर्मावलम्बी मानकर आख्यान दिये गये हैं। वर्णन साहित्यकी अपेक्षा इतिहासके अधिक निकट हैं। यद्यपि वसन्तका शब्द-चित्रण साहित्यकी दृष्टिसे सुन्दर हुआ है, लेखकने कल्पनाकी उड़ान और भावनाकी तहमें प्रवेश करनेका पूरा यत्न किया है, पर सफलता कम मिली है। उदाहरण—

यह कोइल-कुल-रव-सुहुलु भुवणि वसंतु पयहु ।

भट्ट व मयण-महा-निवह पयडिब-विजय मरहु ॥

सूर पलोइवि कंत-करु उत्तर-दिसि-आसतु ।

नीसासु व दाहिण-दिसय मलय-समीर पवतु ॥

काण-सिरि सोहइ अरुण-नव-पल्लव परिणद्ध ।
 न रत्तंभुय-पावरिय महु-पिययम-संवद्ध ॥
 सहयारिहि मंजरि सहहि अमर-समूह-सणाह ।
 जालाउ व मयणानलह पसरिय-धूम-पवाह ॥

अर्थात्—कोयलोंने शब्दसे मुखरित बसन्त जगमे प्रविष्ट हुआ, मानो कामदेव महानृपके विजय-अहंकारको प्रकट करनेवाला योद्धा ही हो ।

सुन्दर किरणोंवाले मूर्यको उत्तर दिशामें आते देखकर मलय-समीर दक्षिण दिशाके निश्वासकी तरह बहने लगा ।

अरुण नव कोपलेसे परिणद्ध कानन-श्री ऐसी गोभित होती है, मानो वह रक्ताशु लपेटे हुए वासनारूपी प्रियतमसे आलिंगित हो ।

अमर-समूहसे युक्त आम्रमञ्जरी ऐसी जान पड़ती है, मानो मढनानलकी ज्वालासे धुँआ उठ रहा हो ।

प्रबन्ध-चिन्तामणिमें छोटी-छोटी कई कथाएँ हैं, इन कथाओंमें आपसमें कोई सम्बन्ध नहीं है; अतः यह सफल प्रबन्ध-काव्य नहीं कहा जा सकता ।

कुमारपाल-प्रतिबोधमें कुमारपालको प्रवृद्ध करनेके लिए ५७ लघु-कथाएँ दी गयी हैं । कविने सप्त व्यसन—खुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पान करना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन करना, चोरी करना और वेध्या एवं काम वासनाके त्याग करनेका उपदेश देते हुए अनेक छोटे-छोटे आख्यानोंको उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत किया है । यद्यपि प्रासङ्गिक कथाओंकी आधिकारिक कथाके साथ अन्विति है, पर प्रबन्धमें शैथिल्य है । क्रम-वद्धताका भी अभाव है । कतिपय वर्णन कल्पनाकी उड़ान और भावनाकी सवनताकी दृष्टिसे सुन्दर हुए हैं । जगत्की तुच्छता और निस्सारता गिख-लाते हुए मौक्तिक पदार्थोंकी अणभंगुरताका भर्मस्पर्शी निरूपण किया है ।

१३ वीं शतीसे लेकर १९ वीं शती तक रासा चरित्र और पौराणिक कथाओंके रूपमें जैन साहित्यकार प्रबन्ध-काव्योंका निर्माण करते रहे हैं।

हिन्दी-जैन साहित्यके परवर्ती प्रबन्ध काव्य यद्यपि इन ग्रन्थोंमेंसे अधिकांश काव्योंकी वस्तु पुरा-तन है या संस्कृत और प्राकृतके कथा-ग्रन्थोंका पद्या-नुवाद है, फिर भी आत्मद्रष्टा भावुक जैन कवियोंने अपनी कल्पना-द्वारा सुनहला रङ्ग भरकर कलाको चमका दिया है।

१३ वीं शतीमें धर्मसूरिने जम्बूस्वामी रासा, विजयसूरिने रेवंतगिरि रासा, विनयचन्द्रने नेमिनाथचउपद्, १४ वीं शतीमें सप्तमेर रासा, अम्ब-देवने सचपति समरा रासा, १५ वीं शतीमें विजयभट्टने गौतमरासा, १६ वीं शतीमें ईश्वरसूरिने ललितागचरित्र तथा इसी शताब्दीकी अज्ञात नाम-वाली रचनाएँ, यशोधरचरित और कृष्णचरित एवं १७ वीं शतीमें मालकविने भोजप्रबन्धकी रचना की है। १८ वीं शतीकी रचनाओंमें भूधरदासका पार्श्वपुराण तथा पौराणिक आधारोंपर विरचित हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, श्रीपाल चरित और श्रेणिक चरित आदि मुख्य हैं।

मानवके अन्तर्द्वन्द्व, आत्मचिन्तन, पाप-पुण्यके फल, अन्तस्तलकी निगूढ़ भावनाओंके घात-प्रतिघात एवं कार्योंमें मस्तिष्क और हृदयके समन्वयको जितनी खूबी और सूक्ष्मताके साथ इन परवर्ती जैन प्रबन्धकारों-ने दिखलाया है उतनी खूबी और सूक्ष्मताके साथ इनका अन्यत्र मिलना असम्भव तो नहीं, पर कठिन अवश्य है। एक अहिंसा तत्त्वकी भावना सर्वत्र अनुस्यूत मिलेगी। प्रबन्ध चाहे छोटे हो या बड़े, पर जैन कवियोंने कथाके अनुपातका पूरा ख्याल रखा है। कथामें कहीं मन्थरता और कहीं लपक-झपक नहीं है, बल्कि सन्तुलनात्मक गति है: जिससे पाठक भावनाके उच्च धरातलपर सहजमें ही पहुँच जाता है। पार्श्वपुराण और श्रीपाल चरित्र तो श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्योंकी श्रेणीमें रखे जा सकते हैं। चरित्रोंमें स्थिर और गतिमय दोनों ही प्रकारके चरित्र चित्रित हैं। पार्श्वपुराणमें अत्यन्त सूक्ष्म पर्यवेक्षणसे काम लिया है, इसी कारण कविने सर्वांग चित्र

खींचनेमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। जीवनकी कमजोरियों, मानसिक विकार और विभिन्न परिस्थितियोंके गहन स्तरोकी अभिव्यञ्जना भी प्रशंस्य है।

प्रबन्धकाव्यके दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्यमें सम्पूर्ण जीवनका चित्रण रहता है, पर खण्डकाव्यमें जीवनके किसी खास हिन्दी जैन अंशका ही चित्राकन किया जाता है। काव्यमयी-महाकाव्य पियोंने महाकाव्यमें जीवनकी सर्वाङ्गपूर्ण कथाके साथ निम्नाङ्कित बातोंका होना भी आवश्यक माना है—

१-कथावस्तु सगों या अधिकारोंमें विभक्त होती है।

२-नायक तीर्थंकर, चक्रवर्ती या अन्य महापुरुष होता है।

३-शृङ्गार, वीर या शान्त रसकी प्रधानता रहती है।

४-सन्धियोंमें अद्भुत रस होता है, प्रसंगवश अन्य रस भी आ सकते हैं।

५-नाटककी सभी सन्धियों पायी जाती है।

६-कथावस्तु ऐतिहासिक या जगत्-प्रसिद्ध होती है।

७-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे किसी एक पुरुषार्थको प्राप्त करना उद्देश्य माना जाता है।

८-आरम्भमें मंगलाचरण, आशीर्वचन अथवा प्रतिपाद्य वस्तुका संकेत रहता है।

९-सगोंकी सख्या आठसे अधिक होती है।

१-सर्गवन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥

एकवचनमवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।

शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥

—साहित्यदर्पण

१०—सर्ग या अधिकारके अन्तमे छन्द बदल जाते हैं, कमी-कमी एक ही सर्गमें कई प्रकारके छन्द आते हैं ।

११—प्रभात, सन्ध्या, प्रदोष, सूर्य, चन्द्र, अन्धकार आदि प्राकृतिक दृश्यों, सयोग, वियोग, युद्ध, विवाह आदि जीवनकी परिस्थितियाँ एवं स्वर्ग, नरक, ग्राम, नगर आदि अनेक प्रकारकी वस्तुओंका चित्रण रहता है ।

१२—महाकाव्यका नामकरण किसी प्रधान घटना, काव्यगत वृत्त, कविका नाम अथवा नायकके नामके आधारपर होता है ।

देशी भाषामें स्वयम्भूदेवके पञ्चमचरित, विष्णुमिचरित, पुष्पदन्त कविका तिसद्विमहापुरिसगुणात्कार, पद्मकीर्तिका पार्श्वपुराण और नयनन्दिका सुदर्शनचरित हैं । ब्रजभाषा और राजस्थानी भाषामें विनय-सूरिका मल्लिनाथमहाकाव्य, भूधरदासका पार्श्वपुराण तथा अनूदित हरिवंशपुराण आदि हैं । वास्तविक बात यह है कि राजस्थानमें अभी जैन काव्योंका अन्वेषण करना शेष है । हमारा विश्वास है कि जयपुरके आस पासके जैनमन्दिरोंके शास्त्रागारोंमें हिन्दीके अनेक महाकाव्य छुपे पड़े हैं ।

यहाँ दो-चार उन मुख्य ग्रन्थोंका ही विवेचन दे रहे हैं, जो हमारे अनुगीत्तनका विषय रहे हैं ।

पञ्चमचरित—पद्मचरित्र इस ग्रन्थमें १२००० पद्य हैं । ९० सन्धियों (जैन रामायण) और ५ काण्ड हैं । विवरण निम्न है—

विद्याधरकाण्ड—२० सन्धि

अयोध्याकाण्ड—२२ सन्धि

सुन्दरकाण्ड—१४ सन्धि

युद्धकाण्ड—२१ सन्धि

उत्तरकाण्ड—१३ सन्धि

इन सन्धियोंमें ८३ सन्धियाँ स्वयम्भूदेवकी हैं और शेष सात सन्धियाँ इनके पुत्र त्रिभुवन-द्वारा रचित हैं ।

विद्याधर, राक्षस और वानरवंशका परिचय देनेके अनन्तर बताया है कि विजयार्द्धकी दक्षिण दिशामे रथनूपुर नामके नगरमे इन्द्र नामका प्रतापी विद्याधर रहता था। इसने लंकाको जीतकर कथावस्तु अपने राज्यमें मिला लिया। पाताल-लंकाके राजा रत्नश्रवका विवाह कौतुकमगल नगरके ज्योमविन्दुकी छोटी पुत्री केकसीसे हुआ था, रावण इसी दम्पत्तिका पुत्र था। इसने वचपनमे ही बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी, जिससे यह अपने शरीरके अनेक आकार बना सकता था। रावण और कुम्भकरणने लंकाके अधिपति इन्द्र और प्रभावगाली त्रिद्याधर वैश्रवणको परास्तकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। खरदूषण रावणकी बहन शूर्पणखाका हरण कर ले गया, पीछे रावणने अपनी इस बहनका विवाह खरदूषणके साथ कर दिया और पाताल-लंकाका राज्य भी उसीको दे दिया।

वानरवंशके प्रभावशाली शासक वाल्मिने ससारसे विरक्त होकर अपने लब्धु भाई सुग्रीवको राज्य दे दिगम्बर-दीक्षा ग्रहण कर ली और कैलास पर्वतपर तपस्या करने लगा। रावणको अपने बल, पौरुषका बड़ा अभिमान था, अतः वह वाल्मिपर क्रुद्ध हो कैलास पर्वतको उठाने लगा। इस पर्वतके ऊपर बने जिनालय सुरक्षित रहे, इसलिए वाल्मिने अपने अगूठेके जोरसे कैलास पर्वतको दबा दिया, जिससे रावणको महान् कष्ट हुआ। पश्चात् वाल्मिने रावणको छोड़ दिया और तपस्या कर निर्वाण पाया।

अयोध्यामे भगवान् ऋषभदेवके वंशसे समयानुसार अनेक राजा हुए, सबने दिगम्बरी दीक्षा लेकर तपस्या की और मोक्ष पाया। इस वंशके राजा रघुके अरण्य नामक पुत्र हुआ, इसकी रानीका नाम पृथ्वीमति था। इस दम्पत्तिको दो पुत्र हुए—अनन्तरथ और दशरथ। राजा अरण्य अपने बड़े पुत्र सहित ससारसे विरक्त हो तपस्या करने चला गया तथा अयोध्याका शासनभार दशरथको मिला। एक दिन दशरथकी सभामें नारद ऋषि आये, उन्होंने कहा कि रावणने किसी निमित्तज्ञानीसे यह जान

लिया है कि दशरथ-पुत्र और जनक-पुत्रीके निमित्तसे मेरी मृत्यु होगी । अतः उसने विभीषणको आप दोनोंको मारनेके लिए नियुक्त कर दिया है, आप सावधान होकर कहीं छुप जायें । राजा दशरथ अपनी रक्षाके लिए देश-देशान्तरमें गये और मार्गमें कैकयीसे विवाह किया । कुछ समय पश्चात् महाराज दशरथके चार पुत्र हुए और एक युद्धमें प्रसन्न होकर उन्होंने कैकयीको वरदान भी दिया । रामके राज्याभिषेकके समय कैकयीने वरदान में माँगा, जिससे राम-रक्ष्मण और सीता वन गये तथा महाराज दशरथने जिन-दीक्षा ग्रहण की । सीता-हरण हो जानेपर रामने वानरवर्गी विद्याधर पवनञ्जय और अञ्जनाके पुत्र हनुमान एवं सुग्रीवसे मित्रता की । रामने सुग्रीवके गन्तु साहसगतिका वधकर सदाके लिए सुग्रीवको अपने वश कर लिया और इन्हींके साहाय्यसे रावणका वधकर सीताको प्राप्त किया ।

रावण जैन धर्मानुयायी था । प्रतिदिन जिनपूजा और स्तुति करता था, पर अनीतिके कारण उसके कुलका सहार हुआ ।

अयोध्या लौट आनेपर लोकापवादके भयसे रामने सीताका निर्वासन किया । सौभान्यसे जिस स्थानपर जंगलमें सीताको छोड़ा गया था, वज्र-जंघ राजा वहाँ आया और अपने घर ले जाकर सीताका संरक्षण करने लगा । सीताके पुत्र लवणाकुशने अपने पराक्रमसे अनेक देशोंको जीतकर वज्रजंघके राज्यकी वृद्धि की । जब यह वीर दिग्विजय करता हुआ अयोध्या आया तो रामसे युद्ध हुआ तथा इसी युद्धमें पिता पुत्र परस्परमें परिचित भी हुए । सीता अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हुई, विरक्त हो तपस्या करने चली गयी और स्त्रीलिङ्ग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया । रक्ष्मणकी मृत्यु हो जानेपर राम शोकामिभूत हो गये, कुछ काल बाद बोध प्राप्त होनेपर दिगम्बर मुनि हो गये और दुर्द्धर तपस्याकर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया ।

यह सफल महाकाव्य है । इसकी आधिकारिक कथा रामचन्द्रजी कथा है, अवान्तर या प्रासङ्गिक कथाएँ वानरवश और विद्याधर वंशके

आख्यान रूपमें आयी हैं। प्रासङ्गिक कथावस्तुमें प्रकरी और पताका दोनों ही प्रकारकी कथाएँ हैं। पताका रूपमें सुग्रीव महाकाव्यत्व और मासत-नन्दनकी कथाएँ आधिकारिक कथाके साथ-साथ चली हैं और प्रकरी रूपमें बालि, भामण्डल, वज्रजंघ आदि राजाओंके आख्यान हैं।

कार्य-व्यापारकी दृष्टिसे उक्त कथावस्तुमें प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्यागा, नियताति और फलागम ये पाँचों ही अवस्थाएँ पायी जाती हैं। विद्याधर वंशके वर्णनके उपरान्त अयोध्याकाण्डकी तीसरी अवस्थाएँ सन्धिमें कथासूत्र फलकी इच्छाके लिए उन्मुख होता है। इक्ष्वाकुवंशके महाराज दशरथके प्राणमें राम खेलते दिखलायी पड़ते हैं। द्वितीय अवस्था उस समय आती है जब राम विवाहकर घर लौट आते हैं। वन जाना, सीताका हरण होना और युद्ध करके रावणके यहाँसे सीताको ले आनेके उपरान्त रामका धार्मिक कृत्योंमें लीन हो जाना तथा लक्ष्मणकी मृत्युके उपरान्त रामका वेदनाभिभूत होना और देवों-द्वारा बोध प्राप्त होना तीसरी प्राप्त्याशा नामक अवस्था है। रामका तपस्याके लिए जाना नियताति नामक चौथी अवस्था और रामका निर्वाण प्राप्त करना फलागम नामक पाँचवीं अवस्था है।

इस महाकाव्यमें कथावस्तुके चमत्कारपूर्ण वे अग वर्तमान हैं, जो कथावस्तुको कार्यकी ओर ले जाते हैं। बीज प्रारम्भ नामक अवस्थासे ही दिखलायी पड़ता है, जिस प्रकार बीजमें फल छिपा अर्थप्रकृतियाँ रहता है उसी प्रकार वशोत्पत्ति नामक आख्यानमें सारी कथा छुपी है। वानरवश, विद्याधरवश और राक्षसवशका पारस्परिक सम्बन्ध दिखलाकर कविने मानवीय और दानवीय प्रवृत्तियोंके द्वन्द्वकी अभिव्यञ्जना की है। बिन्दुका आरम्भ रामके जन्मसे होता है, कथाके वास्तविक विस्तार और निगमनका यही स्थान है। पताका और प्रकरीमें बालिका तपाख्यान, विशल्याके भवान्तर, हनूमानका निर्वाण लाम आदि

अवान्तर कथास्थान हैं। रामका निर्वाण लाभ-कार्य नामक अर्थ-प्रकृति है।

अवस्था और अर्थप्रकृतियोंका मेल इसमें सुन्दर ढंगसे हुआ है। बीज अर्थप्रकृति-वंशाख्यानका प्रारम्भ नामक अवस्था-रामके साथ योग

सन्धियाँ दिखलाना मुख सन्धि है। प्रतिमुख सन्धि कथाका वह

स्थान है जहाँ रामकी वानरवंशके विद्याधरोत्ते मित्रता होती है। गर्भसन्धिमे कथाका विस्तार बहुत हुआ है। अवसर्ग सन्धिमे रामका वेदनाभिभूत हो जानेवाला कथाका स्थान है। रामका निर्वाण प्राप्त करना निर्वहणसन्धि-स्थान है, जहाँ कार्य और फलका योग हुआ है।

इस महाकाव्यकी कथावस्तुके नायक पञ्च-राम हैं। यह धीरोदात्त नायक हैं। इनके चरित्रमें महती उदारता है। इनमें शक्तिसे साथ क्षमा तथा दृढ़ता और आत्मगौरवके साथ विनय तथा निरभिमानता है। यह त्रेशठ शल्यकापुरुषोंमेंसे हैं।

इस महाकाव्यमें यों तो सभी रस हैं, पर शान्तरस प्रधान रूपसे परिपक हुआ है। शृङ्गारके संयोग और वियोग दोनों पक्षोंका वर्णन

रस कविने सुन्दर किया है। कषण रसके चित्रणमें तो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। युद्धमें भाई-बन्धुओंके

काम आनेपर कुटुम्बियोंके विलाप पाषाणहृदयकी भी द्रवीभूत करनेमें समर्थ हैं।

प्रकृति आदिकालसे ही कवियोंका आकर्षण-केन्द्र रही है। सभी कवियोंने विभिन्न रूपोंमें प्रकृतिका चित्रण किया है। इस महाकाव्यमें भी

प्रकृतिचित्रण और षट्त्रिंशुओंका वर्णन विशुद्ध प्रकृतिके साथ आलम्बनके

रूपमें किया गया है। सन्ध्याकी सुरमाकी कविने अनेक

वस्तुवर्णन उपमा और उत्प्रेक्षाओंके सुन्दर जालमें बाँधना चाहा है, पर वह सुन्दरीका शब्दचित्र प्रस्तुत नहीं कर सका है। निम्न पंक्ति-देखने योग्य है—

उवहसइ संझाराउ सुह-बंधुर। विदु मयाहरु मोक्षिय-दंतुर ॥
 छिवइ व मरथउ मेरु-महीहरु। तुज्जुवि मज्जुवि कवणु पईहरु ॥
 जं चंद-कंत-सलिलाहि सित्तु। अहिसेय-पणालु व फुसिय चित्तु ॥
 जं विदुम-मरगय-ंति आहि। थिउ गयणु व सुधरणु-पंति आहि ॥
 जं इ-दणील-माला मसीए। अलिहइ बंदि भित्तीए तीए ॥
 जहि पोमराय-पह तणु विहाइ। थिउ अहिणव-संझाराउ णाह ॥
 —पउमचरिउ ७१३

इस महाकाव्यके दो खण्ड हैं—आदिपुराण और उत्तरपुराण। प्रथम खण्डमें ८० सन्धियों और द्वितीयमें ४० सन्धियों हैं। आदिपुराणमें तिस्रह्रि महापुरिस प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथका चरित्र है और उत्तर-गुणालंकार पुराणमें अवशेष २३ तीर्थंकरोंकी जीवनगाथा है। आदिपुराणकी कथावस्तुमें एकतानता है, पर उत्तर-पुराणमें २३ कथाएँ हैं, एकका दूसरेसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं। अतएव महाकाव्यके सभी पूर्वोक्त लक्षण आदिपुराणमें वर्तमान हैं।

महाकाव्यकी सबसे बड़ी विशेषता कथावस्तुमें अन्वितिका होना है। आदिपुराणमें घटनाचक्रके भीतर ऐसे स्थलोका पूरा सन्निवेश है जो मानवकी रागात्मिका वृत्तिको उद्बुद्ध कर सकते हैं, उसके हृदयको भाव-मग्न बना सकते हैं। इसमें कथाका पूरा तनाव है; इसके नायकमें केवल कालकी अपेक्षासे ही विस्तार नहीं है, बल्कि देशापेक्षया भी है। नायक ऋषभनाथ—आदिनाथ उस समयके समाज और वर्गविशेषके प्रतिनिधि हैं। उनके जीवनमें समष्टिके जीवनका केंद्रीयकरण है। महाकाव्यके नायकमें यही सबसे बड़ी विशेषता होनी चाहिये कि वह समष्टिगत भाव-नाओं और इच्छाओंको अपने भीतर रखकर मानवताका प्रतिष्ठान करें। संक्षेपमें यह सफल महाकाव्य है।

१२वीं शतीमें नयनन्दिने १२ सन्धियोंमें सुदर्शन चरितकी रचना की है। यह ग्रन्थ एक प्रेम कथाको लेकर लिखा गया है। कविने बड़े कौशलसे

इस कथाकी व्यञ्जनामे पञ्चनमस्कारका फल घटित किया है। प्रतिदिन अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको सुदर्शन-चरित भक्तिपूर्वक नमस्कार करना प्रत्येक साधकका धर्म है। काव्यके बीच-बीचमे धार्मिक प्रकरण रखे गये हैं। धार्मिक व्यञ्जनाके साथ प्रेम-कथा कहनेकी यह साकेतिक शैली सूफी कवियोंके लिए विशेष अनुकरणीय रही है। इस काव्य-ग्रन्थके कथानकके सभानान्तर ही प्रेम-मार्गी कवियोने कथाएँ गढ़कर अपने सिद्धान्तोका प्रचार किया है।

प्रस्तुत काव्यग्रन्थमे यद्यपि शृंगाररसकी प्रधानता है, तथापि इसका पर्यवसान शान्तरसमें हुआ है। कविने जहाँ एक ओर स्त्रीके सौन्दर्य-चित्रण और आकर्षक परिस्थितियोंमे अपनी कल्पना एव सौन्दर्य-दर्शनकी अन्तर्दृष्टिका परिचय दिया है, वहाँ बीच-बीचमे जैनधर्मके सिद्धान्तोका भी स्पष्टीकरण किया है। नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, प्रकृति चित्रणके रसानुकूल प्रसंग बड़े मनोहर ढंगसे प्रस्तुत किये हैं। जैन साहित्यमे इस महाकाव्यकी शैलीपर अधिक रचनाएँ नहीं हो सकी हैं। आकर्षक रूप-सौन्दर्य ही इस महाकाव्यके आख्यानका आधार है। सुदर्शनका रूप ससारकी समस्त सुन्दर वस्तुओके समन्वयसे निर्मित है। इसके वर्णन, दर्शन या भावनामात्रसे किसीके भी हृदयमे गुदगुदी उत्पन्न हो सकती है।

कवि नयनन्दने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि-द्वारा भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंके बीच घटित होनेवाली अनेक मानसिक अवस्थाओका सुन्दर विद्वलेषण किया है। अभयाके सामने जब सुदर्शन पहुँचता है तो वह उन्मुक्त हृदयसे प्रेमकी भीख माँगती है, किन्तु शील्पर हिमालयकी चट्टानकी तरह अडिग सुदर्शन मानसिक द्वन्द्वोंके बीच पड़कर भी कमजोरियोपर विजय पाता है और स्पष्ट शब्दोंमें उसके प्रस्तावको ठुकरा देता है। क्षोभसे उत्पन्न उदासीनता और आत्मग्लानिकी भावनासे अभिभूत अभया शोर मचाती है, जिसका परिणाम दानवीय शक्तिपर मानवीय शक्तिके विजय रूपमे होता है। कृष्णा, रति, क्रोध, उत्साह आदि स्थायी भावोंके अतिरिक्त कितने

ही छोटे-छोटे भाव और विभिन्न मानसिक दशाश्रुतों का चित्रण श्रेष्ठ कविने किया है। इस कारण इसमें महाकाव्यत्वकी अपेक्षा नाटकत्व अधिक है।

सुदर्शनके स्वभावमें वैयक्तिक विशेषता है, यह धीर प्रधान नायक है, स्वभावतः शान्त और अपनी प्रतिज्ञापर अटल है, इसे कोई भी प्रलोभन पथभ्रष्ट नहीं कर सकता है। कञ्चन और कामिनी जिनसे संसारके दुःख-गिने व्यक्ति ही अपनेको विलग्न रख पाते हैं, से सुदर्शन निरलस है। रस और शैलीकी दृष्टिसे भी यह महाकाव्य है, नायकके नामपर इसका नामकरण किया गया है। दृश्य-योजना, वस्तु-व्यापार-वर्णन और परिस्थिति-निर्माणकी योजना कविने यथास्थान की है। वर्णनोंमें नामोंकी भरमार नहीं है, किन्तु वस्तुके गुणोंका विश्लेषण किया गया है।

देगी भाषा और पुरानी हिन्दीके पञ्चात् कई महाकाव्य प्रचलित हिन्दी भाषामें भी लिखे गये। यद्यपि सोलहवीं शतीके अनन्तर महाकाव्य लिखनेकी परिपाटी उठती गयी, फिर भी पुराण साहित्यको काव्यका विषय बनानेके कारण महाकाव्य रचनेकी परम्परा क्षीण रूपमें चलती रही। प्रकरणवशात् राजस्थानी और ब्रजभाषाके कतिपय जैन महाकाव्योंका आलोचनात्मक परिचय देना अप्रासंगिक न होगा।

यह सफल महाकाव्य है, पूर्वोक्त सभी महाकाव्यके लक्षण इसमें वर्तमान हैं। इसकी कथा बड़ी ही रोचक और आत्मपोषक है। किस प्रकार

वैरकी परम्परा प्राणीके अनेक जन्म-जन्मान्तरोत्तक
पाश्वर्षपुराण चलती रहती है, यह इसमें बड़ी ही खूबीके साथ

वतलाया गया है। पाश्वर्षनाथ तीर्थंकर होनेके नौ भवपूर्व पोदनपुर नगरके राजा अरविन्दके मन्त्री विश्वभूतिके पुत्र थे। उस समय इनका नाम मरुभूति और इनके भाईका नाम कमठ था। विश्वभूतिके दीक्षा लेनेके अनन्तर दोनों भाई राजाके मन्त्री हुए। जब राजा अरविन्दने वज्रकीर्ति-पर चढाई की तो कुमार मरुभूति इनके साथ युद्ध-क्षेत्रमें गया। कमठने राजधानीमें अनेक उत्पात मचाये और अपने छोटे भाईकी पत्नीके साथ

दुराचार किया। जब राजा शत्रुको परास्त कर राजधानीमें आया तो कमठ-के कुक्ष्यकी बात सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ। कमठका काला मुँहकर गधेपर चढ़ा सारे नगरमें घुमाया और नगरकी सीमाके बाहर कर दिया। आत्मप्रताड़नासे पीड़ित कमठ भूताचल पर्वतपर जाकर तपस्वियोंके साथ रहने लगा। मरुभूति कमठके इस समाचारको पाकर भूताचलपर गया, पर वहाँ दुष्ट कमठने उसकी हत्या कर दी। इसके पञ्चात् आठ जन्मोंकी कथा दी गयी है, नौवें जन्ममें काशीके विश्वसेन राजाके यहाँ पार्श्वनायका जन्म होता है। यह आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आत्म-साधना करते हैं, पूर्वभवका साथी कमठ इनकी तपस्यामें नाना विघ्न उत्पन्न करता है, पर ये अविचलित रहकर आत्म-साधना करते हैं। कैवल्य-प्राप्ति हो जानेपर मन्व्य जीवोंको उपदेश देते हैं और सौ वर्षकी अवस्थामें निर्वाण प्राप्त करते हैं।

कथावस्तुसे ही इसका महाकाव्यत्व प्रकट है। नायक पार्श्वनायका जीवन अपने समयके समाजका प्रतिनिधित्व करता हुआ लोक-मंगलकी रक्षाके लिए वृद्ध-परिहर है। कविने कथामें क्रमबद्धता महाकाव्यत्व का पूरा निर्वाह किया है। मानवता और युग-भावना-का प्राधान्य सर्वत्र है। परिस्थिति-निर्माणमें पूर्वके नौ भवोंकी कथा जोड़कर कविने पूरी सफलता प्राप्त की है। जीवनका इतना सर्वाङ्गीण और स्वस्थ विवेचन एकाध महाकाव्यमें ही मिलेगा।

यह जीवनका काव्य है। इसमें एक व्यक्तिका जीवन अनेक अवस्थाओं और व्यक्तियोंके बीच अंकित है। अतः इसमें मानव राग-द्वेषोंकी क्रीड़ाके लिए विलुप्त क्षेत्र है। मनुष्यका ममत्व अपने परिवारके साथ कितना अधिक रहता है, यह पार्श्वनायके जीव मरुभूतिके चरित्रसे स्पष्ट है।

जीवनके आन्तरिक दर्शनका आभास वृद्ध आनन्दकुमारकी आत्म-कल्याणकी छटपटाहटमें कविने कितने सुन्दर ढंगसे दिया है। कवि कहता है—

वालक काया कृपल लोय । पत्र रूप जीवनमें होय ॥
पाको पात जरा तन करै । काल बयारि चलत पर झरै ॥
मरन दिवसको नेम न कोय । यातै कहु सुधि परै न लोय ॥
एक नेम यह तो परमान । जन्म धरे सो मरै निदान ॥

—४।६५-६७

वस्तुतः उपर्युक्त पक्तियोंका यथार्थ चित्रण अत्यन्त रमणीय है। कवि कहता है कि किशोरावस्था कोपलके तुल्य है, इसमें पत्र-रूप यौवन अवस्था है। पक्षोका पक जाना—जरा है। मृत्यु-रूपी वायु इस पके पत्तेको अपने एक हल्के धक्केसे ही गिरा देती है। जब जीवनमें मृत्यु निश्चित है, तो हमे अपनी महायात्राके लिए पहलेसे तैयारी करनी चाहिये।

जीवनका अन्तर्दर्शन ज्ञानदीपके द्वारा ही हो सकता है, किन्तु इस ज्ञानदीपमें तपरूपी तैल और स्वात्मानुभवरूपी वत्तीका रहना अनिवार्य है—

ज्ञान दीप तप तैल भर, घर शोधे भ्रम छोर ।

या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर ॥—४।८१

वस्तु-वर्णन, चरित्र-चित्रण और भाव-व्यञ्जना इस महाकाव्यमे समन्वित रूपमे वर्तमान है। घटना-विधान और दृश्य योजनाओंको भी कविने पूरा विस्तार दिया है। आदर्शवादका मेल कविताकी समाजनिष्ठ पद्धति और प्रबन्ध-शैलीसे अच्छा हुआ है। पार्श्वनायका चरित्र हिसापर अहिंसाकी विजय है। धमाका पीयूष क्रोध और वैरको सुधा बना देता है, क्रोध और उत्पातके स्वरूपको बदल देता है। प्रतिशोध और वैरकी भावनाका अन्त हो जाता है। इसपर कवि कहता है—

इत्यादिक उत्पात सब, वृथा भये अति घोर ।

जैसे मानिक दीपकौं, लगै न पवन झकोर ॥

प्रभु चित चलयो न तन हिल्यो, टल्यो न धीरज ध्यान ।

इन अपराधी क्रोधवत्स, करी वृथा निज हान ॥—८।२३, ८।२५

हिन्दी-जैन-खण्डकाव्य

खण्डकाव्यमे जीवनके किसी खास पहलुपर कविकी दृष्टि केन्द्रित रहती है। यद्यपि घटना-विधान, दृश्य-योजना और परिस्थिति-निर्माणका भी प्रयास खण्डकाव्यके निर्माताओंको करना पड़ता है, पर जीवनके किसी खास अंगकी सीमामें बाँधकर। जैन साहित्यकारोंने भी हिन्दी भाषामे अनेक खण्डकाव्योंकी रचना की है। परिस्थिति निर्माणमें इन्हे अभूतपूर्व सफलता इसलिए प्राप्त हुई है कि जीवनके द्वन्द्वोंमें प्रवृत्तिसे हटकर निवृत्ति-की ओर ले जाना इनका व्यय था। इस कारण जीवनकी मर्मस्पर्शी घटनाओंको घटित करानेके लिए परिस्थितियोंका निर्माण सुन्दर ढंगसे हुआ है। ससारका कोई भी पदार्थ अपनी स्थितिमे नहीं रहना चाहता है, परिस्थितिकी ओर बढ़ता है, क्योंकि जड़ और चेतन सभी प्रकारके पदार्थों-मे परिवर्तन और गतिका होना अनिवार्य है। जैन हिन्दी कवियोंने स्याद्-वाद दर्शनकी अनुभूतिसे प्रत्येक पदार्थकी गति और परिस्थितिका अनुभव कर खण्डकाव्योंमें घटना-विधान इतने सुन्दर ढंगसे घटित किये हैं, जिससे मानव जीवनके राग-विराग सहजहीमे प्रकट हो जाते हैं।

पञ्चमीचरित, नागकुमारचरित, यशोधरचरित, नेमिनाथचउपई, बाहुबलिरास, गौतमरास, कुमारपाल-प्रतिबोध, जम्बूस्वामीरासा, रेवतगिरि-रासा, संघपति समरारास, अञ्जनासुन्दरीरास, धर्मदत्तचरित, ललिताग-चरित, कृपणचरित, धन्यकुमारचरित, जम्बूचरित आदि अनेक जैनखण्ड-काव्य देशी भाषा, पुरानी हिन्दी और परवर्ती हिन्दीमे विद्यमान है। इन सभी खण्डकाव्योंमें घटना-वैचित्र्यके साथ चरित्र-चित्रण सफल हुआ है। मानव जीवनकी रागात्मिका वृत्तिके उद्घाटनके साथ शुद्धात्मानुभूतिकी ओर ले जानेकी क्षमता इन सभी खण्डकाव्योंमें है। नायक, रस, बल्लु-विधान, अलंकार-योजना और शैली आदि विभिन्न दृष्टिकोणोंकी अपेक्षासे ये सभी खण्डकाव्य सफल है। यह जैन कवियोंकी प्रमुख विशेषता है कि वे पुरातन कथावस्तुमे नवीन प्राणोंकी प्रतिष्ठा कर नूतन और मौलिक

उद्भावनाएँ करनेमें सफल हुए हैं। पौराणिक कथानकके होनेपर भी विचार निखरे और पुष्ट हैं। इनमेंसे कुछका विवरण निम्न प्रकार है—

यह कवि पुण्डन्तकी अमर कृति है। इसमें नौ सन्धियाँ हैं। पञ्चमी व्रतके उपवासका फल प्राप्त करनेवाले नागकुमारका चरित वर्णित है।

नागकुमारचरित अपनी कल्पनाका पूरा उपयोग किया है। युद्ध और संघर्षकी परिस्थितिके क्षणोंमें होनेवाली नागकुमारकी विलक्षण मनोदशाका कविने वैज्ञानिक उद्घाटन किया है। आजकलके मनोविज्ञानके सिद्धान्त मले ही उसमें न हो, पर संघर्षकी स्थितिमें मानवमन किस प्रकार व्याकुल रहता है तथा कल्पनाके मुनहले परोंपर बैठ नभोमण्डलमें कितनी दूर तक विचरण कर सकता है, का आभास सहजमें ही मिल जाता है। इस खण्डकाव्यमें वस्तुवर्णनका कौशल और प्रबन्धकी पटुताका अद्वितीय मिश्रण है। कवि नागकुमारको वनराजके द्वारा देखे जानेका वर्णन करता हुआ करता है—

जहिं काणणंते ठागोहतरु, तहिं हुंतउ पल्लवितु सवरु ॥

दिट्ठउ परमेसरु कुसुम सरु, आवासिउ सणह जणतिहरु ॥

आएस पुरिसु परियाणियउ, मिच्चहिं जाइवि परियाणिधउ ॥

तं दिट्ठु जयंधर णिवत्तणउ, झसकेउ देउ किं सो मणउ ॥

पुच्छिउ कामें किं आइयउ, को तुहुं विणएण विराइयउ ॥

कवि पुण्डन्तका देशी भाषामें नागकुमार-चरितके समान यह भी सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमें यशोवर राजाका चरित्र वर्णित है। कविने

जनताकी भावनाका चित्रण यशोधरके चरित्रमें किया यशोधर-चरित है। वीर-गाथाकालीन रचना होनेके कारण शक्ति

और शौर्यका प्रदर्शन अधिक किया गया है। इस काव्यमें मूर्त जीवनमें अमूर्तको, स्थूल शरीरमें सूक्ष्मको और क्षण-भंगुर संसारमें नित्य और अमर-तत्त्वको अभिव्यञ्जित करनेका प्रयास किया है। लौकिक प्रेमकी विभिन्न

अवस्थाओंका उद्घाटन जीवनके विभिन्न चित्रों-द्वारा किया है। वर्णन और दृश्य-योजना भी सुन्दर बन पड़ी है।

धर्मसूरि विरचित १३ वीं शतीका यह खण्डकाव्य है। इसमें भगवान् महावीरके समकालीन जम्बूस्वामीका चरित्राकन किया है। यह गृहस्थ अवस्थामें ही अपने बुद्धि-कौशल और वीरत्वके लिए जम्बूस्वामीरासा प्रसिद्ध थे। भगवत्सम्राट् विम्बसारके आदेशानुसार इन्होंने पर्वतीय शत्रुको परास्तकर गौरव प्राप्त किया और अन्तमें भगवान् महावीरके संघमें दीक्षित हो तपस्या की और निर्वाण-पद पाया। कविने इसमें गार्हस्थ्य जीवनका सुन्दर चित्रण किया है। दाम्पत्यको मर्यादामें बद्धकर श्रृङ्गारिक जीवन आध्यात्मिक जीवनपर किस प्रकार छा जाता है, इसका दिग्दर्शन कराया है।

दर्पोक्तियों वीर-रसके पोषणमें कहीं तक सहायक हैं, यह पर्वतीय राजा-के दर्पसे स्पष्ट है। आत्म-विश्वास और आत्म-गौरवकी भावनाका जम्बू-स्वामीमें अकनकर उनके प्रतिनायक पर्वतीय राजाके विचारोंका कच्चा चिह्न सुन्दर ढंगसे दिखलाया है। रस, नायक, दृश्यविधान, घटना-वैचित्र्य आदिकी दृष्टिसे यह खण्डकाव्य है, पर सवादोंका अभाव और कथा-वस्तुकी शिथिलता इसके सौन्दर्यको विकृत करनेमें सहायक हैं।

सभी रासा ग्रन्थ एक ही शैलीपर लिखे गये हैं। इनमें से अधिकांश खण्डकाव्योंमें काव्यत्व अल्प और पौराणिकता अधिक है। धर्मवार्ता अन्य रासा ग्रन्थ होनेके कारण सुन्दर नीति और विश्वोपकारकी भावना अन्तर्हित है। इन ग्रन्थोंके रचयिताओंने धार्मिक आस्था-को खुल्लखुलानेके लिए सुदृढ़ और सौम्य दृष्टान्तोंको प्रस्तुत किया है। मानवको इन्द्रिय और मनकी ढासतासे छुड़ाकर अतीन्द्रिय आनन्दकी चौरस भूमिमें लाने उपस्थित किया है। रासा ग्रन्थोंमें प्रेम और विरहके चित्रोंका भी अभाव नहीं है। वेदनाकी अग्निमें तपाकर आध्यात्मिक रसानुभूतिकी तीव्रता दिखलायी है। वीर रसका चित्रण तो इन काव्योंमें

सफल हुआ है। किन्तु शान्तरस निरूपणकर सभी रास पर्यवसानको प्राप्त हुए हैं। जीवनके आवरणमें छुपे चिरन्तन राग-द्वेषोंका जिस कविको जितना गहरा परिज्ञान होगा, वह उतना ही सफल खण्डकाव्य लिख सकेगा। जैन कवियोंमें यह परख-विद्यमान थी, जिससे वे राग-द्वेषका परिष्कार करनेवाली वैराग्यप्रद परिस्थितियोंका निर्माणकर काव्यजगत्में सफल हुए। जीवनके क्रिया-व्यापारोंका संचालन रासग्रन्थोंके रचयिताओंमें विद्यमान था, जिससे वे घटना-विधानमें अधिक सफल हो सके हैं।

अंजनामुन्दरी रासमें अजनाके विरहका ऐसा मुन्दर चित्रण किया गया है, जिससे विरहिणीके जीवनकी समस्त परिस्थितियोंका चित्र सामने प्रस्तुत हो जाता है। संस्कृत साहित्यमें विरहकी जिन दस दशाओंका नित्पण किया गया है, वे सभी अंजनाके जीवनमें विद्यमान हैं। विरहमें प्रियसे मिलनेकी उत्कंठा, चिन्ता अथवा प्रियतमके दृष्ट-अनिष्टकी चिन्ता, स्मृति, गुणकथन आदि सभी नैसर्गिक दृग्से दिखलाये गये हैं।

विरहिणी अजनाके जीवनमें कविने सद्दानुभूतिकी भी कमी नहीं दिखलायी है। पति-द्वारा अकारण तिरस्कृत होनेसे अजनाके मनमें अत्यन्त ग्लानि है, वह अपने सुखी बाल्यकालकी स्मृतिका पतिके प्रथम साक्षात्कारकी मधुर स्मृतिके अनुभव-द्वारा अपने दुःख-संकटके समयको प्रसन्नतापूर्वक बिता देती है। भगवद्भक्ति और सदाचार ही उसके जीवनका आधार हैं। वह एक क्षण भी अघामिक जीवन बिताना पाप समझती है। पतिके इतने बड़े अन्यायको भी प्रसन्नतापूर्वक सहन करती हुई, अपने भाग्यको कोसती है। अंजनामें अपूर्व शालीनता है, पातिव्रतकी ज्योति प्रभासण्डल बनकर उसे आलोकित कर रही है।

अंजनाको गलतफहमीके कारण उसकी सास गर्भावस्थामें वरसे निकाल देती है। उस समयकी उसकी करुण अवस्थाको देखकर निन्दुरता भी रुठन किये बिना नहीं रह सकती है। यह एक सरस खण्ड काव्य है। यद्यपि इसकी भाषा पर गुजरातीका पूर्ण प्रभाव है, तो भी रस-परिपाकमें

‘मी नही आयी है। इसके रचयिता कवि मरानन्द हैं। वसन्तका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

मधुकर कई गुंजारव मार चिन्कार बहंति ।

कोयल कई पटहूक्का हूकड़ा मेलवा कन्त ॥

मलयाचल थी चलकिरा पुलकिड पवन प्रचण्ड ।

मदन महानूप पाक्षइ विरहीनिं सिर दंड ॥

‘लघुसीता सतु’ कवि भगवतीदासका एक सुन्दर खण्डकाव्य है। इसमें कविने सीताके सतीत्वकी झोंकी दिखलाई है। बारह माचोमे मन्दोदरी-सीताके प्रश्नोत्तरके रूपमे रावण और मन्दोदरीकी चित्तवृत्तिका सुन्दर विम्लेषण किया गया है। मानसिक घात-प्रतिघातोंकी तद्बीर वितनी चतुराईसे खींची गयी है, यह निम्न उदाहरणसे स्पष्ट है—

तब बोलइ मन्दोदरी रानी । सखि अपाढ़ घनघट घहरानी ॥

पीय गये ते फिर घर आवा । पामर नर नित मंदिर छावा ॥

लवहि पपीहे दादुर मोरा । हियरा उमरा धरत नहिं धीरा ॥

बादर उमहि रहे चौपासा । तिय पिय विनु किहिं उरुन उसासा ।

नन्ही वृन्द क्षरत क्षर लावा । पावस नम आगसु दरसावा ॥

दामिनि दमकत निशि अंधियारी । विरहिनि काम वान उरमारी ।

भुगवहि भोगु सुनहि सिख मोरी । जानति काहे भई मति वारी ॥

मदन रसायनु ह्वइ जग सारु । संजसु नेसु कथन विवहारु ॥

जब लग हंस शरीर महिं, तब लग कीजइ भोगु ।

राज तजहिं भिक्षा भमहिं, इड भूला सबु लोगु ॥

कृष्णजगावन काव्य कविवर ब्रह्मगुल्लाने १७वीं शतीमे इस काव्यकी रचना की है। इसकी कथावस्तु रोचक और सरस है।

राज्यह नगरमे वसुमति राजा शासन करता था। इसी नगर

श्रेष्ठपुत्री धर्यकरी रहती थी। राजाने मुनिराजसे धर्यकरीकी भवावली पृष्टी। मुनि कहने लगे—

यह पहले भवमें उजैनके सेठ धवलकी पत्नी थी, इसका नाम मल्लि देवी था। उजैनके राजा पद्मनाथने अष्टाह्निका पर्वका उत्सव सामूहिक रूपसे मनाया, धवल सेठ भी इसमें शामिल हुआ, पर मल्लि सेठानीको यह नहीं रुचा। पूजाके लिए सामग्री और पकवान बनवाये अवश्य, किन्तु अच्छी वस्तुएँ न लेकर सड़े गले सामानसे सामग्रियों तैयार कीं, जिससे मुनियोंको आहार नहीं दिया जा सका। मल्लिकी भावनाएँ सदा कलुषित रहती थीं; दान धर्ममें एक कान्नी कौड़ी भी खर्च करनेमें उसके प्राण सूखते थे; इस कारण पतिसे निरन्तर संघर्ष होता रहता था। इस कंजूसीके परिणामस्वरूप ही वह कुछ रोगसे पीड़ित हो गयी। मुनिराज आगे बोले—स्त्रियों ही लोभ नहीं करती, पुरुष भी परमलोभी होते हैं। वह कहने लगे कि कुण्डलनगरमें लोभदत्त सेठ रहता था, कमल और लच्छा उसकी उदारमना पत्नियाँ थीं, दोनों स्त्रियोंमें अत्यन्त स्नेह था। सेठ बहुत ही लोभी था, जब कहीं वह जाना तो अपने मण्डार-धरका ताज बन्द कर जाता।

एक दिन दो चारणमुनि सौभाग्यसे वहाँ आये, उनके वहाँ उतरते ही द्वार खुल गया। मुनिराजोंको आहारदान देनेसे उन्हें आकाशगामिनी और वन्धमोचनी विद्याएँ सिद्ध हो गयीं। अतः सेठके घरसे बाहर जानेपर वे दोनों अपनी विद्याओंके प्रभावसे तीर्याटन करने लगीं। एक दिन पडोसिन रुठकर आयी और छिपकर उनके विमानमें बैठ गयी, दोनों सेठानियोंके साथ उसने सहस्रकूट चैत्यालयके दर्शन किये और वहाँसे मूल्यवान रत्न ले आयी। संयोगकी बात वे क्रीमती रत्न लोभदत्त सेठके हाथ बेचे। रत्नोंके सौंदर्य और गुणोंपर मुग्ध होकर सेठ उससे कहने लगा, 'तू जहाँसे इन रत्नोंको लायी है, उसकी खान बतला दे'। लोभमें आकर पडोसिनने सेठको विमानमें छुपाकर बैठा दिया। रत्नहीनसे लौटते समय

मार्गमें अकस्मात् वह विमान फट गया और सेठकी मृत्यु हो गयी। सेठानियोंने संसारके स्वरूपका विचारकर धैर्य धारण किया और अन्तमें समाधिपूर्वक प्राण-विसर्जन करनेके कारण देव हुई।

मुनिराजके उपदेशसे शयकरीको विरक्ति हो गयी और उसने तपस्या-द्वारा प्राण विसर्जनकर देव-पर्याय प्राप्त की।

यद्यपि इसमें खंडकाव्यके अनेक लक्षण नहीं भी पाये जाते हैं, फिर भी जीवनको प्रभावित करनेवाली घटनाओं में सार्वजनीन चित्रण है। इसका

नायक घवलसेठ और नायिका मल्लिदेवी है। नायक खण्डकाव्यरस सात्त्विक प्रकृतिका है और नायिका तामसी प्रकृतिकी, इसमें लोभकी पराकाष्ठा है। मल्लिकी आधिकारिक कथावस्तु है और लोभ-दत्त सेठकी कथा प्रासंगिक है। दोनों कथाओंमें अन्विति है। लोभीकी सूक्ष्म मानसिक दशाओंका चित्रण करनेमें कविको पूर्ण सफलता मिली है।

खरी आलोचनाकी दृष्टिसे वह सफल खंडकाव्य नहीं भी ठहरता है, पर जीवनके कतिपय तत्त्वोंका विवेचन ऐसा मार्मिक हुआ है, जिससे इसे सफल खंडकाव्य कहा जा सकता है। पाञ्चात्य समीक्षा पद्धतिमें नायकका वर्ग और जातिका प्रतिनिधि होना तथा परिस्थितियोंका ऐसा निर्माण रहे, जिससे नायक अपना विस्तार कर सके और उसके चरित्रका दर्शन समी कर सके खंडकाव्यका विषय है। वस्तु, संवाद आदि भी इसके सफल हैं।

कवि मनरङ्गलाल विरचित यह एक खण्डकाव्य है। इसकी भाषा कन्नौजीसे प्रभावित खड़ी बोली है। भगवान् नेमिनाथ नेमिचन्द्रिका का चरित कवियोंके लिए अधिक आकर्षक रहा है, अतएव अपभ्रंश और हिन्दीमें अनेक रचनाएँ काव्यरूपमें लिखी गयी हैं।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके अन्तर्गत सौराष्ट्र देशमें द्वारावती नगरी थी। इस नगरीमें राजा समुद्रविजय राज्य करते थे। ये बड़े धर्मात्मा पराक्रम-शाली और शूरवीर थे। इनकी रानीका नाम शिवदेवी था। इनके पुत्रका नाम नेमिकुमार रखा गया।

नेमिकुमार वचनसे ही होनहार, धर्मात्मा और पराक्रमशाली थे। इन्हींके वंशज कृष्ण और बलभद्र थे। कृष्णने अपने भुजबल-द्वारा कंस, जरासंध जैसे दुर्दमनीय राजाओंका क्षणभरमे सहार कर दिया था। इनकी सोलह हजार रानियाँ थीं, जिनमें आठ रानियाँ पट्टमहिषीके पदपर प्रतिष्ठित थीं। एक समय नेमिकुमारके पराक्रमको सुनकर कृष्णके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई तथा इन्होंने उनकी शक्तिकी परीक्षाके लिए उनको अपनी सभामें आमन्त्रित किया। नेमिकुमार यथासमय कृष्णकी सभामें उपस्थित हुए और अपनी कनिष्ठ अँगुलीपर जर्जर डालकर कृष्ण आदिको झुला दिया, कृष्णको इनके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर महान् आश्चर्य हुआ। फलतः उन्होंने अपनी पट्टरानियोंको नेमिस्वामीके पास भेजा। रानियोने चारों ओरसे नेमिकुमारको घेर लिया और अधिक अनुरोध करनेपर विवाह करनेकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। कृष्णने नेमिकुमारका विवाह झूनागढ़के राजा उग्रसेनकी कन्या राजुलमतीसे निश्चित कराया। वहाँपर इन्होंने अपनी कृत्नीतिसे पशुओंको पहलेसे कैद करवा दिया। जिससे अगवानीके पश्चात् टीकाको जाते समय पशुओंकी चित्कार नेमिस्वामीको सुनाई दी।

पशुओंके इस कक्षकन्दनको सुनकर नेमिकुमारको ससारकी सार-हीनताका अनुभव हुआ और उन्हें विषय-कषायोंसे विरक्ति हो गयी। पशुओंको बन्दीगृहसे मुक्तकर नेमिकुमार वरके वस्त्राभूषणोंको उतार दिगम्बर दीक्षा ले गिरनार पर्वतपर तपस्या करने चले गये। एक क्षण पहले जो हर्ष और उल्लास दिखलायी पड़ रहा था, विवाहकी भङ्ग सहनाई बज रही थी; दूसरे ही क्षण यह हर्षका वातावरण शोकमें परिणत हो गया। सहनाई बन्द हो गयी। वरके बिना विवाह किये चले जानेसे अन्तःपुरमें रोना-धोना शुरू हो गया। महाराज उग्रसेन चिन्तामग्न हो गये। राजुलमतीको जब यह समाचार मिला तो वह मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। प्रयत्न करनेपर जब उसे होश आया तो वह विलाप करने लगी।

माता-पिताने राजुलमतीको अन्य वरके साथ विवाह करनेके लिए

बहुत जोर दिया, पर उसने कहा—“भारतीय रमणी एकबार जिसे आत्म-समर्पण कर देती है, फिर वही सदाके लिए उसका अपना हो जाता है। मले ही लोगोके दिखावेके लिए विवाहकी रस्म पूरी न हुई हो। स्वामी तप करने चले गये, मैं भी उन्हींके मार्गका अनुसरण करूँगी।” इतना कहकर राजुल भी तपस्या करने गिरनार पर्वतपर चली गयी।

इस काव्यमे शान्तरस, वात्सल्यरस, करुणरस और विप्रलम्भ शृंगारका सुन्दर परिपाक हुआ है। सीमित मर्यादामे स्वस्थ वातावरणको उपस्थित करनेवाला विप्रलम्भशृङ्गार विशेषरूपसे राजुलके विलाप-वर्णनमे आया है। करुणरसके वर्णनमें शब्द स्वयं करुणाका मूर्तिमान रूप लेकर प्रस्तुत हुए हैं। कविको इस रसके परिपाकमे अच्छी सफलता मिली है। मानवकी राग-भावनाओका चित्र प्रस्तुत करनेमे कुशल चित्रकारका कार्य कविने कर दिखलाया है।

अलंकारोमे अनुप्रास, यमक, उल्लेख, रूपक, उपमा और अति-शयोक्तिका समावेश सर्वत्र है। छन्दोंमे दोहा, चौपाई, भुजगाप्रयात, नाराच, सोरठा, अडिल, गीता, छप्पय, त्रोटक, पहरी आदि छन्दोंका प्रयोग किया गया है। गणदोष, पददोष, वाक्यदोष और यत्तिमग आदिका अभाव पाया जाता है। कोमलकान्तपदावलीयुक्तभाषा अपूर्व विकासको लिये हुए है।

इस काव्यका सन्देश यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको जीवनमे जनसेवाको अपनाना चाहिए। इसके लिए परिश्रमी, अध्यवसायी, कर्मठ, चारित्रवान्, आत्मशुद्धी, उदार और परोपकारी बनना आवश्यक है। निष्क्रिय और अकर्मण्य व्यक्ति ससारमे कुछ भी नहीं कर पाता है। हिसासे हिसाकी आग नहीं बुझाई जा सकती है, घृणासे घृणाका अन्त नहीं हो सकता है। प्रेम, क्षमा, अहिंसा, सहानुभूति और आत्मसमर्पण-द्वारा ही शान्तिकी स्थापना की जा सकती है।

कविने इसमें नेमिकुमारके उस जीवन-अंशको दिखलाया है, जिसका

अनुकरण कर समाज, देश और जातिकी भलाई की जा सकती है। परोपकार या सेवा करनेके पहले अपना आत्मशोधन करना आवश्यक है, जिससे सेवक अपने सेवाकार्यसे च्युत न हो सके।

चरित और कथा-काव्य

हिन्दी जैन साहित्यमें महाकाव्य और खण्डकाव्योंके अतिरिक्त कुछ काव्यग्रन्थ ऐसे भी हैं, जिनमें काव्यत्व अल्प और चरित्र अधिक है। धर्मोपदेश देनेके लिए तीर्थकरो या अन्य पुरुषोंके चरित्र लिखे गये हैं। कुछ ऐसी कथाएँ भी पद्यबद्ध हैं, जो व्रतोंकी महिमा प्रकट करनेके लिए लिखी गई हैं। अपभ्रंश भाषामें १०-१५ चरित ग्रन्थ, २ बड़े-बड़े कथाकोश एवं ३०-३५ छोटी-छोटी कथाएँ आज भी उपलब्ध हैं। इसी प्रकार हिन्दीमें लगभग १०० चरित ग्रंथ और २०० कथाएँ उपलब्ध हैं। इन कथाओंमें चरित्र-चित्रणके साथ आनन्द और विषादका अपूर्व मिश्रण विद्यमान है। काव्यके मूल आलम्बन राग-व्येपके विभिन्न रूपान्तर इन कथाओं और चरितकाव्योंमें पाये जाते हैं। जीवनमें पाये जानेवाले भावोंका चरित्र-काव्योंमें यथेष्ट समावेश हुआ है। चरितोंमें भिन्न-भिन्न पात्रोंकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंकी सूक्ष्मता दिखलाई गयी है। सांस्कृतिक विशेषताएँ तो इन ग्रन्थोंमें विशेषरूपसे उपलब्ध हैं।

ये चरितग्रंथ और कथाग्रंथ रोचक होनेके साथ अहिंसा सत्कृतिके विशाल भवनकी झॉकियाँ सामने प्रस्तुत करते हैं। पाठक इनके अध्ययन और स्वाध्यायसे कुछ समयके लिए सासारिक विषमताओंको भूल जाता है, उसके सामने आदर्शका एक ऐसा मनोरम चित्र खिंच जाता है, जिससे वह अपनी कुत्सित वृत्तियोंको परिष्कृत करनेके लिए सकल्प कर लेता है। यद्यपि अपनी मानवीय कमजोरीके कारण पाठक थोड़े समयके पश्चात् ही अपने सकल्पको भूल जाता है और पुनः विषय-कपायोमें आसक्त हो पूर्ववत् आचरण करने लगता है, तो भी सत्-संस्कारोंका निर्माण होता ही है।

इन ग्रन्थोंमें स्त्री-पुरुषोंकी नैसर्गिक विशेषताएँ भी ठिखलाई पड़ती

हैं। घटनाओंकी कुशल संघटनकी ओर प्रत्येक लेखक बहुत सावधान रहा है, जिससे चरितोंमें रंजन-शक्तिकी भी कमी नहीं आने पायी है। जीवन और जगतकी लोकरजनकारिणी अभिव्यञ्जना करनेमें कथाकाव्यके निर्माताओंको पर्याप्त सफलता मिली है। इन्होंने भावोन्मेष और मानव-मन-रंजिनी शक्तिकी अभिव्यक्ति इतनी चतुराईसे की है, जिससे रसोद्रेकमें तनिक भी कमी नहीं आने पायी है।

वस्तु और उद्देश्यकी दृष्टिसे इन ग्रन्थोंमें शान्तरस प्रधान है परन्तु इसके एक ओर करुण और दूसरी ओर वीररसकी धारा भी कल-कल निनाद करती हुई अबाध गतिसे बहती है। कहीं-कहीं विप्रलम्भ शृंगार भी प्रबल वेगके साथ कगार तोड़ता हुआ-सा दृष्टिगोचर होता है, परन्तु शान्तरसके सामने उसे भी हारकर सिर झुका लेना पड़ता है। व्यग, विनोद और हास्यकी भी कमी इन ग्रन्थोंमें नहीं है।

सामन्तकालीन अन्तःपुरीकी विलासिताका चित्रण भी कवियोंने विषय-कषायोंके त्यागके लिए ही किया है। आदिसे अन्त तक स्वस्थ बौद्धिक दृष्टिकोण (Intellectual vision) उपस्थित किया गया है। निस्सग सरोवरमें मग्न करनेके लिए रमणियोंके विलास-वैभवका अतिरिक्त प्रस्तुत किया गया है। झूठा आदर्श जीवनके लिए भगलप्रद नहीं हो सकता, यह चरित-काव्योंसे स्पष्ट है। जैन कवियोंने भावोंकी अतल गहराईमें उतरकर इन चरितोंमें भी अमूर्त भावनाओंको मूर्तरूप प्रदान करनेका प्रयास किया है। पाठकोंको जिज्ञासाको उत्तरोत्तर तीव्र करनेके लिए कथाओंको गति-शीलता दी गयी है। अतः ये कथाएँ व्रत या चरित्र पालनेके लिए भावोत्तेजक (thought Provocation) है।

काव्यकी दृष्टिसे इनमें कविता अलंकृत नहीं की गयी है। शब्दचयन और वाक्ययोजना भी चमत्कारपूर्ण ढंगसे नहीं हुई है तथा महाकाव्य या खण्डकाव्यके विधानका अनुसरण भी इनमें नहीं हुआ है। इसी कमीके

कारण इनको पृथक् काव्यकोटिमें रखा जा रहा है। चरित और कथा-ग्रंथ इतने अधिक हैं, कि इनका अनुशीलनात्मक परिचय देना असम्भव-सा है। अतएव इस प्रकरणमें केवल तीन-चार ग्रंथोंके अनुशीलन देकर ही इस कोटिके काव्योंसे परिचित करानेका प्रयास किया जायगा। इस चरित-तात्मक विशाल साहित्यका परिशीलन स्वयं एक बृहद् ग्रंथ बन सकता है।

यह सुन्दर चरित-काव्य है। इसमें गजसिंह-गुणमालका प्राचीन आख्यान दिया गया है। प्रसंगवश कविने अपने समयके समाज, सम्प्रदाय और राज्यका भी चित्रण किया है। कवि कहता है कि गजसिंह-गुणमाला चरित^१ गोरखपुरी नगरीमें अरिमर्दन नामका राजा राज्य करता था, इसकी कनकावती नामकी रानीकी कोखसे गज-

सिंह नामके राजकुमारका जन्म हुआ था। गजसिंहके विवाहके अनंतर राजा-रानी अपने पुत्रको राज्यभार सौंप स्वयं चारित्र्य पालनेके लिए वन-वासी हो गये। इसी गोरखपुरीमें एक सेठकी कन्या गुणमालाके रूप सौन्दर्यपर मुग्ध होकर गजसिंहने उसके साथ विवाह किया था। कारणवश गजसिंह गुणमालासे रूठ गया और गुणमाला अकेली रहने लगी। एक विद्याधरने उसे शीलधर्मसे च्युत करना चाहा, परन्तु गुणमाला अपने व्रतपर दृढ़ रही। गुणमालाको शीलवती जानकर विद्याधरने अनेक विद्याएँ उसे भेंट कीं।

अब गजसिंह उससे सगुन रहने लगा। वह किसी पुरुषकी तलाशमें रहा और यन्त्र-मन्त्रके चक्करमें बहुत दिनों तक पड़ा रहा। उसने देवी, भैरव और यक्षको प्रसन्न करनेके लिए अनेक यत्न किये। उसकी ह्म प्रवृत्तिसे एक तान्त्रिक अवधूतने लाम उठाया और उसने अपने आधीन कर लिया। योगीने एक योगिनी-द्वारा गुणमालाकी परीक्षा करायी। गुणमाला शीलशिरोमणि थी, उसके आगे किसीकी कुछ भी न चली।

१. यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। प्रति प्राप्तस्थान-जैनसिद्धान्तमयन, आरा।

कुछ समय बाद गजसिंह और गुणमालामें पुनः सन्धि हो गयी और दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे ।

एक दिन एक विद्याधरी गजसिंहको और विद्याधरीका पति गुणमालाको उठाकर ले गया । दोनोंने दोनोंको वासनानुरक्त बनानेके असफल प्रयत्न किये । वे पति-पत्नी दोनों ही अपने शीलव्रतमें दृढ़ रहे । उनकी दृढ़ताके कारण विद्याधर-दम्पत्तिकी वासना काफूर हो गयी, और वे सकट-मुक्त हो पुनः मिले ।

कुछ समय पश्चात् दम्पतिने श्रीसम्भेद शिखरकी यात्रा की । कालान्तरमें इन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस पुत्रको धोड़ेपर चढ़कर चौगान खेत्त्रके बहुत शौक था । एक दिन रत्नशेखर मुनिसे इस राजकुमारने भी स्वदारसन्तोष और परिग्रहपरिमाण व्रत ग्रहण किये । विदर्भ नगरकी राजकुमारीसे इसका विवाह हुआ । अन्तमें गजसिंह और गुणमाताने धर्मघोष मुनिसे जिनदीक्षा लेकर तप किया ।

इस चरितमें मानव-जीवनके राग-विरागोंका सुन्दर चित्रण हुआ है । इसमें अनुरक्त और विरक्त युवक-युवतियोंकी मनोवृत्तिका बड़ा ही सरस और हृदयग्राह्य चित्रण किया गया है । वैभवकी अपारराशिके बीच रहकर भी व्यक्ति किस प्रकार प्रलोभनको ठुकराकर नैतिकताका परिचय दे सकता है, यह गुणमालाके चरितसे स्पष्ट है । नारीका सारा अवसाद पातिव्रतसे ही दूर हो सकता है, स्वर-लहरीके प्रकम्पनमें नारीकी आत्म-ज्योति जाग्रत होती है । मिथ्याविश्वास और आढम्बर जीवनको कितना विकृत करते हैं, यह गजसिंहकी मन्त्र-तन्त्रकी साधनासे स्पष्ट है । दृढ़ विश्वासकी विद्युत् बड़े-बड़े सकटोंके पर्वतोंको चूर-चूर करनेकी क्षमता रखती है ।

नारी जीवनमें लज्जाका आवरण मगल-सूत्र है, इसके फट जानेसे वेदनाका ज्वार दबाये नहीं दबता, जीवन नारकीय बन जाता है ।

कविने वन, नदी, सन्ध्या और उषाका भी सरस चित्रण किया है ।

उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, रूपक, अनुप्रास और उदाहरण अलंकारोंकी भरमार है। भाषा और उक्तिको अलंकृत बनानेकी कविने पूरी चेष्टा की है। शृंगार, करुण, वीर, वीभत्स और शान्तरसका परिपाक यथास्थान अच्छा हुआ है। अनेक स्थानोंमें काव्य-चमत्कार भी विद्यमान है।

इस चरितके रचयिता परिमल कवि हैं। इसमें श्रीपाल और मैना-सुन्दरीकी प्रसिद्ध कथा लिखी गयी है। देश और पुरोका वर्णन विशद

श्रीपालचरित रूपमें किया गया है। जीवन-कथाको सीधे और सरल ढंगसे व्यक्त कर कविने घटनाओंकी क्रमवद्धताका पूरा निर्वाह किया है। इसमें धर्म और अधर्मका संघर्ष, पाप और पुण्यका द्वन्द्व, हिंसा और अहिंसाके घात-प्रतिघात मार्मिक ढंगसे व्यक्त किये गये हैं। अभिमान व्यक्तिको कितना नीचे गिरा देता है, अविवेकसे बुद्धिका सर्वाभाव किस प्रकार हो जाता है, यह मैनासुन्दरीके पिताकी हठग्रहितासे स्पष्ट है।

दोहे और चौपाई छन्दमें ही यह चरित-ग्रन्थ लिखा गया है। प्रास-योजनामें कविको अच्छी सफलता मिली है। यतिभंग या छन्दोभंग कहीं भी नहीं मिलेगा। गेय छन्दका प्रयोग करनेसे भावनाओंको गतिशील बनानेका आयास प्रशस्य है। भाषाकी दृष्टिसे इसमें ब्रज, अवधी, बुन्देल-खण्डी और मारवाड़ीका पूरा मिश्रण है। कहींपर दीनी, लीनी; कहीं दियो, लियो, अजहूँ और कहीं कहाणे, सुवासणि, सीसाण और भणू आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है। तत्सम शब्द बहुत कम आये हैं। वाहन, कोढ़ी, परत्रीण आदि तद्भव शब्दोंका प्रयोग बहुलतासे हुआ है।

वर्णनमें कवि यथास्थान उपदेश देनेसे नहीं चूका है। धवल सेठको धिक्कारते हुए उपदेशोकी झड़ी लगा दी है।

इस चरितके रचयिता कवि हीरालाल है। इसमें काव्य-चमत्कार विद्यमान है। ८वें तीर्थकर भगवान् चन्द्रप्रभकी जीवन-गाथा इसमें वर्णित की गयी है। इस चरितमे १७ सन्धियों हैं। चन्द्रप्रभचरित आरम्भमे श्रोता, वक्ता, नमस्कार और त्रिलोक वर्णनको विस्तार देनेके कारण कथाका आरम्भ बहुत दूर जाकर किया गया है। जो व्यक्ति आरम्भसे ही कथा-जिज्ञासु है, वह इस वर्णनके पढ़नेसे ऊब-सा जाता है। आरम्भमें चार सन्धियोंमें ऋषभदेवके चरितका ही वर्णन किया गया है। पॉचवी सन्धिसे दसवीं सन्धितक पद्मनाभके भवान्तरोंका विशद वर्णन किया गया है। इस प्रकार दस सन्धियो तक चरित-नायकके जीवनके सम्बन्धमें कुछ भी प्राप्त नहीं हो पाता है। ग्यारहवीं सन्धिमे भगवान् चन्द्रप्रभका गर्भावतार दिखलाया गया है। भव-भवान्तरोकी प्रासंगिक कथाओंको कविने इतना रोचक बनाया है, जिससे जिज्ञासु पाठकोंका मन ऊबता नहीं है। ये कथाएँ आधिकारिक कथासे जुटी हुई हैं, समस्त शरने एक ही साथ मन्दाकिनीका रूप धर ग्यारहवीं सन्धिमें उपस्थित हो जाते हैं।

भगवान् चन्द्रप्रभ काशीके नृपति महासेनकी पट्टरानी लक्ष्मणाके गर्भसे उत्पन्न हुए। नगरीके सौन्दर्य और वनविभूतिके चित्रणमे कविने अपना पूरा उपयोग लगाया है। वनवर्णनमें कितने ही प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध मेवे और फल्लेके नाम गिनाये हैं। उदाहरणार्थ एक पद्य उद्धृत किया जाता है—

कमरख करपट कैर कैथ कटहर किरमारा ।

केरा कौच कसेर कंज कंकोल कट्टहारा ॥

खिरनी खैर खजूर खिरहरी खारख खेजर ।

गौदी गौरख पान गुंज गूलर गुद्ध गोशर ॥

बारहवीं सन्धिमे भगवान्की बाललीलाओंका बड़ा ही सरस चित्रण किया है। उनकी वेपभूषा, अनुपम शौर्य-पराक्रम, ज्ञान एवं अन्य कर्मोंका

चित्रण किया गया है। तेरहवीं सन्धिमें ससारके स्वार्थ, राग, द्वेष और क्षणभंगुर रूपको देख चन्द्रप्रभकी विरक्तिका वर्णन किया है। वे ससारकी वस्तुस्थितिका नाना प्रकारसे विचार करते हैं। शरीर, धन-वैभव जो एक क्षण पहले आकर्षक मालूम पड़ते थे, वे भी विरक्त हो जानेपर काटनेको दौड़ते हैं। कविने इस स्थलपर मानवीय भावनाओंसे आरोपित प्रकृतिके बीभत्स रूपका सुन्दर विश्लेषण किया है।

चौदहवीं सन्धिमें कैवलज्ञान प्राप्तकर भगवान्ने ससारसे तप्त और मार्गभ्रष्ट प्राणियोंको कल्याणका मार्ग बतलाया है। इस प्रकरणमें आत्मा-ही परमात्मा है, यही कर्त्ता, भोक्ता और अपने उत्थान-पतनका उत्तरदायी है, आदि बतलाया गया है। पन्द्रहवीं सन्धिमें ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और सोलहवीं सन्धिमें चन्द्रप्रभ स्वामीका मोक्षगमन तथा सत्रहवींमें कविने आत्मपरिचय लिखा है।

वर्णनशैलीमें प्रवाह है, भाषा सानुप्रास है। कवितामें ताल, स्वर और अनेक राग-रागनियोंका भी समावेश किया गया है। अनुप्रास, यमक, विरोधाभास, श्लेष, उदाहरण, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारकी यथास्थान योजना की गयी है। निम्न पद्य दर्शनीय हैं—

कवल बिना जल, जल बिन सरवर, सरवर बिन पुर, पुर बिन राय ।
राय सचिव बिन, सचिव बिना बुध, बुध विवेक बिन शोभ न पाय ॥

इस प्रकार भाव, भाषा और शैली आदिकी दृष्टिसे यह चरित सुन्दर काव्य है।

इस चरितके रचयिता कवि नवलशाह हैं। इसमें अन्तिम वर्द्धमानचरित तीर्थंकर भगवान् महावीरका जीवनचरित विस्तार-पूर्वक वर्णित है। इसमें सोलह अधिकार हैं। आरम्भमें वक्ता, श्रोता आदिका लक्षण बतलाया है। वर्द्धमान स्वामीके पूर्वभर्षोंका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नगरीके वनमें पुरुषवा भील रहता था। इसने श्रावकके व्रत ग्रहण किये,

त्रतोके प्रभावसे वह नरकर सौधर्म स्वर्गमे देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर भरतचक्रवर्तीके मरीचिकुमार नामका पुत्र हुआ। भगवान् आदिनाथके साथ मरीचिकुमारने भी जिनदीक्षा ग्रहण की। दीक्षासे भ्रष्ट होकर इन्हें अनेक योनियोमे भ्रमण करना पड़ा। अनेक जन्म धारण करनेके उपरान्त यही मरीचिकुमारका जीव कुण्डलपुर नगरमे राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके वर्द्धमानकुमार नामका पुत्र हुआ। कुमार वर्द्धमानकी शूरवीरता, ज्ञान एव दिव्य तेजसे प्रभावित होकर ही खोगोने इनके नाम महावीर, सन्मति एव वीर रखे थे। यह आजन्म अविवाहित रहे। ३० वर्षकी अवस्थामे ससारसे विरक्त हो तप करने चले गये और आत्मशोधन कर अशान्त विश्वको शान्तिका उपदेश दिया। अब महावीर भगवान् महावीर बन गये, इनका उपदेशामृत पान करनेके लिए मनुष्य ही नहीं, पशु, पक्षी, देव, दानव सभी आते थे। भगवान् महावीरने समस्त आर्यदेशोंमे विहारकर जनताको कर्तव्यमार्गका उपदेश दिया। अन्तमें मोक्ष लाभ किया।

इस चरित-काव्यमे सभी प्रसिद्ध छन्दोका प्रयोग किया गया है। कविता साधारणतः अच्छी है। सिद्धान्त और आचारकी बातोंका निरूपण बड़े विस्तारके साथ किया गया है। नख-शिख वर्णनमें भी कवि किसीसे पीछे नहीं है। महारानी प्रियकारिणीके रूप सौन्दर्यका चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

अम्बुजसौ जुग पाय बनै, नख देख नखत्त भयौ भय भारी ।
नूपुरकी झनकार सुनै, दग शोर भयौ दशहू दिश भारी ।
कंदल थंभ बनै जुग जंघ, सुचाल चलै गजकी पिय प्यारी ।
क्षीन बनौ कटि केहरि सौ, तन दामिनी होय रही लज सारी ॥
नाभि निबौरियसी निकसी पढहावत पेट सुकंचन धारी ।
काम कपिच्छ कियौ पट अन्तर, शील सुघीर धरै अविकारी ॥

भूपन बारह भाँतिनके अँत, कण्ठमें ज्योति लसै अधिकारी ।

देखत सूरज चन्द्र छिपै, मुख दाढिम दंत महाछविकारी ॥

भाषा ब्रज, मुन्देली और खड़ी बोलीका मिश्रित रूप है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति अलंकारोंका प्रयोग अनेक स्थलों पर किया गया है।

१७ वीं शताब्दीमें रायमल्लके प्रद्युम्नचरित और सुदर्शन चरित, १९ वीं शताब्दीमें ज्ञानविजयका मलयचरित, नथमल विल्लखके नागकुमारचरित और जीवन्धर चरित; सेवाराम के हनुमच्चरित, शान्तिनाथ पुराण और भविष्यदत्त चरित एव भारमल्लके चारुदत्तचरित और समव्यसनचरित चरित-काव्य है। कवियोंने इन काव्योंमें मानव जीवनकी सुन्दर अभिव्यञ्जना की है।

हिन्दीके कथाकाव्योंमें पर्यात्मक दो कथासंग्रह बहुत प्रसिद्ध हैं—आराधनाकथाकोश और पुण्यास्रवकथाकोश। भारमल्लकी कई कथाएँ जो कि प्रबन्धकाव्यके रूपमें लिखी गयी हैं, बड़ी ही रोचक और हृदयस्पर्शी हैं। शीलकथा, दर्शनकथा, एव निक्षिभोजनत्याग कथा तो अत्यन्त लोकप्रिय है। आराधनाकथाकोशमें १२९ कथाओंका संग्रह और पुण्यास्रवकथाकोशमें ५६ कथाओंका संग्रह है।

मानवके विकासके साथ उसकी इच्छाशक्ति और जिज्ञासावृत्ति भी विकसित होती है। यही वृत्ति मानवको कथा सुनने और कहनेके लिए बाध्य करती है। कुशल कलाकार कथाओंको भी काव्यका रूप दे देते हैं, वे इन्हे इतना रोचक और सरस बनाते हैं जिससे ज्ञानकी मद्दभूमिको पार करते समय पाठक ऊब न जाय और वह बीच-बीचमें वृक्षोंकी छायासे आच्छादित सरोवरोंके निकट बैठकर शान्ति लाम कर सके।

पुण्यास्रव कथाकोशकी कथाएँ बड़ी ही रोचक, हृदयको छूनेवाली और मर्म-वेदनाको प्रकट करनेवाली हैं। लेखकने इनसे पाप-पुण्यके फलका भी विवेचन किया है। आजकलकी कहानीके समान जीवनके किसी

एक घटनाको लेकर ही ये कथाएँ नहीं लिखी गयी हैं, बल्कि इनमें सर्वाङ्गीण जीवनका चित्राकन सफलतापूर्वक किया गया है। इस कथा-संग्रहमें चारुदत्त, राधा श्रेणिक, सेठ सुदर्शन, प्रभावती, वज्रदन्त, पूजाका फल, नवकारमन्त्रका फल आदि कथाएँ अधिक मर्मस्पर्शी हैं।

सेठ सुदर्शनकी कथाको ही लीजिये। निश्शक्ति एवं श्रद्धामय भावनासे एक मन्त्रके दृढ़ श्रद्धानके फलसे एक ग्वाला भरकर श्रेष्ठिपुत्र सुन्दर कुमार होता है। उसका रूप-लावण्य इतना आकर्षक है कि एक रानी भी उसके चरणोंमें गिर पड़ती है और रूपकी भिक्षा माँगती है। इस स्थानपर मानवकी रागात्मक भावनाओंका हृदय-ग्राह्य सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इस कथामे सत्सगति और कुसगतिके फलकी भी अभिव्यजना की गयी है। तीन दिनकी मुनिसंगतिसे एक गणिका अपने कृत्योपर पञ्चात्ताप करती हुई अन्यायोपाजित धनपर लात मारकर आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लेती है और अन्तमें उच्च पद पाती है। इस कथामे शुभाशुभ कर्तव्यके फलफलका सरस विवेचन किया गया है। अन्य कथाएँ भी आनन्दानुभूति उत्पन्न करनेवाली हैं। चारुदत्तकी कथा तो इतनी मार्मिक है कि कोई भी प्राणी इसे पढ़कर दो आँसू गिराये बिना नहीं रह सकता। इसी प्रकार अवशेष कथाएँ भी रस-संचार करती हैं।

इस संग्रहकी वर्णनशैली मनोरम और अलंकृत हैं। काव्यके चमत्कारके साथ सौन्दर्यानुभूति इसमें चार चाँद लगाये हुए हैं।

जोधराज गोदीआ विरचित सम्यत्तचक्रौमुदीकी कथाएँ भी बड़ी रोचक हैं। दोहा, सवैया, सोरठा, छप्पय, चौपड़ आदि छन्दोंमें यह कथाग्रन्थ लिखा गया है। जीवनके विभिन्न घात-प्रतिघातोंका सुन्दर विश्लेषण इस काव्य-ग्रन्थमें किया है। घटना-निर्माण और परिस्थितियोजनाका सुन्दर समावेश किया गया है। कविता अच्छी है। उदाहरणके लिए एक छप्पय उद्धृत किया जाता है—

तबहिं पावडी देखि चोर भूपति निज जान्यौ ।
 देखि मुद्रिका चोर तबै मन्त्री पहिचान्यौ ॥
 सूत जनेऊ देखि चोर प्रोहित है भारी ।
 पंचनि लखि विरतान्त यहै मनमें जु विचारी ॥
 भूपति यह मन्त्री सहित प्रोहित युत काढी दयौ ।
 इह भाँति न्याव करि भलिय विधि धर्म थापि जग जस लयौ ॥

इस प्रकार कथा-काव्य मनोरजनके साथ आदर्श प्रस्तुत करते हैं,
 जिससे कोई भी व्यक्ति अपने जीवनका उत्कर्ष कर सकता है ।

द्वितीयाध्याय

हिन्दी-जैन-गीतिकाव्य और उसकी इतर गीतिकाव्यसे तुलना

कविता जीवनका अन्तर्दर्शन और रागात्मिका अभिव्यक्ति है। सुख-दुःखानुभूति मानवमें ही नहीं, पशु-पक्षियोंमें भी पायी जाती है। वाणी या अन्य माध्यमों-द्वारा मनुष्यने अपनी अनुभूतियोंकी अभिव्यक्तिको स्थायित्व प्रदान किया है। गीतिकाव्योंमें भावनाकी अनुभूति अधिक गहरी होती है। मिलन-विरह, हर्ष-शोक और आनन्द-विषादका चित्र सीमित रूपमें रोयता-द्वारा गीतिकाव्यमें उपस्थित किया जाता है। इसमें छन्द और रागविशेष-द्वारा आत्मनिष्ठता, आत्मानुभूति एवं भाव-प्रकाशन किया है। हिन्दी-जैन-साहित्यमें गीतिकाव्यका महत्वपूर्ण स्थान है। अपभ्रंश भाषामें भी जैन कवियोंने अनेक सरस गीत लिखे हैं, जिनमें प्रेम, विरह, विवाह, युद्ध और अध्यात्म-भावनाकी अभिव्यञ्जना सुन्दर हुई है। सगीत और लयके सहारे ये गीत गानेके लिए रचे गये हैं।

परवर्ती हिन्दी-जैन-साहित्यमें लावनी, मजन, पद आदिके रूपमें विपुल गीतात्मक साहित्य पाया जाता है। विषयकी दृष्टिसे अध्यात्म, नीति, आचार, वैराग्य, भक्ति, स्वकर्त्तव्य-निरूपण, आत्मतत्त्वकी प्रेयता और शृङ्गार भेदोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रायः सभी पदोंमें आत्मालोचनके साथ मन, शरीर और इन्द्रियोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका निरूपण कर मानवको सावधान किया है। गीतिकाव्यके निम्न सिद्धान्तों के आधारपर जैनपदोंका विश्लेषण किया जायगा।

१—सगीतात्मकता।

२—किसी एक भावना या किसी रागात्मिका अनुभूतिकी कलापूर्ण समन्वित अभिव्यक्ति ।

३—आत्मदर्शन और आत्मनिष्ठा ।

४—वैयक्तिक अनुभूतिकी गहराई ।

गीत या पदोमे गेयताका रहना आवश्यक है । इसका आधार शब्द, अर्थ, चेतना और रसात्मकता है । शब्द जहाँ पाठकको अर्थकी भाव-
जैन पदोमें भूमिपर ले जाते हैं, वहाँ नादके द्वारा श्रव्य मूर्त विधान भी करते हैं । शब्दोंका महत्त्व उनके द्वारा संगीतात्मकता प्रस्तुत मानसिक चित्र और जापित वस्तुके सामञ्जस्यमें है । जिस वस्तुको चर्मचक्षुओसे नहीं देखा है, उसका भी कल्पना-द्वारा मानस-चक्षुओके सामने ऐसा चित्र प्रस्तुत होता है, जो अपने सौन्दर्यके स्रोतमे मानवके अन्तस्को झुका देता है । जैनपदोमे स्वामाविक गीत-धाराका अक्षुण्ण प्रवाह है, उनमे अतल्लस्पर्शिनी क्षमता है । वनारसीदास, दौलतराम, बुधजन और भागचन्दके पदोमे मुक्त संगीतकी धारा स्वच्छन्द और निर्वाध रूपसे प्रवाहित है । यो तो श्रेष्ठ पदोका सौन्दर्य संगीतमें नहीं, भावात्मकतामे होता है । अकुश रूपमे रहनेवाला संगीत सौन्दर्यकी विकृतिमे साधन बनता है । संगीतका अनुबन्ध रहनेपर भी जैनपदोमे जो मार्मिकता और स्नेहपिच्छल रसधारा है, उसका समाहित प्रभाव मानवीय वृत्तिपर पड़े बिना नहीं रह सकता । प्रभातराग, रामकली, ललित, विलावल, अलहिया, आसाचरी, टोरी सारंग, लहरि सारंग, पूर्वी एकताल, कनडी, इमन, झंझोटी, खंमाच, केदार, सोरठा, विहाग, मालकोस, परज, कलिंगडो, भैरवी, धनासरी, मल्हार आदि राग-रागनियाँ इन पदोमें व्यक्त हैं । कवि दौलतरामके निम्न पदमें नाद सौन्दर्यके साथ स्वर और तालका समन्वय संगीतके मूर्तरूपको भी मुखरित करता है—

चलि सखि देखन नाभिरायघर नाचत हरिनटवा ॥टेक॥

अद्भुत ताल मान शुभलय युत चबत रागपटवा॥चलि सखि० ॥१॥

मनिमय नूपुरादि भूपनहुति, यत सुरंग पटवा ।
 हरिकर नखन नखन पै सुरतिय, पग फेरत कटवा ॥चलि सखि०॥२॥
 किन्नर कर धर चीन बजावत, लावत लय झटवा ।
 दौलत ताहि लखैं चख नृपते, सूझत शिवबटवा ॥चलि सखि०॥३॥
 कविवर बुधजनने भी विलावल रागको भीमी तालपर कितने सुन्दर
 ढगसे गाया है । इस पदमे भाषाकी तड़क-भड़क और चमक दमक ही
 नहीं, किन्तु छन्द और लयका सामञ्जस्य मानव अन्तरांगको उद्बुद्ध करनेमें
 समर्थ है । ससारके बाह्य रूपपर मुख व्यक्तिको सजग करनेके लिए तथा
 वासनामे फँसे व्यक्तिको सावधान होनेके लिए कहा है कि इस भवको
 प्राप्तकर कौड़ीके मोल न बहाओ । कवि कहता है—

नरभव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो ॥टेक॥
 नाहक भमत ठानि पुद्गलसौं, करम-जाल क्यों परना हो ॥१॥टेक॥
 यह तो जड़ तू ज्ञान अरूपी, तिल-तुष ज्यों गुरु वरना हो ।
 राग-दोस तजि भजि समताकौ, करम साथके हरना हो ।

नरभव० ॥टेक॥

यो भव पाय विसय-सुख सेना, गज चढ़ि ईं धन होना हो ।
 'बुधजन' समुझि सेय जिनवर-पद, ज्यो भव-सागर तरना हो ॥

नरभव० ॥

ससारकी स्वार्थपरतासे भयभीत होकर कविवर भागचन्दने राग
 विलावलमे संगीतकी तान छोड़ते हुए अन्तर्तमकी अभिलाषा अभिव्यक्त
 की है । कवि कहता है कि सभी पुरजन-परिजन स्वार्थके साथी हैं ।
 अन्त समय कोई काम नहीं आता; जिस प्रकार हिरण मृगमरीचिकाके
 प्रलोभनसे आकृष्ट होकर नाना कष्ट सहन करता है उसी प्रकार यह जीव
 भी ससार-रूपी वनमे निरन्तर कपाय और वासनाओंसे अभिभूत होकर
 भटकता रहता है । शरीर-भोगोसे ज्वरतक विरक्ति नहीं होती; शान्ति
 नहीं मिलती—

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥टेक॥

स्वजन कुटुम्बी जन तू पोपै, तिनको होय सदैव गुलाम ।

सो तो हैं स्वारथके साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम ॥

सुमर सदा० ॥१॥

जिमि मरीचिकामें मृग भटकै, परत सो जब ग्रीपम अतिघाम ।

तैसे तू भव माही भटकै, धरत न इक छिन हू विसराम ॥

सुमर सदा० ॥२॥

करत न ग्लानि अबै भोगनिमें, धरत न वीतराग परिनाम ।

फिरि किमि नरक माहिं दुख सहसी, जहँ सुखलेश न आठौं जाम ॥

सुमर० ॥३॥

तातैं आकुलता अब तजिकैं, थिर व्है बैठो अपने धाम ।

‘भागचन्द’ बसि ज्ञान-नगरमें, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥

सुमर सदा० ॥टेक॥

‘सुमर सदा मन आतम राम’ में कविने अनेक अक्षोमें रेखाचित्रकी भाँति कतिपय शब्दरेखाओं-द्वारा ही भावनाकी अभिव्यञ्जना की है। सगीतके मौन-सौन्दर्यके साथ कल-कल ध्वनि करती हुई भावधारा मानव-मनको स्वच्छ करनेमें कम सहायक नहीं है।

मैया भगवतीदासके पदोंमें भी सगीतका निखरा स्वरूप मिलता है। राग-रागनियोंका समन्वय भी प्रत्येक पदमें विद्यमान है। शरीरको परदेशी-का रूपक देकर वास्तविकताका प्रदर्शन किस माधुर्यके साथ किया गया है, यह देखते ही बनता है। कविने कुशल कलाकारकी तरह मीनाकारी और पच्चीकारी की है—

कहा परदेशीको पतियारो ।

मनमाने तब चलै पंथको, साँझ गिनै न सकारो ।

सबै कुटुम्ब छाँड़ हतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो ॥

दूर दिशावर चलत आपही, कोठ न रोकन हारो ।
कोळ प्रीति करो किन कोटिक, अन्त होयगो न्यारो ॥
धन सों राचि धरम सौ भूलत, झलत मोह संझारो ।
इहि विधि काल अनन्त गमायो, पायो नहिं भव पारो ॥
सोंचें सुखसों विमुख होत हो, भ्रम मदिरा मतबारो ।
चेतहु चेत सुनहु रे भइया, आप ही आप संभारो ॥

जैन पदोंमें गीतिकाव्यकी दूसरी विशेषता आत्मनिष्ठा भी पायी जाती है । अन्तर्दर्शन-द्वारा आत्मनिष्ठताकी भावना वैयक्तिक सुख, दुःख, हर्ष,

जैन-पदोंमें
आत्मनिष्ठा और
वैयक्तिकता

शोक, राग, द्वेष एव हास्य अश्रुके गीत गाती है । इन पदोंमें आत्म-भावनाकी अभिव्यञ्जना इतनी प्रबल है, जिससे इनका आधार अधिकरण-निष्ठताको माना जा सकता है । कल्पनाशील भावुक कवि केवल बाह्य वस्तुओंसे ही प्रभावित नहीं होता, केवल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक कारण ही उसे क्षुब्ध नहीं करते, बल्कि वह आन्तरिक कारणोंसे भी क्षुब्ध और प्रताडित होता है । जैन पद रचनेवाले सभी कवियोंने अपने अन्तर्दमसे प्रेरणा प्राप्त की, वे बाह्य संसारसे अनासक्त हैं । चर्म-चक्षुओंके स्थानपर उनके मानस-चक्षु उद्बुद्ध हैं । उन्होंने अपनी भावनाओंको विग्वजनीन बनानेके लिए वैयक्तिक भाव और चेतनाको आदर्श एव भावात्मक रूप प्रदान किया है । आत्म-चेतनाकी जाग्रति इन पदोंका प्राण और लयपूर्ण भाषामें आत्मानुभूतिकी अभिव्यक्ति इनका उद्देश्य है । कवि-वर बुधजनेने निम्नपदमें कितनी गहरी आत्मानुभूतिका परिचय दिया है, इनकी अन्तर्ज्वाला धू-धूकर जल रही है । कविके आकुल प्राण शान्ति-प्राप्तिके लिए छटपटा रहे है, अतः कवि आत्म-विभोर हो कहता है—

हो मना जी, थारी बानि, घुरी छै दुखदाई ॥टेक॥

मिल कारिजमें नेकु न लागत, परसौ प्रीति लगाई ॥ हो० ॥१॥

या सुभाषसौं अति दुख पायो, सो अब त्यागो भाई ॥ हो० ॥२॥

‘बुधजन’ औसर भाग न पायो, सेबो श्री जिनराई ॥ हो० ॥३॥

जहाँ हम कवि भागचन्दके पदोंमें अन्तर्दहनके साथ गाम्भीर्य पाते हैं वहाँ कवि बनारसीदासके पदोंके प्रबल वेग, अन्तस्के शोधनकी क्षमता और स्वस्थ व्यञ्जना पाते हैं। आध्यात्मिक शान्ति-प्राप्तिके लिए कवि दौलतरामने कोमल-कान्त-पदावलीमें अपनी कमनीय अनुभूतियोंकी मार्मिक अभिव्यञ्जना की है। कवि अन्तस्में गुणगुनाता हुआ गा उठता है—

पारस जिन चरण निरख, हरख यो लहायो,

चितवत चन्दा चकोर ज्यों प्रमोद पायो ॥

ज्यों सुन घनघोर शोर, मोर हर्षको न ओर,

रंक निधि समाजराज पाय मुदित थायो ॥ पारस० ॥

ज्यों जन थिरक्षुधित होय, भोजन लखि सुखित होय,

भेज गदहरण पाय, सरज सुहरखायो ॥ पारस० ॥

बासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज,

शान्तदशा देख महा, मोहतम पलायो ॥ पारस जिन० ॥

जाके गुन जानत जिम, भानन-भवकानन हम,

जान ‘दौल’ शरन आय, शिव सुख ललचायो ॥ पारस जिन० ॥

इन पक्तियोंमें आत्मनिवेदनकी भावना तीव्र और गम्भीर है। प्रसु-भक्तिका जलप्रवाह सारी चेतनाओंको धो देता है, ज्ञानका बाँध टूट जाता है और प्रबल वेगमें जीवन प्रवाहित होने लगता है तथा अपने आराध्यके निकट पहुँचकर शान्तिलाम करता है। कविकी यह अनुभूति ऐन्द्रियक नहीं, इन्द्रियातीत है।

गीतिकाव्यका तीसरा तत्त्व भाव और अभिव्यञ्जनाके समन्वयमें अनुभूतिकी अन्विति है। इसके बिना न तो सवेदनशीलता रहती है और न उससे उत्तेजना प्राप्त होती है। जीवनमें ऐसे कम ही क्षण आते हैं, जब

मानवकी वृत्ति अन्तर्मुखी होती है। मानसिक प्रतिक्रियाएँ सामाजिक आधार रखकर गतिशीलता ग्रहण करती हैं। सहसा दीप्त हो उठनेवाले क्षणोंमें सवेदनशीलता गतिमान अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार रेखाचित्रमें एक रेखाके अभावमें चित्र अधूरा रह जाता है और एक रेखा अधिक होनेसे चित्र विकृत हो जाता है उसी प्रकार अनुभूतिकी अभिव्यजनामें भी हीनाधिकता होनेपर विकृति आती है, अतः अभिव्यजनामें अत्यन्त सावधानी रखनी पडती है। जैनपदोमें अनुभूतिके सकेतोंका सन्तुलन है, अतः रूपहीनता अथवा विरूपताके चित्रोंका प्रायः अभाव है। कविवर बनारसीदासके निम्न पदमें अनुभूति और सकेतोंका सन्तुलन दर्शनीय है—
चेतन तू तिहुँकाल अकेला !

नदी नाव संजोग मिलै ज्यों, त्यों छुटुम्बका मेला ॥ चेतन० ॥

यह संसार अपार रूप सब, ज्यों पट पेखन खेला ।

सुखसम्पत्ति शरीर जल बुदबुद, विनशत नाहीं बेला ॥ चेतन० ॥१॥

मोहमगन आतमगुन भूलत, परी सोहि गलजेला ॥

मैं मैं करत चहुँ गति डोलत, बोलत जैसे छेला ॥चेतन०॥२॥

कहत 'बनारसि' मिथ्यामल तजि, होय सुगुरुका चेला ।

तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला ॥चेतन०॥३॥

कविवर भूधरदासजीने ससारकी असारता दिखाते हुए अपनी आन्तरिक भावनाओंको बड़े ही सुन्दर ढंगसे अभिव्यक्त किया है। कवि कहता है—

जगमें जीवन थोरा, रे अज्ञाबी जागि ॥टेक॥

जनम ताढ तरु तैं पड़े, फल संसारी जीव ।

मौत मही में आयहैं, और न ठौर सदीव ॥जगमें०॥१॥

गिर-सिर दिखला जोइया, चहुँ दिशि बाजै पौन ।

बलत अर्चमा मानिया, बुझत अचम्भा कौन ॥जगमें०॥२॥

जो छिन जाय सरे आयूमैं, निश दिन हूँ कै काल ।

याँधि सकैं तो है अला, पानी पहिली पाल ॥जगमें०॥३॥

मनुष देह दुलैरय है, मति चूकै यह दाव ।

‘भूधर’ राजल कंत ही, शरण सितायी आव ॥जगमें०॥४॥

अध्यात्म प्रेमी कवि बनारसीदासने आत्मानुभूतिके कवि बनारसी- निर्वारमे प्रवेशकर काव्यकी सुरीली तान भरी है । दासके पद इनके सरस और हृदयग्राही पद आत्मकल्याणमे बड़े ही सहायक है ।

मानव अनुभूति, वासना और विचारोंसे जीवित है । जीवनकी विस्तृत भूमिकाके रूपमें अनुभूतिका आलोक है और अनुभूतियोंमें श्रेष्ठ है आत्मानुभूति । इसमें सारा ध्यान खिंचकर एक विन्दुपर आ टिकता है, जहाँ दुःख नहीं, छिपाव नहीं, सकोच नहीं । व्यक्ति बाह्यसे विमुख हो अन्तस्की ओर जवतक नहीं मुड़ता है, मन इधर-उधर भटकता रहता है । मन एक बार जब आत्मोन्मुख हो जाता है तो फिर भागनेका उसे अवकाश नहीं रहता । कविवरने मनको इसी सन्तोपकी ओर ले जानेका सकेत किया है । मनके तुष्ट हो जानेपर अन्तस्तलका रस उमड़ पड़ता है, मनुष्य अपनी सुषुप्त खो आत्माका साक्षात्कार करता है । आस्था और विश्वाससे परिपूर्ण मनकी अविचलित अवस्था कर्म-ग्रन्थिके मोचनमें बड़ी सहायक होती है ।

तृष्णा इतनी प्रबल और उद्दाम है कि मनुष्यका इस ओर झुकाव होते ही वह इसकी प्रबल लपेटोंसे आक्रान्त हो जाता है और अपना सर्वस्व खो बैठता है । इसके विपरीत जीवनमें वही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है जो आशाके वशवर्ती न होकर सन्तोपके मार्गका पथिक है । लोभका बीज परिग्रह है, क्योंकि परिग्रहके बढ़नेसे मोह बढ़ता है और मोहके बढ़नेसे तृष्णा बढ़ती है, तृष्णासे असन्तोप और असन्तोपसे दुःख होता है । कविने निम्नपदमे इसी भावनाको बड़े अनूठे ढंगसे प्रदर्शित किया है—

रे मन ! कर सदा सन्तोष ।

जातैं मित्त सब दुख दोष ॥ रे मन० ॥ टेक ॥१॥

बढत परिग्रह मोह बढ़ावत, अधिक तृष्णा होत ।

यहुत ईधन जरत जैसैं, अगनी जैची ज्योति रे ॥ रे मन० ॥२॥

लोभ लालच मूढ़ जन सों, कहत कलन दान ।

फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धनकी हान ॥ रे मन० ॥३॥

नारकिनके पाँव सेवत, सकुच मानत संक ।

ज्ञान करि बूझै 'वनारसि', को नृपति को रंक ॥ रे मन० ॥४॥

जब कवि ससारके त्वायोंसे ऊब गया, नाना उपचार करनेपर भी उसके मनका सगय नहीं हटा तो वही अपने मनकी आलंचना करना हुआ आकाशा व्यक्त करता है । कविकी आकाशा वैयक्तिक नहीं, अपितु सार्वजनीन है । सारग रागकी मधुरिमा हृदयको रसयुक्त कर देती है तथा अन्तस्मे आत्मबुद्धि जाग्रत करती है । कविवर कहता है—

दुविधा कब जैहै या मनकी ॥ दुवि०॥

कब जिननाथ निरंजन सुमिरों, तजि सेवा जन-जनकी ॥

दुविधा० ॥१॥

कब रुचिसौ पीचैं हग चातक, बूढ़ अखयपद धनकी ॥

कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूँ न मनना तनकी ॥

दुविधा० ॥२॥

कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दिइता मुगुन वचन की ।

कब सुख लहाँ भेद परमारय, मिटै धारना धन की ॥

दुविधा० ॥३॥

कब घर छाँटि होहुँ पकाकाँ, लिये लालसा यन की ।

ऐसी दसा होय कब मेरी, हौं बलि-बलि या छन की ॥

दुविधा० ॥४॥

बुद्धि, राग और कल्पना तत्त्वका समन्वय, अनुभूतिका सन्तुलन, भाव और भाषाका एकीकरण, लय और तालकी मधुरता एवं भाव-गाम्भीर्य और कोमल-कान्त-पदावली वनारसीदासके पदोंमें वर्तमान है।

भैया भगवतीदासने अपने पदोंमें सहजानुभूतिकी अभिव्यजना की है। इनके पदोंमें चिन्तनके स्थानमें आध्यात्मिक उल्लासकी अनुभूति

भैया भगवती प्रधान है। उन्होंने मानव पर्यायको प्रकृतिसे सुन्दर दासके पद : भगलमय, मधुर और आत्मकल्याणमें सहायक माना है। इसी कारण अपने हृदय-कुंजमें मंदिरभाव परिचय और विहंगोंका कृजन सुनकर इन्होंने संसारके सम्यन्धोंकी समीक्षा

अस्थिरताका साक्षात्कार कराया है। आध्यात्मिक उन्मेपसे कविका प्रत्येक पद प्रभावित है। आकाशमें घुमड़नेवाले बादलोंके समान क्षणभंगुर वासनाओं, जो कि प्रत्येक व्यक्तिके मानसको आन्दोलित करती रहती हैं, का कविने पदोंमें सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अतः चिन्तनशील होकर कवि जीवनके मूलभूत तत्त्वोंका उद्घाटन करता हुआ कहता है—

छाँड़ि दे अभिमान जिय रे, छाँड़ि दे अभि० ॥टेक॥

काको तू अरु कौन तेरे, सब ही हूँ महिमान ।

देख राखा रंक कौल, थिर नहीं यह यान ॥जिय रे०॥१॥

जगत देखत तोरि चलबो, तू भी देखत आन ।

घरी पलकी खबर नाहीं, कहा होय विहान ॥जिय रे०॥२॥

त्याग क्रोध रु लोभ भाया, मोह मदिरा पान ।

राग दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान ॥जिय रे०॥३॥

भयो सुरपुर देव कयहुँ, कयहुँ नरक निदान ।

इम कर्मवज्र बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान ॥जिय रे०॥४॥

इनके पदोंका संग्रह ब्रह्मविलास तथा फुटकर संकलनके रूपमें प्रकाशित हुआ है। प्रभाती, सवन, अध्यात्म, वस्तुस्थितिनिरूपण,

आत्मालोचन एव आराध्यके प्रति दृढतर विश्वास विषयोंमें इनके पदोंको विभाजित किया जा सकता है। वस्तुस्थितिका चित्रण करते हुए बताया है कि यह जीव विश्वकी वास्तविकता और जीवनके रहस्योंसे सदा ओंखे बन्द किये रहा। इसने व्यापक विश्वजनीन और चिरन्तन सत्यको पानेका प्रयास ही नहीं किया। पार्थिव सौन्दर्यके प्रति मानव नैसर्गिक आस्था रखता है, राग-द्वेषोंकी ओर इसका झुकाव निरन्तर होता रहता है, परन्तु सत्य इससे परे है। विविध नाम-रूपात्मक इस जगत्से पृथक् होकर प्रकृत भावनाओंका सयम, दमन और परिष्करण करना ही प्रत्येक व्यक्तिका जीवन लक्ष्य होना चाहिए। इसी कारण पश्चात्तापके साथ सजग करते हुए वैयक्तिक चेतनामें सामूहिक चेतनाका अध्यारोप कर कवि कहता है—

अरे तैं जु यह जन्म गमायो रे, अरे तैं ॥टेक॥

पूरब पुण्य किये कहुँ अतिही, तातैं नरभव पायो रे।

देव धरम गुरु ग्रन्थ न परसै, भटकि भटकि भरमायो रे ॥अरे०॥१॥

फिर तोको मिलिबो यह दुरलभ, वश दृष्टान्त बतायो रे।

जो चेतै तो चेत रे भैया, तोको कहि समुझायो रे ॥अरे०॥२॥

आत्मालोचन-सम्बन्धी पदोंमें कविने राग-द्वेष, ईर्ष्या-वृणा, मद-मत्सर आदि विकारोंसे अभिभूत हृदयकी आलोचना करते हुए गूढ़ अध्यात्मकी अभिव्यजना की है। यह आलोचना केवल कविहृदयकी नहीं बल्कि समस्त मानव समाजकी है। मानव मात्र अपने विकारी मनका परिशोधनकर संगल प्रभातके दर्शन करनेकी क्षमता प्राप्त कर सकता है।

विनाशीक ससारके स्वार्थभयी सम्बन्धोंकी सारहीनता दिखलता हुआ कवि राग-द्वेषादि विकारोंको दूर करनेकी बात कहता है। जब वह इस ससारके भ्रम-जालकी वास्तविकतासे परिचित हो जाता है तो दृढ़ आत्मनिष्ठा प्रकट करता हुआ देव गन्धार रागमें अलापने लगता है—

अब मैं छौँढ्यो पर-जंजाल, अब मैं ॥टेक॥

लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल। अब मैं०॥१॥

आत्मरस चख्यो मैं अद्भुत, पाथो परम दयाल । अब मैं॥२॥
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजन, सोमरूप सुविशाल । अब मैं॥३॥

भैया भगवतीदासके पदोंमें जितनी सुन्दर आध्यात्म तत्त्वकी अभिव्यञ्जना हुई है उतनी मानवीय राग-द्वेषकी नहीं । श्रृंगारिक भावनाके अरुण रूपोंका प्रायः अभाव है । भाषामें नाद-साम्य और अनुप्रासोंकी बहुलता श्रवण-सुखद है ।

आनन्दधनके पद कबीरदासके समान आध्यात्मिकतासे ओतप्रोत हैं । यह पहुँचे हुए महात्मा और आत्मरसिक कवि थे । इस कारण इनके पदोंमें सच्ची अनुभूति विद्यमान है । प्रेत-आत्माके रूप-
आनन्दधनके माधुर्यका दर्शन सर्वत्र कवि करता है । वातावरणके
पद : परिचय प्रत्येक कणसे उसे आत्मानुभूतिकी झलक मिलती है ।
और समीक्षा यद्यपि कविने आत्माको सर्वत्र व्यापक रूपमें नही
देखा है, शरीर-प्रमाण ही माना है, फिर भी उसे पानेके लिए सच्ची
प्रेयसीके समान आकुल है । प्रातः-समीर अपनी नवीन सुरभिसे प्रत्येक
अग-प्रत्यगको सुरभित करता हुआ कविको आत्मानुभूतिमें प्रेरक प्रतीत
होता है ।

स्वानुभूतिका प्रादुर्भाव होते ही कवि अनुभव करता है कि जन्म-मरणके कारण राग-द्वेषके भस्म हो जानेपर ही आवागमनके दुखसे छुटकारा मिल सकता है; आत्मा अजर है, अमर है, इसकी उपलब्धि रत्नत्रयके द्वारा ही सम्भव है । अतएव सत्यद्रष्टा कविकी पारदर्शिका आँखें जगके भौतिक आवरणको भेदती हुई अन्तर्स्तम्बोपर स्थित होती हैं । आत्मावाणीके द्वारा पार्थिकताको ललकारते हुए शाश्वत आनन्दकी बात कहता है । इसलिए इनके पदोंमें प्रधानतः आशा, उल्लास और चेतनाका अभिनन्दन विद्यमान है । कवि अपने अन्तर्स्मृते आत्मतत्त्वकी महत्ताका अनुभव कर आध्यात्मिक धरातल पर मानव मात्रका उत्कर्ष दिखलाता है तथा

ऐन्द्रियिक आनन्दको निकृष्ट और हीन बतलाकर इन्द्रियातीत अलौकिक आनन्दकी अभिव्यञ्जना करता है।

कविने निम्न पदमे अपनी अमरताका भाव सत्य और वस्तु सत्यसे भिन्न कितना सुन्दर विवेचन किया है—

अब हम अमर भये न मरेंगे ॥टेक॥

या कारन मिथ्यात दियौ तज, क्यौकर देह धरेंगे ॥ १ ॥

राग-दोष जग बन्ध करत हैं इनको नाश करेंगे।

मर्यो अनंत काल तैं प्राणी, सो हम काल हरेंगे ॥ २ ॥

देह विनाशी हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।

नासी नासी हम थिरवासी, चोखे हैं निखरेंगे ॥ ३ ॥

मर्यो अनन्त बार बिन समझैं, अबसो सुख बिसरेंगे।

‘आनन्द घन’ निपट-निकट अक्षर दो, नहिं सुमरै सो मरेंगे ॥४॥

यद्यपि इसी आशयका एक पद कवि दानतरायका भी मिलता है, तो भी इस पद्यका माधुर्य विचित्र है। कविने वैज्ञानिक तथ्योंके आधारपर आत्मानन्दको व्यक्त किया है। इनके समस्त पद तीन वर्गोंमें विभक्त किये जा सकते हैं।

प्रथम वर्गमें उन पदोंको रक्खा जा सकता है, जिनमे रूपको-द्वारा आत्मतत्त्वका विश्लेषण एक सहृदय और भावुक कविके समान किया गया है। कविने इन पदोंमें मधुर रागात्मक सम्बन्धोंको उद्घाटित करते हुए मिथ्यात्वके निष्कासनपर अधिक जोर दिया है। आत्मानुभूति या स्वानुभूतिमे प्रबल बाधक कारण यह मिथ्यात्व ही है, अतः अनेक रूपको-द्वारा इस आत्म-अशुद्धिके कारणका विश्लेषण किया गया है।

दूसरी श्रेणीमे वे पद हैं जिनमें घरेलू दैनिक व्यवहारसे आनेवाली वस्तुओंके प्रतीकों-द्वारा संसारकी क्षणभंगुरता दिखलाकर आत्म-तत्त्वका सश्लिष्ट चित्र प्रकट किया है। विनय और वन्दना-सम्बन्धी पद इस कोटिमे आते हैं।

तीसरे वर्गमें उन मिश्रित पदोको रक्खा जा सकता है जिनमें तन्मयता के साथ भाव-गाम्भीर्य भी विद्यमान है। समता-रसका वासन्ती समीर मनकी रागि-रागि अभिलाषाओं और हृदयकी कोमल कमनीय ऐन्द्रियिक भावनाओंको विकसित पुष्पके परागकी तरह धूलिसात् कर देता है तथा समता-पीयूषकी खुमारी आत्मविभोर बना देती है। कवि उपर्युक्त भावना का विम्लेयण करता हुआ कहता है—

मेरे घट ज्ञान भाम भयौ भोर।

चेतन चकवा चेतन चकवी, भागी विरहकौ सोर ॥ १ ॥

फैली चहुँदिशि चतुरभाव रुचि, मिथ्यो भरम-तम जोर।

आपकी चोरी आपही जानत और कहत न चोर ॥ २ ॥

अमल-कमल विकसित भये भूतलमन्द विषय शशिकोर।

‘आनन्दघन’ इक वल्लभ लागत, और न लाख किरोर ॥ ३ ॥

‘जसविलास सग्रह’ नामसे इनके पदोका सग्रह प्रकाशित हुआ है। इनके पदोंमें भावनाएँ तीव्र आवेगमयी और संगीतात्मक प्रवाहमें प्रस्फुटित

यशोविजयके हुई हैं। भाषामें लाक्षणिक वैचित्र्यके स्थानपर सरसता

पद : परिचय और सरलता है। पदोंमें प्रधान रूपसे—आध्यात्मिक

और समीक्षा नावोकी अभिव्यजना है। अपने आराध्यके प्रति

आत्मनिवेदनकी भावना भी तीव्र रूपसे पायी जाती है।

आत्माकी अभिरुचि उत्पन्न होते ही अज्ञान, असंस्कार, मिथ्यात्व आदि

भस्म हो जाते हैं, जिससे स्वानुभूति होनेमें विलम्ब नहीं होता। कविके

अनेक पदोंमें बौद्धिक ज्ञान्तिके स्थानमें आध्यात्मिक शान्ति शुद्धानुभूतिका

निरूपण है। आध्यात्मिक विश्वासोकी भूमि कितनी बृहत् है तथा स्वानुभूति

उत्पन्न हो जानेपर मानव आत्मानन्दमें कितना विभोर हो सकता है यह

निम्न पदमें दर्शनीय है। कवि कहता है—

हम भगन भये प्रभु ध्यान में।

विसर गईं दुविधा तन-मनकी, अचिरा सुत गुनगानमें ॥ हम० ॥ १ ॥

हरि-हर ब्रह्म पुरन्दरकी रिधि, आवत नहिं कोउ मान में ।
चिदानन्दकी मौज मची है, समता रसके पानमें ॥ हम० ॥ २ ॥

इतने दिन तू नाहिं पिछान्यो, जन्म गंवायौ अज्ञान में ।
अब तो अधिकारी हूँ वैदे, प्रभुगुन अखय खजान में ॥ हम० ॥ ३ ॥

गई दीनता सभी हमारी—प्रभु तुझ समकित दान में ।
प्रभुगुन अनुभवके रस आगे, आवत नहिं कोउ ध्यान में ॥ ४ ॥

यशोविजयजीके पदोकी भाषा बड़ी ही सरस है । आत्मनिष्ठा और
वैयक्तिक भावना भी इनके पदोंमें विद्यमान है ।

कवि भूधरदास कुशल कलाकार है । इन्होंने गीति-कलाकी बारीकियों
अपने पदोमे प्रदर्शित की हैं । यह स्थूलको छोड़ सूक्ष्म सौन्दर्यको व्यक्त
भूधरदासके पद : करना चाहते हैं । यद्यपि बाह्य-सौन्दर्यका अपने
परिचय और सूक्ष्म पर्यवेक्षण-द्वारा निरीक्षण किया है, किन्तु वह
समीक्षा इन्हे स्थिरता प्रदान नहीं कर सका है । यही कारण
है कि इनके पदोंमें भावुकताके सहारे कर्णरस
और आत्मवेदनाकी भी अभिव्यजना हुई है । पदोमे शाब्दिक कोमलता,
भावनाओकी मादकता और कल्पनाओका इन्द्रजाल समन्वित रूपमे
विद्यमान है । इनके पदोका एक संग्रह 'भूधर-पदसंग्रह' के नामसे प्रका-
शित हो चुका है । इन पदोको सात वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता
है—स्तुतिपरक, जीवके अज्ञानावस्थाके परिणाम और निस्तार सूचक,
आराध्यकी शरणके दृढ विश्वाससूचक, अध्यात्मोपदेशी, ससार और
गरीरसे विरक्ति-उत्पादक, नामस्मरणके महत्त्व-द्योतक और मनुष्यत्वकी
पूर्ण अभिव्यक्ति-द्योतक ।

प्रथम श्रेणीके पद जिनेन्द्रप्रभु जिनवाणी और जितेन्द्रिय गुरुके
स्तवनोसे सम्बद्ध है । इन पदोंमें कविने दास्य भावकी उपासना-द्वारा

अपनेको उज्ज्वल बनानेका प्रयास किया है। किन्तु दास्यताकी यह भावना सर्वत्र परतन्त्र बनानेवाली नहीं है।

दूसरी श्रेणीके पदोंमें जीवको अज्ञानताके कारण होनेवाले परिणामोंको दिखलाकर सावधान करनेका प्रयास किया है।

अज्ञानी पाप धतूरा न वोय ॥ टेक ॥

फल चाखनकी वार भरै दग, मरहै मूरख रोय ॥ अज्ञानी० ॥ १ ॥

किञ्चित् विषयनके सुख कारण दुर्लभ देह न खोय ।

ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस नीदड़ी न सोय ॥ अज्ञानी० ॥ २ ॥

भावुक कविने अन्तस्में मायाकी वञ्चकताका अनुभव कर उसके मोहक रूपका बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया है। कविने मायाको ठगनी-का रूपक देकर उसके घृणित रूपका, जिसे विषयी जीव मोहक समझते हैं, मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

सुन ठगकी माया तैं सब जग ठग खाया ॥ टेक ॥

टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पिछताया ॥ सुन० ॥ १ ॥

विकारग्रस्त मानव अहके वशीभूत हो ससारमें असमताका व्यवहार करता है, नाना कामनाओंको अन्तस्में समेटे स्वप्नलोकमें विचरण करता रहता है, उसके सकल्प कच्चे धागेके समान बाधा और विघ्नोंके हल्के झोंकेसे ही टूट जाते हैं। ससारके मायावी बधन उसे जकड़ते जाते हैं, अतः वस्तुस्थितिका यथार्थ दर्शन कराता हुआ कवि निराशामें आशाकी किरणोंका आलोक वितरण करता है। तथा—

“एकौ के घर मंगल गावैं, पूगी मनकी आसा ।

एक वियोग भरे बहु रोवैं, भरि-भरि रैन निरासा ॥”

मे कितना सुन्दर यथार्थका चित्रण हुआ है। कविका यथार्थ जीवनके शाश्वत सत्यसे संयुक्त है। यद्यपि यह चित्रण ससारके वास्तविक रूपको

प्रस्तुत करता है, पर इसमें निराशा अन्वित नहीं है। विश्वका वास्तविक स्वरूप दिखलाकर कवि आत्मानुभूतिको जगाता है। शरीरको चरखाका रूप देकर निम्नपदकी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है—

मोटा महीं कातकर भाई, कर अपना सुरसेरा ।

अन्त आगमें ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा ॥

रागात्मिका वृत्ति और बोध-वृत्तिके समन्वित रूपमें पूर्ण मानवताकी अभिव्यजना करनेवाले इनके अनेक पद हैं। इनमें कविने मानवताकी प्रतिष्ठाके लिए वासना और कथायोंके मधुमत्त समीरके स्पर्शसे वचानेकी आकांक्षा व्यक्त की है। कवि कहता है—“सुनि ज्ञानी प्राणी, श्री गुरु सीख सयानी” आदि।

राग विहागमें मनकी दुर्बलता तथा अह और इदके संघर्षसे उत्पन्न कामवासनाका नियन्त्रण करता हुआ कवि चारित्र्यकी शोधशास्त्रमें नैतिक मन और नैतिक बुद्धिकी आवश्यकताका निरूपण करता है—

जगत जन जुवा हारि चले ॥ टेक ॥

काम-कुटिल संग बाजी मॉंढी, उन करि कपट छले । जगत० ॥ १ ॥

चार कपायमयी जहँ चौपरि पांसे जोग रले ।

इन सरवस उत कामनिकौढ़ी इहविधि झटक चले ॥ जगत० ॥ २ ॥

भूधरदासके पदोंमें राग-विरागका गगा-यमुनीसगम होनेपर भी श्रृ गारिकता नहीं है। विरहकी विविध अवस्थाओंका निरूपण भी इनके पदोंमें नहीं हुआ है। भाषाकी लक्षणिकता और काव्योक्तियोंकी विदग्धता यत्र-तत्र रूपकोंमें विद्यमान है।

गीति-काव्यके मर्मज्ञ कवि दानतरायके पदोंमें अन्तर्दर्शनकी प्रवृत्ति प्रधान रूपसे वर्चमान है। शब्द सौन्दर्य और शब्द-सगीतकी झकार सभी पदोंमें सुनाई पड़ती है। इनके पदोंमें अतृप्ति नहीं, सतोष है, उन्माद

नहीं, मस्ती है; अवसाद नहीं, औत्सुक्य है; कर्कशता नहीं, तीव्रता है और ध्यानरतायके पदः उच्छृङ्खलता नहीं, आस्था है। इन्होंने अपने भक्ति-परिचय और समीक्षा सूचक पदोमे जीवनकी अन्तर्दृष्टिकी ऐसी सुन्दर अभिव्यजना की है, जिससे बोध-वृत्ति जाग्रत हुए बिना नहीं रहती। इनकी भावुकता सरस, सरल और सहज है। पदोमे तथ्योका विवेचन दार्शनिक शैलीमें नहीं किया गया है, किन्तु काव्य-शैलीका प्रयोग कर कविने मानवप्रवृत्तियोंके उद्घाटनमें अपूर्व सफलता प्राप्त की है। तीव्र आलोक और प्रखर प्रवाह दो चार पदोमे ही उपलब्ध है, अधिकांश पदोमे वैयक्तिकता या अधिकरणनिष्ठताका आधार ही प्रधान है। कविने अपनी आनन्दानुभूतिको प्रत्येक पदमें व्यक्त करनेका प्रयास किया है। इनके सकलित पदोंको छः श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है—बधाई, स्तवन, आत्मसमर्पण, आश्वासन, परत्वबोधक एव सहज समाधिकी आकांक्षा।

बधाई-सूचक पदोमे तीर्थंकर ऋषभनाथके जन्म-समयका आनन्द व्यक्त किया है। प्रसगावश प्रभुके नखशिखका वर्णन भी जहाँ-तहाँ उपलब्ध है। अपने इष्टदेवके जन्म-समयका वातावरण और उस कालकी समस्त परिस्थितियोंको स्मरण कर कवि आनन्द-विभोर हो जाता है और हर्षोन्मत्त हो गा उठता है—

माई आज आनंद या नगरी ॥ टेक ॥

गजगमनी शशिवदनी तरुनी, मंगल गावति हैं सगरी ॥ माई० ॥

नाभिराय घर पुत्र भयो है, किये हैं अजाचक जाचक री ॥ माई० ॥

‘धानत’ धन्य कूख मरुदेवी, सुर सेवत जाके पगरी ॥ माई० ॥

द्वितीय श्रेणीके पदोंमें अपने आराध्य पंचपरमेष्ठीकी नाना प्रकारसे स्तुति की है। इस श्रेणीके पदोमे उपमानोका आश्रय लेकर अपने इष्ट देवको प्रसन्न करनेका प्रयास कविने किया है। आरती स्तुतिका ही एक रूप है, अतः अपनी विश्वव्यापिनी आरती करता हुआ कवि कहता है—

मंगल आरती आतम राम । तन मंदिर मन उत्तम ठाम ।

समरस जल चन्दन आनंद । तन्दुल तत्त्वस्वरूप अमन्द ॥

॥ मंगल आरती० ॥

सैनसार फूलनकी माल । अनुभौ सुख नेवज भरि धाल ॥

मंगल आरती० ॥

दीपक ज्ञान ध्यानकी धूप । निर्मल भाव महाफल रूप ॥

मंगल आरती० ॥

सुगुन भविक जन इक रंग लीन । निहचै नौधा भगति प्रवीन ॥

मंगल आरती० ॥

धुनि उत्साह सु अनहद ग्यान । परम समाधि निरत परधान ॥

मंगल आरती० ॥

वाहज आतम भाव बहाव । अंतर है परमात्मध्याव ॥

मंगल आरती० ॥

साहब सेवक भेद मिटाय । 'द्यानत' एकमेव हो जाय ॥

मंगल आरती० ॥

कवि दौलतराम उन गीतिकाव्य-रचयिताओंमे से हैं, जिन्होंने जीवन-को खूब बारीकियोंमे देखा है, उनकी विविध प्रवृत्तियोंकी गहराईमे उतर

कर अनुशीलन किया है । मनकी गूढ़ और विविध दौलतरामके पद :

परिचय और दशाओंका समाधान करते हुए कवि अनुभव करता

समीक्षा है कि क्या बात है कि जिससे मानव जीवन बोझिल और त्रस्त है ? कल्पना, विचार और भावनाकी

त्रिवेणीमें निमज्जन कर निश्चय किया कि मानव चंचल चित्तके कारण ही

त्रस्त एवं त्रस्त है । कभी यह दिव्य अगनाओंका आलिंगन करना

चाहता है, तो कभी सुन्दर नृत्य देखनेके लिए लालायित है । एक आकांक्षा

तृप्त नहीं होती, कि दूसरी अनन्त आकांक्षाएँ उत्पन्न हो जाती है । मनकी

गति पवनसे भी अधिक चंचल है, इसपर अंकुश रखे बिना कोई भी

सत्यको प्राप्त नहीं कर सकता है। कवि कहता है—“मन तेरी बुरी आदत क्यों पड़ गई है ? तू अनादिसे इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर क्यों दौड़ता चला आ रहा है, इन्हींके अधीन रहनेसे तूने अनादिकालसे अपनी आत्मा-का निरीक्षण नहीं किया, अपने स्वरूपको नहीं पहचाना—

हे मन, तेरी को कुटेव यह, करन-विषय मे धावै है ॥ टेक ॥

इन्हींके वश तू अनादि तैं, निज स्वरूप न लखावै है ।

पराधीन छिन-छीन समाकुल, दुरगति-विपत्ति चखावै है ॥

हे मन० ॥ १ ॥

फरस-विषयके कारण वारन, गरत परत दुख पावै है ।

रसना इन्द्री-वश झप जल में, कंटक कंठ छिदावै है ।

हे मन० ॥ २ ॥

गंध-लोल पंकज मुद्रितमें धुलि निज प्रान खिपावै है ।

नयन-विषय-वश दीपशिखामें अंग पतंग जरावै है ॥

हे मन० ॥ ३ ॥

करन-विषय-वश हिरन अरन में, खलकर प्रान लुनावै है ।

‘दौलत’ तज इनको, जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है ॥

हे मन० ॥ ४ ॥

इनके पद विषयकी दृष्टिसे रक्षाकी भावना, आत्मनिक्षेप भर्त्सना, भय-दर्शन, आश्वासन, चेतावनी, प्रभुस्मरणके प्रति आग्रह, आत्मदर्शन होनेपर अस्फुट वचन, सहज समाधिकी आकांक्षा, स्वपदकी आकांक्षा, संसार-विश्लेषण, परसत्त्वबोधक एवं आत्मानन्द श्रेणीमे विभक्त किये जा सकते हैं। उक्त वर्गीकरणमेंसे कुछ पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। आत्मनिक्षेप-सम्बन्धी पदोंमें भगवान्‌के सम्मुख आत्मसमर्पणकी भावना प्रदर्शित की गई है। इन पदोंमें अपने प्रति और अपने आराध्यके प्रति एक अखण्ड अविचलित विश्वास है। इसी कारण इस श्रेणीके पदोंमें सीधे-सादे भाव पाठकके हृदयपर सीधे चोट पहुँचाते हैं—

मोहि तारोजी क्यों ना ? तुम तारक त्रिजग त्रिकाल में ॥ मोहि० ॥
 मैं उदधि पखो दुख भोग्यौ, सो दुख जात कह्यौ ना ।
 जामन मरण अनंत तनो तुम जानन भाहि छिप्यौ ना ॥ मोहि० ॥

मर्त्सना-विषयक पदोमे कविने विषय-वासनाके कारण मलिन हुए मनको फटकारा है तथा कवि अपने विकार और कथायोका कच्चा चिट्ठा प्रकट कर अपनी आत्माका परिष्कार करना चाहता है । नाना प्रकारकी विषयेच्छाएँ तृष्णा और सुनहली आशा-कल्पनाएँ इस प्राणीको और भी कष्ट देती हैं; अतएव विषयोको निस्सार समझ त्यागना चाहिये । यह शरीर अत्यन्त घृणित है, माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ है । इसमें अनेक अशुचि पदार्थ विद्यमान हैं, अतएव इससे ममता छोड़ देनी चाहिये—

मत कीजो री यारी, छिन गेह देह जब जानके ॥ टेक ॥
 मात-पिता-रज-वीरज सों यह, उपजी मल-फुलवारी ।
 अस्थि-माल-पल नसाजाल की, लाल-लाल-जल क्यारी ॥ मत०॥
 कर्म-कुरंग-थली पुतली यह, मूत्र पुरीष भँडारी ।
 चर्म-मडी रिपु-कर्म-कडी धन-धर्म चुरावन हारी ॥ मत०॥

×

×

×

हो तुम शठ अविचारी जियरा जिनवृष पाय वृथा खोवत हो ॥ टेक॥
 पी अनादि मदमोह स्वगुननिधि भूल अचेत नौड सोवत हो ॥

हो तुम० ॥

भय दर्शन-सम्बन्धी पदोमे मनको भय दिखलाकर आत्मोन्मुख किया गया है । कविने अपने अन्तस्में संसारकी झड़टो, वाधाओं और विघ्नोका अनुभव कर वास्तविक परिस्थितियोका साक्षात्कार किया है । जान पड़ता है जैसे संसारके मायावी बन्धनोसे वह भयभीत है । अतः संसारके माया-जालसे उन्मुक्त होनेके लिए अत्यन्त उत्सुक है, उसकी आत्मामें सासारिक

जान वृक्ष कर अन्ध बने हैं आँखन बाँधी पाटी ॥ अरे० ॥
 निकल जाँयगे प्राण छिनकमें पड़ी रहेगी माटी ॥ अरे० ॥
 'दौलतराम' समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥ अरे० ॥

X

X

X

अब मन मेरा वे सीख वचन सुन मेरा ।

X

X

X

जिया तुम चालो अपने देश ।

मत कीजो जी यारी ये भोग भुजंग सम जानिके ।

कवि चेतावनी देता हुआ कहता है—

मेरे कब है वा दिनकी सुघरी ।

तन बिन बसन असन बिन वनमें, निबसौ नासा दृष्टि धरी ॥

मेरे कब० ॥

पुण्य पाप परसों कब विरचो, परचो निजनिधि चिर-बिसरी ।

तज उपाधि, सज सहज समाधि, सहों घाम-हिम-मेघ-झरी ।

मेरे कब० ॥

कब थिर-जोग धरौ ऐसौ मोहि, उपल जान मृग खाज हरी ।

ध्यान कमान तान अनुभवशर, छेदों किह दिन मोह अरी ॥

मेरे कब० ॥

कब दून कंचन एक गनो अरु, मनि-जडितालय शैलदरी ।

'दौलत' सतगुरु चरनन सेठे, जो पुरवौ आश यहै हमरी ॥

मेरे कब० ॥

X

X

X

चेतन अब धरि सहज समाधि, जात यह बिनशै भव व्याधि ।

चेतन० ॥

मोह ठगौरी खायके रे, परको आपा जान ।

भूल निजातमग्नि को हैं—पाये दुःख महान ॥ चेतन० ॥

जब आत्मानुभूति उत्पन्न हो जाती है, हृदयके समस्त कालुष्य धुल जाते हैं एवं जीवनका प्रवाह अपनी दिशाको बदलकर प्रवाहित होने लगता है तो भावातिरेकके कारण अस्फुट वचन निकलते हैं । कवि कहता है—

चिन्मूरत दग्धारीकी मोहि, रीति लगत है अटापटी ॥ चिन्मूरत०॥

बाहिर नारकि कृत दुख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी ॥

रमत अनेक सुरतिसंग पै तिस परनति तैं नित हटाहटी ॥चिन्मूरत०॥

कवि दौलतरामकी दृष्टि आत्मनिष्ठ है, वस्तुनिष्ठ नहीं । अतः किसी वस्तुके बाह्य स्थूल सौन्दर्यकी अपेक्षा आन्तरिक-सूक्ष्म सौन्दर्यका अधिक विश्लेषण किया है । भावनाकी भव्यता और अनुभूतिकी सूक्ष्मता दर्शनीय है । इनकी भाषामे सयम, अभिव्यजना-शक्ति, स्पष्टता और व्यावहारिकता पूर्णतः विद्यमान है । भाषाकी लाक्षणिकताने कोमल और माधुर्य भावनाओंको भरनेमे विलक्षण कार्य किया है । रूपकोंमे कविकी लाक्षणिक शैली दर्शनीय है—

मेरो मन ऐसी खेलत होरी ।

मन मिरदंग साज करि लारी, तनको तमूरा बनो री ॥

सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोलकर जोरी ।

राग पाँचौ पद कोरी, मेरो मन ऐसी खेलत होरी ॥

समकृति रूप गहि भर झारी, करुना केशर घोरी ।

ज्ञानमई लेकर पिचकारी दोड कर माहिं सम्होरी ॥

इस प्रकार कवि दौलतरामके पदोंमे भावावेश, उन्मुक्त प्रवाह, आन्तरिक संगीत, कल्पनाकी तुलिका-द्वारा भावचित्रोंकी कमनीयता, आनन्द-विह्वलता; रसानुभूतिकी गम्भीरता एवं रमणीयताका पूरा समन्वय विद्यमान है ।

कवि भागवन्दके पद : कविवर भागवन्द उन सहृदय और
परिचय और समीक्षा भावुक कवियोंमें हैं जो निरन्तर आत्मगुणोंके
तन्मयता अधिक पायी जाती है । इनके पदोंमें

निज कारण काहे न सारे रे, भूले प्राणी ॥ टेक ॥
परिग्रह भार्यका कहा नहीं, उनरत होत तिहारै रे । निज कारण० ।
रोगी नर तेरी यपु को कहा निसदिन नहीं जारै रे ॥ निज कारण० ।

अवि संसारकी अवास्तविकताका चित्रण करना हुआ कहता है—

जीव तू अमर सदैव अकेला ।
मंग सार्या कोहे नहीं तेरा ।
अपना सुख दुःख आप ही सुगत, हात कुटुम्ब न मिला ।
स्वार्थ भयै सब विदुरि जात हैं, विवट जात ज्यों मिला ॥१॥
रक्षक कोइ न पूरन हैं जब, आपु अन्तर्का बेला ।
फूटत पार वैवत नहि जैसे दुहर जलको ठेला ॥२॥
नन-वन-जीवन विनश जात ज्यों, इन्द्रबालको खेला ।
'भागवन्द' इमि लिखकर भाई, हो यतगुरुका चेला ॥३॥
जीव तू अमर सदैव अकेला ।

आध्यात्मिक साधनामें सदैव यही बाधा मोहके उदयसे उत्पन्न होती है । यह जीव भागवतग्रन्थको यन्त्र भी मोहके कारण ही करता है । सुन्दर वक्राभूषण, अलंकार, पुष्पमाला आदि-द्वारा शरीरको सज्जित करनेकी चेष्टा भी इसीके उदयसे उत्पन्न होती है । मोह वह वज्र शस्त्र है जिसका नशा जीवको मुक्त और शान्तिसे वञ्चित कर देता है, मानवकी सारी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी हो जाती हैं जिससे वह अन्तः कर्मकाष्ठयन्त्रों दूर नहीं कर पाता । समता रस ही एक ऐसा आनन्द है, जिससे मानवको अद्भुत शान्ति मिलती है, कविने इस प्रसंगके पदोंमें भातिकणदकी

विगर्हणा की है। यद्यपि काव्यके मूल तत्त्व हृदयकी रागात्मक विभूतिका शुद्धात्मदर्शनके साथ सामंजस्य नहीं बैठता है, पर कविने आध्यात्मिक चिन्तन-प्रधान पदोमें भी अपनी भावुकताका समावेश कर अपने कविकर्मका परिचय दिया है।

कवि मागचन्दमें दौलतरामके समान हृदय-पक्षका सन्तुलन नहीं है। इनमें तर्क, विचार और चिन्तनकी प्रधानता है। इसी कारण इनके पदोंमें विचारोकी सघनता रहती है। निम्नपदमें दार्शनिक तत्त्वोको हृदयग्राहक रूप देनेकी सफल चेष्टा वर्तमान है।

जे दिन तुम विवेक विन खोये ॥ टेक ॥

मोह वाक्णी पी अवादि तैं, परपद में चिर सोये ।

सुख करंड चितपिंड आपपद, गुन अनन्त नहिं जोये ॥ जे दिन० ॥

होहि बहिर्मुख हानि राग रुख, कर्मबीज बहु बोये ।

तसु फल सुख-दुःख सामग्री लखि, चितमें हरये रोये ॥ जे दिन० ॥

धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतैं, आस्रव मल नहिं धोये ।

पर ब्रह्मनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ॥ जे दिन० ॥

अब निजमें निज जान नियत तहाँ, निज परिनाम समोये ।

यह शिव-भारग समरस सागर, 'भागचंद' हित तो ये ॥ जे दिन०॥

विशुद्ध दार्शनिकके समान कविने तत्त्वार्थश्रद्धानी और ज्ञानीकी प्रशंसा की है। यद्यपि वर्णनमें कविने रूपक उत्प्रेक्षा अलंकारोंका अवलम्बन लिया है, किन्तु शुष्क सैद्धान्तिकता रहनेसे भाव और रसकी कमी रह गयी है। ज्ञानी जीव किस प्रकार ससारमें निर्मय होकर विचरण करता है तथा उन्हें अपना आचार-व्यवहार किस प्रकार रखना चाहिये इत्यादि विषयका विश्लेषण करनेवाले पदोंमें कविका चिन्तन विद्यमान है; पर भावुकता नहीं है। हों, प्रार्थनापरक पदोंमें मूर्त्त-अमूर्त्तको आलम्बन लेकर कविने अपने अन्तर्जगतकी अभिव्यक्ति अनूठे ढंगसे की है। इन

पदोंमें विराट् कल्पना, अगार्ध दार्शनिकता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ हैं। भावनाओंमें विवेचनकी प्रवृत्ति इनके पदोंका एक मुख्य गुण है। निम्नपद दर्शनीय है—

आनन्दाश्रु बहैं लोचनतैं, तातैं आनत न्हाया ।

गद्गद स्पष्ट वचनजुत निर्मल, मिष्टजान सुरगाया ॥ टेक ॥

भव वन में बहु भ्रमण कियो तहाँ, दुःखदावानल ताया ।

अब तुम भक्तिसुधारसवादी मैं अवगाह कराया ॥ आनन्दाश्रु० ॥

इस प्रकार कवि भागचंदके पदोंमें हृदयकी तीब्रानुभूति विद्यमान है। जिस पदमें जिस भावनाको व्यक्त करना चाहते हैं उस पदमें उसे वह गहराई, सूक्ष्मता और मार्मिकताके साथ व्यक्त कर सके हैं।

मजन और पद रचनेमें इनका जैन कवियोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके पदोंमें अनुभूतिकी तीव्रता, लयात्मक संवेदन-शीलता और

कवि बुधजनके समाहित भावनाका पूरा अस्तित्व विद्यमान है।

पद : परिचय आत्मशोधनके प्रति जो जागरूकता इनमें है, वह

और समीक्षा कम कवियोंमें उपलब्ध होगी। इनकी विचारोकी

कल्पना और आत्मानुभूतिकी प्रेरणा पाठकोंके समक्ष

ऐसा सुन्दर चित्र उपस्थित करती है जिससे पाठक अनुभूतिमें लीन हुए

बिना नहीं रह सकता। तात्पर्य यह है कि इनकी अनुभूतिमें गहराई है,

प्रबल वेग नहीं। अतः इनके पद पाठकोंको दृबनेका अवसर देते हैं, बहने-

का नहीं। संसाररूपी मरुभूमिकी वासनारूपी वाडुकासे तप्त कवि शान्ति

चाहता है। वह अनुभव करता है कि मृत्युका सबध, जीवनके साथ है,

जीवनका शाश्वतिक सत्य मृत्यु है। यह मृत्यु हमारे सिरपर सदा वर्तमान

है। अतः हर क्षण प्रत्येक व्यक्तिको सतर्क रहना चाहिये। कवि गुणगुनाता

हुआ कहता है—

काल अचानक ही ले जायगा, गाफिल होकर रहना क्या रे ॥ टेक ॥

छिनहुँ तोहुँ नाहिँ बचावैं, तो सुभटन का रखना क्या रे ॥ काल० ॥

रंच सवाद करन के काजै, नरकन में दुख भरना क्या रे ॥ काल० ॥
कुलजन पथिकन के काजै, नरकन में दुख भरना क्या रे ॥ काल० ॥

आज दर्शन हो जाने पर कविने आत्माका विस्लेषण एक भावुकके नाते बढ़ा ही सरस और रमणीय किया है। कवि कहता है—

मैं देखा आत्म रामा ॥ टेक० ॥

रूप, फरस, रस, गंध तैं न्यारा, दरस-ज्ञान-गुन धामा ।

नित्य निरंजन जाकै नाहीं, क्रोध, लोभ-मद कामा ॥ मैं देखा० ॥

भूख-प्यास सुख-दुख नहिं जाके, नाहीं बनपुर गामा ।

नहिं साहब नहिं चाकर भाई, नहीं तात नहिं मामा ॥ मैं देखा० ॥

भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुइलका जामा ।

'बुधजन' संगति जिनगुरुकी तैं, मैं पाया मुझ ठामा ॥ मैं देखा० ॥

इनके पदोको भी दो भागोमे विभक्त किया जा सकता है—भक्ति या प्रार्थनापरक और तथ्यनिरूपक या दार्शनिक। दोनों प्रकारके पदोका वर्ण्य विषय भी प्रायः वही है। जिसका निरूपण पूर्वमे किया जा चुका है।

भगवद्भक्तिके बिना जीवन किस प्रकार विषयोंमें व्यतीत हो जाता है। विषयी प्राणी तप, ध्यान, भक्ति, पूजा आदिमे अपना चित्त नहीं लगाते। उन्हें परपरिणति ही श्रेयस्कर प्रतीत होती है। पर भक्ति-द्वारा सहजमें मानवको आत्मबोध प्राप्त हो जाता, जिससे वह चैतन्याभिराम गुणग्राम आत्माभिरामको प्राप्त कर लेता है। जबतक शरीरमे बल है, शक्ति है, तभी तक प्रभु-भजन या प्रभु-व्यानकी क्रियाको सम्पन्न किया जा सकता है, परन्तु शरीरके शिथिल हो जानेपर भक्ति-भावनाको सम्पन्न नहीं किया जा सकता। अतएव शरीरके स्वस्थ रहनेपर अवश्य ही प्रभु-भजन करना चाहिये। कवि इसी तथ्यका निरूपण करता हुआ मानव जीवनका विस्लेषण करता है—

भजन विन यौं ही जनम गमायौ ।

पानी पै द्या पाल न बांधी, फिर पीछे पछतायो । भजन० ॥

रामा-मोह भये दिन खोचत, आशापाण बंधायौ ।

जप-तप संजम दान न दीनों, मानुष जनम हरायो ॥ भजन० ॥

देह सीस जव काँपन लागी, दसन चलाचल थायौ ।

लागी आगि बुझावन कारन, चाहत कूप खुदायो ॥ भजन० ॥

कवि बुधजनकी भाषापर राजस्थानी भाषाका प्रभाव ही नहीं है अपितु इन्होंने राजस्थानी मिश्रित ब्रज भाषाका प्रयोग किया है। पदो प्रवाह और प्रभाव दोनों ही विद्यमान हैं। रूपकोंमें भाषाकी लाक्षणिकता और वर्णोंका विचित्र विन्यास भी है।

जैन-पद-रचयिताओंमें कवि वृन्दावनका भी प्रतिष्ठित स्थान है इनके पदोंमें भक्तिकी उच्च भावना, धार्मिक सजगता और आत्म-
 कवि वृन्दावनके निवेदन विद्यमान है। आत्म-परितोषके साथ लोक-
 पद : परिचय हित सम्पन्न करना ही इनके काव्यका उद्देश्य है।
 और समीक्षा यद्यपि इनके पदोंमें मौलिकताका अभाव है। हों
 भक्ति-विह्वलता और विनम्र आत्म-समर्पणके कारण
 अभिव्यंजना शक्ति पूर्णरूपेण विद्यमान है। इनकी भावनाएँ आत्म-
 जगत्की सीमासे बाहर निकलकर सर्वसामान्यके साथ सहानुभूति रखती
 हैं। इनकी भक्ति केवल आत्म-परितोषी ही नहीं, विश्वव्यापक भी
 है। सुकुमार भावनाएँ और लयात्मक संगीतने अनुभूति और कल्पनाका
 समन्वय प्रस्तुत किया है। निराशाके वाद आशाका सदेश और आराध्यमें
 अटूट विश्वास इनके पदोंका प्राण है। कवि कहता है—

निशादिन श्रीजिन मोहि अधार ॥ टेक ॥

जिनके चरन-कमलके सेवत, संकट कटत अपार ॥ निशादिन० ॥

जिनको वचन सुधारस-गर्भित, मेहत कुमति विकार ॥ निशादिन० ॥

भव आताप बुझावतको है, महामेघ जलप्रार ॥ निशदिन० ॥
 जिनको भगति सहित नित सुरपत, पूजत अष्ट प्रकार ॥ निशदिन० ॥
 जिनको धिरद वेदविद धरनत, दारुण दुख-हरतार ॥ निशदिन० ॥
 भविक वृन्दकी विद्या निवारो, अपनी ओर निहार ॥ निशदिन० ॥
 नीति-विषयक पदो और ज्ञानोपदेशक पदोमे कविने जैनागमके
 सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए नीति और ज्ञानकी वाते बतायी है ।
 यद्यपि वर्णनकी प्रणाली अत्यन्त सरल है, भाषामे माधुर्य गुण है ।

धन धन श्री गुरु दीन दयाल ॥ टेक० ॥

परम दिगम्बर सेवाधारी, जगजीवन प्रतिपाल ।

मूल अठाइस चौरासी लख, उत्तर गुण भनिभाल ॥ धन० ॥

देह भोग भयसो विरक्त नित, परिसह सहत त्रिकाल ॥ धन० ॥

शुद्ध उपभोग जोग सुदमंडित, चाखत सुरस रसाल ॥ धन० ॥

X X X X

सेठ सुजन बर निधि भरी, दुख द्वन्द विदारे ।

कवि वृन्दावनकी भाषा पर पूर्वी भाषाका प्रभाव है । सुकुमार शब्दा-
 वलीमे स्वरकी साधना और तन्मयताका ल्यकारी सगीत है ।

पदोंका तुलनात्मक विवेचन

अखण्ड सौन्दर्यात्मक सत्यके क्षणिक स्पर्शमात्रसे मानव-हृदय
 परिस्पन्दित हो भावना-लहरियोसे उद्वेलित होने लगता है । इसी
 हृदयालोडनका परिणाम गीति-काव्य है, जिसमें सगीतका माध्यम
 सर्व प्रधान स्थान रखता है । देश, काल और व्यक्तिकी सीमित परिधिसे
 आवेष्टित हो आन्तरिक सगीतका यह व्यक्तरूप अनेक रूप धारण
 कर सकता है । परन्तु प्रेरणाका प्रधान उत्स अखिल सत्य वास्तवमें
 अखण्ड और एक है । अतः बाह्य रूपरेखामे महान् अन्तर होते हुए
 भी यदि विभिन्न गीतिकारोंने एक ही मौलिक तत्त्व व्यक्त किये हों तो
 कोई आश्चर्यकी बात नहीं । जो कुछ विभिन्नता मिलती है वह तो स्थूल

जगत्के प्रभावका परिणाम है। सूक्ष्म भावजगत्में तो अनेकताका कोई स्थान ही नहीं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम विभिन्न देश और कालके तथा विभिन्न दार्शनिक विचारोंसे प्रभावित गीतकारोंके मौलिक तत्त्वों तथा उनकी कलात्मक विशेषताओंका तुलनात्मक विचार करें।

हम देख चुके हैं कि जनपद-साहित्यमें सगीतमय भावात्मक आत्मा-भिव्यक्तिके साथ दार्शनिक विचारोंकी अभिव्यंजना भी अन्तर्निहित है। यद्यपि पदोंका अन्तरङ्ग—वस्तुतत्त्व हृदयके अनुरूप ही सुकोमल, तरल और भावनापूर्ण है; पर मस्तिष्ककी ऊहापोही और दार्शनिक विचारोंकी गहनता भी है। जैन-पद-रचयिताओंकी प्रेरणाका स्रोत जिनेश्वर भक्ति या आत्मरति है। जैन दर्शनमें भक्तिका रूप दास्य, सख्य और माधुर्य भावकी भक्तिसे भिन्न है, अतः कोई भी साधक अनेक चिकनी-चुपड़ी प्रशसात्मक वातो-द्वारा वीतरागी प्रभुको प्रसन्न कर उनकी प्रसन्नता-द्वारा अपने किसी लौकिक या अलौकिक कार्यको सिद्ध करनेका उद्देश्य नहीं रखता है और न परम वीतरागी देवके साथ यह घटित ही हो सकता है, क्योंकि सच्चिदानन्द-मय प्रभुमें रागागका अभाव होनेसे पूजा, स्तुति या भक्ति-द्वारा प्रसन्नताका संचार होना असम्भव है; अतएव वह भक्ति करनेवालोंको कुछ देता, दिलाता नहीं है। इसी तरह द्वेषाशका अभाव होनेसे वीतरागी किसीकी निन्दासे अप्रसन्न या कुपित भी नहीं होते हैं और न दण्ड देने, दिलानेकी ही कोई व्यवस्था निर्धारित करते हैं। निन्दा और स्तुति, भक्ति और ईर्ष्या उनके लिए समान है, वह दोनोंके प्रति उदासीन हैं। परन्तु विचित्रता यह है कि स्तुति और निन्दा करनेवाला स्वतः अभ्युदय या दण्डको प्राप्त कर लेता है।^१

१—सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते, द्विपंस्त्वयि प्रत्यय-वत्प्रलीयते।

भवानुदासीनतमस्तयोरपि, प्रभो ! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपका मित्रसे न अनुराग है और न शत्रुसे द्वेष है; अतः आप किसीसे प्रसन्न और अप्रसन्न नहीं होते हैं; फिर भी

शुद्धात्माओंकी उपासना या भक्तिका आलम्बन पाकर मानवका चंचल चित्त क्षण भरके लिए स्थिर हो जाता है, आलम्बनके गुणोंका स्मरण कर अपने भीतर भी उन्ही गुणोंको विकसित करनेकी प्रेरणा पाता है तथा उनके गुणोंसे अनुप्राणित हो मिथ्या परिणतिको दूर करनेके पुरुषार्थमें रत हो जाता है। जैन दर्शनमें शुद्ध आत्माका नाम ही परमात्मा है; प्रत्येक जीवात्मा कर्मबन्धनोंके विलग्न हो जाने पर परमात्मा बन जाती है। अतः अपने उत्थान और पतनका दायित्व स्वयं अपना है। अपने कार्योंसे ही यह जीव बँधता है और अपने कार्योंसे ही बन्धन-मुक्त होता है।

कर्मोंका कर्त्ता और भोक्ता भी यह जीव ही है। अपने किये कर्मों का फल इसको स्वयं भोगना पड़ता है। ईश्वर या परमात्मा किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका फल नहीं देता है। इस प्रकारके ईश्वरकी उपासना करनेसे साधककी परिणति स्वतः शुद्ध हो जाती है, जिससे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। अतः जैन दर्शनानुसार उपासना या भक्ति अकिंचन या नैराश्रयकी भावना नहीं है। साधक उन शुद्धात्माओंकी, जिन्होंने आत्म-संयम, तपस्या, योग, ध्यान प्रभृतिके द्वारा कर्म-बन्धनको नष्टकर जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त कर लिया है। पूर्ण ज्ञान-ज्योतिके प्रज्वलित हो जानेसे जिन्होंने ससारके समस्त पदार्थों एवं उनके समस्त गुण और अवस्थाओंको भली भाँति अवगत कर लिया है, उपासना करता है। इस प्रकारकी उपासना या भक्तिसे आराधककी आत्मा स्वच्छ या निर्मल होती है।

जैन-पद-रचयिताओंने इसी भक्तिभावनासे प्रेरणा प्राप्त कर भावात्मक पदोंकी रचना की है। यद्यपि कतिपय पद, जिन्हें प्रमादी या बघाईकी

आपकी भक्ति करनेवाला श्रीसमृद्धिको और निन्दा करनेवाला पाप-वृद्धि को प्राप्त होता है, यही आश्रयकी बात है। —स्तुतिविद्या।

संज्ञा दी गयी है, मैं दास्यभाव वर्तमान मिलेगा, परन्तु प्रधानतः साधक अपनेको शुद्ध करनेके लिए इस प्रकार शुद्धात्माओंका आश्रय लेता है, जिस प्रकार दीपकको प्रज्वलित करनेके लिए अन्य दीपकोंकी लौका सहारा लेना पड़ता है। लौका अवलम्बन देनेवाला दीपक अपने भीतरसे किसी वस्तुको प्रदान नहीं करता है, पर अपने तेज-द्वारा अन्यको प्रकाशित या प्रज्वलित करनेमें सहायक होता है। जैन पद-रचयिताओंने भी इन्हीं भक्ति-भावनाकी अभिव्यजना की है। अवतारवाद इन्होंने नहीं माना है और न निर्गुण या सगुण सिद्धान्तके विवादमें पड़नेका प्रयास किया है। जैन-दर्शनमें अनेकान्तवादकी विवेचना—परस्पर आपेक्षिक अनेक धर्मात्मक वस्तुकी विवेचना की गयी है; जिसमें आराध्य वीतसगी प्रभु एककी अपेक्षा सुनिश्चित दृष्टिकोणसे सगुण और अन्य आपेक्षिक धर्मकी अपेक्षा निर्गुण है।

यद्यपि आराध्यको शील, ज्ञान, शक्तिका भाण्डार माना है, जिससे कोई भी साधक अपनी मनोरम, गुप्तशक्तियोंका उद्घाटन करनेमें प्रगतिशील बनता है। लोकरजन और लोकरक्षण करना भगवान्का कार्य नहीं है, किन्तु उनके पूत गुणोंकी स्मृति करनेसे लोकरजनके कार्य सहजमें सम्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण जैन-पद-रचयिताओंको ससारका विञ्चलेपण करते समय माया, मिथ्यात्व, शरीर, विकार आदिका विवेचन भी करना पड़ा है। संसार और प्रलोभनोंसे वचनेके लिए जैन-पद-रचयिताओंने मानव-प्रवृत्तियोंका सुन्दर विञ्चलेपण किया है। इनके मूलस्रोत एवं प्रेरणा दोनोंका स्थान हृदय है। जैन सन्तोंका भगवत्प्रेम शुष्क सिद्धान्त नहीं, अपितु स्थायी प्रवृत्ति है। यह आत्माकी अशुभ प्रवृत्तिका निरोध कर शुभ प्रवृत्तिका उदय करता है, जिससे दया, क्षमा, शान्ति आदि श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न होते हैं।

जैन पदोंका वर्ण्य विषय भक्ति और प्रार्थनाके अतिरिक्त मन, शरीर, इन्द्रिय आदिकी प्रवृत्तियोंका अत्यन्त सूक्ष्मता और मार्मिकताके साथ

विवेचन करना एवं आध्यात्मिक भूमियोंका स्पर्श करते हुए सहज समाधि-को प्राप्त करना है। साधक अपने इस शरीरका उपयोग मोक्षप्राप्तिके लिए करता है, वह विश्वके भौतिकवादकी चकाचौंधसे अविचलित रहकर त्वानुभूति-द्वारा आत्माकी विभाव परिणतिको स्वभाव परिणतिके रूपमें परिवर्तित करता है। जैनपदोंमें यद्यपि ऊँचे दार्शनिक सिद्धान्तोंका भी विश्लेषण है, परन्तु जीवनकी व्याख्या अपनी प्रवृत्तियोंका परिष्कार कर जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त करनेका संकेत भी निहित है।

हिन्दी साहित्यमें गीत और पद-रचयिताओंमें निर्गुण सन्त कबीर रविदास, दादू, मल्लकदास और सगुण सम्प्रदायमें सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियोंका नाम आदरके साथ लिया जाता है। इन सन्त और भक्तोंने पदोंकी रचना कर हिन्दी साहित्यमें भक्ति और अध्यात्म-सम्बन्धी अपूर्व व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। निर्गुण सन्तोंके तात्त्विक सिद्धान्त उपनिषदोंके वेदान्तवाद तथा जैनोके शुद्धात्मवादसे बहुत साम्य रखते हैं। इन सबोंकी भक्तिकी मूलप्रेरणा वेदान्त या शुद्धात्मवादसे मिली, इसी कारण कबीरने बताया—“सबके हृदयमें परमात्माका निवास है। उसे बाहर न ढूँढ़कर भीतर ही ढूँढ़ना चाहिये। आत्मा ही परमात्मा है, दोनोंमें एकत्वभाव है। इस प्रकार प्रत्येक जीव परमात्मा है। यही नहीं, एक अर्थमें जो कुछ है सब परमात्मा है।” निर्गुण सन्तोंने अवतारवादका खण्डन किया। पूजा-अर्चा जिसका सम्बन्ध दृश्य पदार्थोंसे है, इनके विचारोंके प्रतिकूल है। भौतिक शरीरकी दृष्टिसे कोई भी व्यक्ति ईश्वर नहीं हो सकता है। आत्माकी दृष्टिसे सभी आत्माएँ ब्रह्म हैं। अतएव सन्तोंके मतमें जन्म-मरणसे रहित परब्रह्म ही परमात्मा हो सकता है। इसी परब्रह्मका नाम-स्मरण, भक्ति और प्रेम करनेसे कल्याण होता है। जब इसका प्रेम चरमावस्थाको प्राप्त हो जाता है तो साधककी आत्मा उसी ब्रह्ममें मिल जाती है। इसी भक्ति-भावनाको लेकर कबीर, रविदास आदि सन्तोंने अध्यात्म-पद रचे। इन पदोंकी तुलना अनेक जैन पदोंसे की जा सकती

है। कवीरके रहस्यवाद-सम्बन्धी अनेक पद बनारसीदासके पदोंके समकक्ष हैं। कवीरका मानवीय विकारों और प्रवृत्तियोंका विच्छेपण तो अनेक अंशमें जैन-पद-रचयिताओंसे समानता रखता है।

मोक्षप्राप्तिका मूलसाधन ब्रह्म या शुद्धात्माकी स्मृति है। मनुष्य सासारिक स्वार्थपरक कार्योंमें जैसे-जैसे रत होता जाता है, वैसे-वैसे यह स्मृति भी क्षीण होती जाती है। कवीरने बताया है कि इस सासारिक द्रव्यमें रहते हुए भी कभी-कभी ब्रह्मकी स्मृतिकी झलक प्राप्त हो सकती है। मनुष्य अपने स्वरूपको भूल जानेसे ही ससारमें परिभ्रमण कर रहा है। भ्रान्तिसे जैसे सिंह जलमें पड़नेवाले प्रतिविम्बको अपना शत्रु समझ क्रुद्ध हो उससे युद्ध करने लगता है और अनेक विपत्तियोंको सहन करता है, अथवा शुक जैसे अपने उड़नेकी चालको भूलकर व्याधकी नल्लिनीपर बैठते ही, उसके घूम जानेसे उल्टा लटक जाता है और समझने लगता है कि नल्लिनीने उसे पकड़ लिया है; इसी प्रकार यह आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर नाना प्रकारके कष्टोंको उठा रहा है—

अपनपौ आप ही बिसरौ ।

जैसे सोनहा काँच-मन्दिर में भरमत्त भूँकि मरो ॥

जो केहरि बपु निरखि कृपजल प्रतिमा देखि परो ।

ऐसेहि मद्गज फटिकशिला पर दसननि आनि अरो ॥

मरकट मुठी खाद ना बिसरै घर घर नटत फिरो ।

कह 'कवीर' नलनी के सुवना तोहि कौने पकरो ॥

कवि दौलतरामने इसी आशयका विवेचन किया है। आत्मस्वरूपकी विस्मृतिके कारण ही ससारमें अनेक कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। भ्रमवश ही यह जीव अपनेसे भिन्न पर-पदार्थोंको अपना समझ गया है। कवि कहता है—

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ।
 ज्यो शुक्र नभचाल बिसरि नलिनी लटकायौ ॥
 चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विबुद्ध,
 तनि जडरस-फरस-रूप, पुद्गल अपनायौ ॥
 इन्द्रिय सुख दुख में निज, पाग राग रुख में चित्त,
 दायक भव-विपति-वृन्द बन्धको बढायौ ॥
 अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥

×

×

×

आपा नहि जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे ।
 देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगधारी रे ॥

×

×

×

आप भ्रमविनाश आप आप जान पायौ,
 कर्णधृत सुवर्ण जिमि चित्तार चैन थायौ ।
 मेरो तन तनमय तन, मेरो मै तनको त्रिकाल,
 यौ कुबोध नश सुबोध मान जायौ ॥ आप० ॥
 यह सुजैनवैन ऐन, चिन्तित पुनि पुनि सुनैन,
 प्रगटौ अव भेद निज, निवेद गुन बढायौ ॥ आप० ॥
 यौ ही चित अचित मिश्र, ज्ञेय न अहेय हेय,
 इंधन धनंज जैसे, स्वामि योग गायौ ॥ आप० ॥
 भैमर पोत छुटत झटति, बाछित तट निकटत जिमि,
 मोह राग रुख हरजिय, शिवतट निकटायौ ॥ आप० ॥
 विमल सौख्यमय सदीव, मै हूँ मैं नहिं अजीव,
 जोत होत रज्जुमय, भुजंग मय भगायौ ॥ आप० ॥
 यौ ही जिनचंद सुगुन, चितित परमारथ चुन,
 'दौल' भाग जागो जव, अल्प पूर्व आयौ ॥ आप० ॥

तुलनात्मक दृष्टिसे कवीर और दौलतरामके उपर्युक्त पदोंमें उपमान प्रायः समान हैं। भ्रमको व्यक्त करनेके लिए कवीरने सुआकी नलिनी, कर्णधृत स्वर्ण, सिंहका प्रतिविम्ब, स्फटिकश्चिन्ममें गजके दातेका प्रतिविम्ब और वन्दरका घर-घर नाचना आदि दृष्टान्त दिये हैं। कवि दौलतराम ने सुआकी नलिनी, कर्णधृत स्वर्ण आदि उदाहरणोंको ही लेकर भ्रमका सुन्दर चित्रलेपण किया है। कवीरदासने जहाँ उदाहरणोंके द्वारा ही भ्रमकी अभिव्यक्ति की है, वहाँ दौलतरामने भ्रमकी अभिव्यक्तिमें भ्रम क्या है, किस प्रकार हो रहा है तथा उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है, आदि विवेचन भी किया है। अर्थात् उनकी दार्शनिक भूमि अपेक्षाकृत विशद है।

कवीरने मायाका विवेचन करते हुए बतलाया है कि इस मोहिनी मायाने सारे ससारको ठग लिया है। मायाके कारण ही विष्णु, शिव आदि देव भी लक्ष्मी और भवानीके आधीन हैं। मायाकी व्यापकताका विवेचन करता हुआ कवि कहता है—

माया महा ठगिनी हम जानी ।

तिरगुन फाँस लिये कर डोले, बोलै मधुरी बानी ॥

केजव के कमला हैं बैठी, शिव के भजन भवानी ।

पंडा के मूरति हैं बैठी, तीरथ में भइ पानी ॥

योगी के योगिनी हैं बैठी, राजा के घर रानी ।

काहु के हीरा हैं बैठी, काहु के काँड़ी कानी ॥

भक्तन के भक्तिनि हैं बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।

कहै 'कवीर' सुनो हो संतो, यह सब अकथ कहानी ॥

कवि भूधरदासने भी मायाके उसी ठगिनी रूपका कवीरसे मिलता-जुलता विवेचन किया है। मायाको ठगिनीका रूपक दोनोंका समान है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ कवीरने केवल उदाहरणों-द्वारा माया

की धूर्तताका विश्लेषण किया है, वहाँ कवि भूधरदासने मायाके मोहक कार्योंका नित्पण करते हुए उसकी ठगईका परिचय दिया है। भूधरदास-
की इस पदमे व्यन्यका पुट रहनेसे सर्व साधारणको अधिक प्रभावित करता
है। कवि भूधरदास कहता है—

- ‘ सुन ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया ।
‘ डुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछिताया ॥ सुन० ॥
आपा तनक दिखाय बीज ज्यों, मूढमती ललचाया ।
‘ करि मद अंध धर्म हर लीनों, अंत नरक पहुँचाया ॥ सुन० ॥
केते कंथ किये तैं कुलटा, तो भी मन न अघाया ।
‘ किसही सौं नहिं प्रीति निवाही, वह तजि और लुभाया ॥ सुन० ॥
‘भूधर’ ठगत फिरै यह सबकौ, भौदू करि जग पाया ।
जो इस ठगनीको ठग बैठे, मैं तिसको सिर नाया ॥ सुन० ॥

नाम स्मरणको सभी धर्मोंने एक विशेष स्थान दिया है। नाम-
स्मरण करनेसे मन पवित्र होता है तथा आराध्यके उज्ज्वल गुणोंके प्रति
सहज ही आकर्षण उत्पन्न होता है। वस्तुतः नामस्मरण बाह्य साधना नहीं
है, किन्तु एक आध्यात्मिक साधना है, ध्यानका एक भेद है। जो विना भाव
के मन्त्रवत् नाम दुहराने को सब कुछ मानते हैं, कवीरने उनका खडन किया
है। कवीर ने कहा है—“पढित व्यर्थ ही बकवाद करते हैं, यदि राम कहने
मात्रसे ही ससारको मुक्ति मिल जाय तो ‘खाँड’ शब्दके कहने मात्रसे
ही हमारा मुँह भीटा हो सकता है। यदि ‘आग’ कहनेमात्रसे ही पोंव जलने
लगे अथवा ‘पानी’ कहनेमात्रसे ही प्यास जाती रहे तथा ‘भोजन’ कहने
मात्रसे ही भूख मिट जाय तो सभी मुक्तिके भागी हो सकेंगे। परन्तु केवल
ऐसे मान्त्रिक स्मरणोंसे वास्तवमे कोई लाभ नहीं।” जैन मान्यतामे भी
विना हार्दिक भावके नामस्मरण या माला फेरना निरर्थक माना गया है।
“यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः” भावरहित नामस्मरण या

भक्ति करनेसे आत्मिक विकास नहीं होता है। जैनधर्मकी उपासना साधना-भय है, दीनताभरी याचना या खुशामद नहीं है। शुद्धात्मानुभूतिके गौरव-से ओत-प्रोत है; दीनता, क्षुद्रता और स्वार्थपरताको इसमें तनिक भी स्थान प्राप्त नहीं है। नामस्मरण और भगवद्भजनको जैन साहित्यकारोंने शुभ-परिणति रूप मानते हुए भी शुद्ध परिणतिका प्रबल साधन माना है। उक्त दोनों साधन आत्माको ध्यान या समाधिकी ओर प्रेरित करते हैं। जो केवल शब्दोच्चारण कर जाप कर लेनेमें अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री मानते हैं, वे वस्तुतः अन्धरेमें हैं। हार्दिक भावनाओंका उपयोग—प्रभु-गुणोंका ध्यान रहना परमावश्यक है। अतः कबीरके नामस्मरण-विषयक पद जैन पदोंसे समता रखते हैं। कबीरने भी शब्दोच्चारणकी अपेक्षा भावको प्रधानता दी है। संसारके बाह्य द्वन्द्वोंमें सलग्न रहनेपर भी साधक आराध्यके स्मरण-से अपने स्वरूपको उपलब्ध करनेमें समर्थ होता है। धीरे-धीरे वह 'सोऽहं' का अनुभव करने लगता है और आगे चलकर "शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, निर्-ज्जोऽहं" की अनुभूति करता हुआ अपनेमें विचरण करता है। कबीर कहता है—

भजु मन जीवन नाम सबेरा ।

सुन्दर देह देख जिन भूलो, भ्रष्ट लेत जस बाल बदेरा ।
यह देही को गरव न कीजै, उड़ पंछी जस लेत बसेरा ॥
या नगरी में रहन न पैहो, कोइ रहि जाय न दूख घनेरा ।
कहै 'कबीर' सुनो भाई साधो, मानुष जनम न पैहो फेरा ॥

×

×

×

नाम सुमिर पछतायेगा ।

पापी जियरा लोभ करत है, आज काल उठि जायेगा ॥
लालच लागी जनम गँवाया, माया भरम भुलायेगा ।
घन जीवन का गरव न कीजै, कागद ज्यों गलि जायेगा ॥

जब जम आइ केस गहि पटकै, ता दिन कहु न बसायेगा ।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हौं, तो मुख चोटा खायेगा ॥
धरमराय जब लेखा भांगे, क्या मुख लेके जायेगा ।
कहत 'कबीर' सुनो भई साधो, साध संग तरि जायेगा ॥

कवि दौलतरामने इसी आशयके अनेक पदोंकी रचना की है । निम्न-
पद तो बहुत अशोमें मिलते-जुलते हैं । पाठक देखेंगे कि दोनों ही भक्त
कलाकारोमे कितना साम्य है—

भगवन्त भजन क्यों मूला रे ।

यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि-बबूला रे ॥ भगवन्त०॥
इस जीवन का कौन भरोसा, पावक में तृण-मूला रे ।
काल कुदाल लिये सिर ठाढा, क्या समझै मन फूला रे ॥ भगवन्त०॥
स्वारथ साधैं पाँच पाँव तू, परमारथ कौं लूला रे ।
कहु कैसे सुख पैहै प्राणी, काम करै दुखमूला रे ॥ भगवन्त०॥
मोह पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर कंध बसूला रे ।
भज श्रीराज मतीवर 'भूधर', दो दुरमति सिर धूला रे ॥ भगवन्त०॥

×

×

×

जिनराज ना विसारो, मति जन्म वादि हारो ।
नर भौ आसान नाहिं, देखो सोच समझ बारो ॥ जिनराज०॥
सुत मात तात तरुनी, इनसौं भमत निवारो ।
सबही सगे गरज के, दुखसीर नहिं निहारो ॥ जिनराज० ॥

नामस्मरण और भगवत्-भजन करनेपर जोर देते हुए बुधजन,
आनन्दधन, भागचन्द आदिने भी अनेक सरस पदोंकी रचना की है ।

मोह, अहंकार, कपट, आशा, तृष्णा, निद्रा, निन्दा, कनक-कामिनी,
सन्तोष, धैर्य, दीनता, दया, सत्य, अहिंसा, मानसिक विकार, भौतिक
जगत्की निस्सारता आदि-विषयक पदोंमें कबीर और जैनपद रचयिताओं-

के भावोंमें साम्य-सा है। अनेक पदोंमें तो केवल शब्दोंका अन्तर है। कहीं-कहीं कबीरके दो-तीन पदोंके भाव दौलतराम, भूधर, बुचजनके एक पदमें आ गये हैं और एकाध स्थलपर जैन-पद-रचयिताओंके दो-तीन पदोंके भाव कबीरके एक ही पदमें अभिव्यक्त हुए हैं। कबीरका चरखा और तँबूरेका रूपक भूधरदासके चरखाके रूपकसे कितना साम्य रखता है—

चरखा चले सुरत बिरहिन का ।

काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का ।

सुरत भाँवरी होत गगन में, पीड़ा झाल-रत्न का ॥

मिहीन सूत बिरहिन कातै, मोक्षा प्रेम भगति का ।

कहै 'कबीर' सुनो भई साधो, माला गुँथो दिन रैन का ॥

X

X

X

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का ।

खँचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजरे का ।

टूटे तार बिखरि गई खूँटी, हो गया धूरम धूरे का ॥

या देही का गरब न कीजै, उडि गया हंस तँबूरे का ।

कहत कबीर सुनो भई साधो, अगम पंथ कोइ सुरे का ॥

भूधरदास कहते हैं—

चरखा चलता नहीं, चरखा हुआ पुराना ।

पग खूँटे द्वय हालन लागे, उर मदरा खखराना ।

छीदों हुई पाँखड़ी पसली, फिरे नहीं मनमाना ॥ चरखा० ॥

रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूँटे ।

सबद सूत सूधा नहीं निकसै, घड़ी घड़ी पल टूटै ॥ चरखा० ॥

आयु माल का नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे ।

रोज इलाज मरम्मत चाहै, बौद बाढ़ई हारे ॥ चरखा० ॥

नया चरखला रंगा रंगा, सबका चित्त सुरावै ।

पलटा धरन गये गुन अगले, अब देखै नहिं भावै ॥ चरखा० ॥

मोटा महीं कात कर भाई, कर अपना सुरक्षेरा ।

अन्त आग में ईंधन होगा “भूधर” समझ सबेरा ॥ चरखा० ॥

रूपकोंमें जैन-पद-रचयिताओंने निर्गुण सन्तोंके समान आध्यात्मिक रहस्योंकी अभिव्यक्ति अपूर्व ढंगसे की है। आध्यात्मिक जीवनके बीज आत्मनिरीक्षण और पश्चात्तापकी भावनापर जैन कवियोंने विशेष जोर दिया है।

उपासनाके लिए उपास्यके विशिष्ट व्यक्तित्वकी आवश्यकता-समझ सगुण भक्तिका आविर्भाव हुआ। सगुण उपासकोंमें कृष्णभक्ति-शाखा और रामभक्ति-शाखामें श्रेष्ठ कलाकार हुए, जिन्होंने पद और गीतोंकी रचनाकर हिन्दीके भण्डारकी वृद्धि की। महाकवि सुरदासने पद-साहित्यमें नवीन उद्भावनाएँ, कोमल कल्पनाएँ और वैदग्ध्यपूर्ण व्यञ्जनाएँ कीं। वस्तुतः सूर भाव-जगत्के सम्राट् माने गये हैं। हृदयकी जितनी गहरी थाह सूरने ली, उतनी शायद ही किसी अन्य-कविने ली हो। यद्यपि सूरने अपने पदोंकी रचना जयदेव और विद्यापतिकी गीत-भद्रतिपर की है; फिर भी सजीवता, चित्रमयता, मनोवैज्ञानिकता और स्वभाविकताके कारण इनके पदोंमें मौलिकता पूर्णरूपसे विद्यमान है। जैन-पद-रचयिताओंसे सूरके पद कल्पपक्ष और भावपक्षकी दृष्टिसे अनेक अंगोंमें साम्य रखते हैं।

जिस प्रकार सूरने गौरी, सारंग, आसावरी, सोरठ, भैरवी, घनाश्री, प्रपद, विलावल, मलार, जैतिश्री, विहाग, शशोरी, सोहनी, कान्हारा, केदारा, ईमन आदि राग-रागिनियोंमें पदोंकी रचना की है, उसी प्रकार प्रभाती, विलावल कनडी, रामकली, अलहिया, आसावरी, जोगिया, माझ, टोडी, सारंग, लहरि सारंग, पूरवी, गौडी, काफी कनडी, ईमन, अशोरी, खमाच, अहिंग, गारो कान्हरो, केदारा, सोरठ, विहाग, माल-

कोस, परज, काल्मिडां, गल्ल, मन्हार, गेव्वा, विलावन्, वरवा, सिधडा, हुस, आदि अनेक राग-रागिणियोंमें जैन-पद-रचयिताओंने पदों की रचना की है। संगीतका माधुर्य मूरकें पदोंके समान ही जैनपदोंमें भी विद्यमान है।

अन्तर्जगत्के चित्रगर्की दृष्टिसे मूरकें अनेक पद जैन-पदोंके समान मानपूर्ण हैं। बाल्मत्य, शृंगार और शान्त इन तीनों रसोंका परिपाक मूरकें पदोंमें विद्यमान है। बाल्मत्य रसके चित्रणमें बाल्मनांजिमान, शृङ्गार-त्रिग्यक पदोंमें प्रेम्की वृत्तिका व्यापक दिग्दर्शन एवं भक्ति-विषयक पदोंमें आत्मामिच्छा पूर्ण रूपसे हुई है। त्रिग्यके पदोंके आरम्भमें आराध्य श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कवि कहता है—

चरनकमल बन्दौ हरिराइ ।

बाकी कृपा पंगु गिरि लंबे, अन्वेको सब कुछ दसाइ ॥

बहिरो सुनै, गूँत पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र घराइ ।

‘मूरदास’ स्वामी कलनामथ, बार-बार बन्दौ तिहि पाइ ॥

जैनपदोंमें इस आशयके अनेक पद हैं। यहाँ तुलनाके लिए कवि बुधलनका एक पद उद्धृत किया जाता है। पटक देखेंगे कि दोनोंमें कितनी समानता है—

तुम चरननकी भजन, आय सुख पायौ ।

अबलौ चिर भव जन मैं डोख्यो, जन्म जन्म दुख पायौ ॥ तुम० ॥

ऐसो सुख मुरपति कै नाहीं, सौ सुख ज्ञात न पायौ ।

अब भव सम्पति मो डर आई, आज परम पद लायौ ॥ तुम० ॥

मन बच तन नैं इद करि राख्यौ, कबहुँ न ज्या विमरायौ ।

बारम्बार बोलवै ‘बुधजन’, कीवै भवको नायौ ॥ तुम० ॥

सुरदासने अपने मनका परीक्षा करते हुए अपनी दूषित प्रवृत्तियोंकी निन्दा की है। तथा अपने आराध्यके समक्ष अपनी आत्मालोचना करते

हुए अपनी कमजोरियों और त्रुटियोंका यथार्थ प्रतिपादन किया है। जैन-पद-रचयिताओमें कवि भागचन्दके पद सूरदासके इन पदोंसे बहुत कुछ साम्य रखते हैं। आत्मालोचन और पश्चात्ताप-सम्बन्धी एक-दो पद तुलनाके लिए उद्धृत किये जाते हैं। सूरदास कहते हैं—

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।

तुम सौं कहाँ छिपी करुनामय, सबके अन्तरजामी ॥
जो तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसौ नोन-हरामी ।
भरि-भरि द्रोह विपै को धावत, जैसे सूकर ग्रामी ॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयनि संग बिसरामी ।
श्रीहरि-चरन छाँडि विमुखनि की, निसदिन करत गुलामी ॥
पापी परम, अधम अपराधी, सब पतितनि में नामी ।
'सूरदास' प्रभु अधम-उधारन, मुनियै श्रीपति स्वामी ॥

कवि भागचन्द भी पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं—

मो सम कौन कुटिल खल कामी,

तुम सम कलिमल दलन न नामी ।

हिंसक झूठ वाद भति विचरत, परधन-हर परबनितागामी ।
लोभित चित नित चाहत धावत, दशदिश करत न खामी ॥मो सम०॥
रागी देव बहुत हम जाँचे, राचे नहिँ, तुम साँचे स्वामी ।
बाँचे श्रुत कामादिक-पोषक, सेये कुगुरु सहित धन धामी ॥ मो सम०॥
भाग उदय से मैं प्रभु पाये, वीतराग तुम अन्तरजामी ।
तुम धुनि सुनि परजय में परगुण, जाने बिजगुण चित बिसरामी ॥मो सम०॥
तुमने पशु पक्षी सब तारे, तारे अंजन चोर सुनामी ।
'भागचंद' करुणाकर सुखकर, हरना यह भवसन्तति लामी ॥मो सम०॥
कवि सूरदासने विषयोकी ओर जाते हुए मनको रोका है और

उसे नाना प्रकारसे फटकारते हुए आत्माकी ओर उन्मुख किया है। नाना प्रकारकी आर्काधार्य और तृष्णाएँ ही इस मनको आकृष्ट कर विषयोंमें मलग्न कर देती हैं, जिसमें भोला असहाय मानव विषयेच्छाओं की अग्नियोंमें जलता रहता है। अनादिकालसे मानव विकार और वासनाओंके आधीन चला आ रहा है, जिससे इन्हीं जीवनकी विविध प्रवृत्तियोंके अनुशीलनका अवसर ही नहीं मिला है। कवि सूरदासने मनको समझाते हुए अहंकार और ममकारकी भावनासे मनको दूर रखनेकी बात कही है। वास्तवमें अध्यात्म-आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है, जब मन और हृदयका परिष्कार कर लिया जाय। इस त्वार्थी संसारके बाह्य रूपको देखकर मनुष्य अपनेको भूल जाता है, इसी कारण वह क्षणिक इन्द्रिय-जन्य सुखोंमें आनन्दका अनुभव करता है। चिरन्तन आनन्द काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि विकारोंके परास्त करने पर ही प्राप्त हो सकता है। सत्य, सन्तोष और पवित्रता तभी आ सकती हैं, जब मानव अपनी आत्मामें ज्ञान और ध्यानकी अग्निको प्रज्वलित करे। ममत्व भाव ही वस्तुतः अनेक दुःखों की जड़ है। ममता के कारण ही पर-वस्तुओंको मानव अपनी समझता है। निज प्रकृतिमें दोष उत्पन्न कर अपनेको दुःखी बनाता है। प्रयोजनीभूत तत्त्वोंका चिन्तन और मनन न कर शरीरको ही अपना समझ लेता है। कवि सूरदास मानवके अज्ञान भ्रमको दूर करता हुआ कहता है—

रे मन मूरख, जन्म गँवायो ।

कर अभिमान विषय-रस राँच्यो, स्वाम सरन नहिँ आयो ॥
 यह संसार फूल सेमर कौं, सुन्दर देखि मुलायो ।
 चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कट्ट नहिँ आयो ॥
 कहा भयो अब के मन सोचे, पहले नाहिँ कमायो ।
 कहत 'सूर' भगवन्त-भजन विनु, सिर शुनि-शुनि पछितायो ॥

X

X

X

जा दिन मन पंछी उडि जैहैं ।

ता दिन तेरे तन-तरुवरके, सबै पात झरि जैहैं ॥

घरके कहें, बेगि ही काढौ, मूत भये कोड खैंहैं ।

जा प्रीतम सों प्रीत घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं ॥

×

×

×

रे मन जन्म अकारथ जात ।

बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहै, ज्यो तरुवरके पात ॥

सन्निपात कफ कण्ठ-विरोधी, रखना दूरी बात ।

प्रान लिये जम जात मूढमति, देखत जननी तात ॥

कवि सूरदासने ऊपर जिस प्रकारका ससार, शरीर और विषयोंके सम्बन्धमें चित्रण किया है, ठीक वैसी ही भावाभिव्यञ्जना जैन कवियोंने की है। जैन-पद-रचयिताओंने बताया है कि हम स्वभावसे सुखी, ज्ञानी तथा सहज आनन्द रूप चेतन हैं। अपने इस स्वभावके भूल जानेके कारण ही हम दुःखी हो रहे हैं। शरीर जड़ है, विश्वके अन्य पदार्थ भी जड़ हैं। यद्यपि चैतन्य आत्मके गुणोंकी अभिव्यक्ति शरीर आदि निमित्तोंके आधीन है, पर स्वरूपतः आत्मा इनसे भिन्न है। मानवको दुःख कर्म-बन्धके कारण आत्माके विकृत हो जानेसे है। आत्माकी राग-द्वेष रूप परिणति ही कर्मबन्धका कारण है, अतः इस शरीरको परपदार्थ समझ कर शुद्धात्म-तत्त्वको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। व्यर्थ ही मानव राग-द्वेष रूप परिणतिमें आसक्त रहता है तथा इसी आसक्तिमें इस अमूल्य जीवनको व्यतीत कर देता है। सभी जैन कलाकारोंने जीवन और जगत्के विविध रहस्योंका उद्घाटन सहृदय सरस कविके रूपमें किया है, केवल दार्शनिक बनकर नहीं, यद्यपि दर्शनकी सबसे बड़ी थाती उनके पास थी। इसी कारण इनके जीवन-सम्बन्धी इन विश्लेषणोंमें ठोस ससारकी वास्तविकता कल्पना और भावनाके मनोरम आवरणमें निहित है। जीवनके

प्रति इनका एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है, जिससे जगत्के विभिन्न सत्त्वोका विच्छेदण बड़े ही सुन्दर ढंगसे किया है। अहंकार और ममकार जो कि जीवनके सबसे प्रबल विकार हैं, जिनके कारण हमारा जीवन निरन्तर विचलित रहता है, का स्पष्ट और भावनात्मक निरूपण किया गया है। सूरदासके ही समान कवि बनारसीदास भी कहते हैं—

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी ।
 जैसे निरख मीरिचिका, मृग मानत पानी ॥
 ज्यो पकवान चुरैलका, विषयरस त्यो ही ।
 ताके लालच तू फिरे, अम भूलत यों ही ॥
 देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी ।
 भाषा मनसा करम की, तैं अपनी करि जानी ॥

कवि भूधरदास भी संसारके विषयोसे सावधान करते हुए कहते हैं—

मेरे मन सुवा, जिनपद पींजरे वसि, यार लाव न बार रे ।
 संसार में बलवच्छ सेवत, गयो काल अपार रे ।
 विषय फल तिस तोड़ि चाखे, कहा देख्यो सार रे ।

X

X

X

कवि बुधजन कहते हैं—

रे मन मूरख बाधरे मति ढीलन लावै ।
 अपरे श्री अरहन्तकौं, यौ औसर जावै ॥
 नर-भब पाना कठिन है, यौ सुरपति चाहै ।
 को जाने गति काल की, यौ अचानक आवै ॥
 छूट गये अब छूटते, जो छूटा चावै ।
 सब छूटै या जालतैं, यौ आगम गावै ॥

भोग रोग को करत हैं, इनकों मत लावै ।
ममता तजि समता गहौ, 'बुधजन' सुख पावै ॥

× × ×

क्यो रे मन तिरपत नहिं कोय ।

अनादि काल का विषयन राख्या, अपना सरबस खोय ॥
नेकु चाख कै फिर न बाहुडे, अधिका लपटै जोय ।
ज्यो ज्यो भोग मिलै त्यो तृष्णा, अधिकी अधिकी होय ॥

× × ×

मन रे तेने जन्म अकारथ खोयो ।

तू डोलत नित जगत धंध में, ले विषयन रस लख्यो ॥

× × ×

इस प्रकार जैन कवियोंने आशाके निन्द्य रूपकी विवेचना सुरदास के समान ही की है। वस्तुतः आशा इतनी प्रचण्ड अग्नि है कि इसमें जीवनका सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। जैन कवियोंने इसी कारण मनकी विविध दशाओका विवेचन सूक्ष्म रूपसे किया है।

महाकवि तुलसीदासके पदोकी प्रसिद्धि भी हिन्दी-साहित्यमें अत्यधिक है। इन्होंने बुद्धिवादके साथ हृदयवादका भी समन्वय किया है। इनके आध्यात्मिक और विनय-विषयक पदोका सकलन विनयपत्रिकामे है। इनके मतसे अन्तस्की शुद्धिके लिए भक्ति आवश्यक है, इसके लिए प्रभु-कृपा होनी चाहिये।

भक्तिके लिए दो बातें आवश्यक हैं—प्रथम आराध्यकी अपार वैभवशालीनता, शक्तिपूर्णता और सर्वगुणसम्पन्नताका अनुभव और द्वितीय अपनी तुच्छता, आत्मग्लानि, दीनता और असमर्थताका प्रदर्शन सच्चे भक्त अपनी दीनता या असमर्थता प्रदर्शित करनेमे अधिक

आनन्दानुभूतिका अनुभव करते हैं। कवि तुलसीदासने अपने पदों और भजनोंमें भक्तिके सभी साधन—भजन (नाम-स्मरण), शरणागत भाव, चरित्रश्रवण-मनन-कीर्तन, शान्त स्वभावकी प्राप्ति का यत्न, आराध्यके स्वरूपका ध्यान, मन और शरीरके संयम-द्वारा साव्यकी प्राप्ति, आराध्यसे सम्बद्ध गंगा, चित्रकूट आदि तीर्थोंका वन्दन-स्मरण एवं सत्संग, साधु-सेवा, शिवभक्ति, हनुमद्भक्ति आदिका निरूपण किया है।

दास्यभावकी भक्ति न होनेपर भी जैन-पद-रचयिताओंने तुलसीदासके समान ही अपने पद और भजनोंमें भक्त्यङ्गोंको स्थान दिया है। आत्म-शुद्धिके लिए भी रागात्मिका भक्तिको लाभदायक बतलाया है। जैन-कवियोंके द्वारा रचित पद-साहित्य अन्तःकरणमें रस उत्पन्न कर मनको सय ओरसे हटाकर उसीमें लीन करता है। इनके पद भाव, भाषा, शैली और रसकी दृष्टिसे कबीर, सूर, तुलसी आदि हिन्दीके कवियोंसे किसी भी बातमें हीन नहीं हैं। तुलसीने अपनी विनयपत्रिका गणेशजीकी स्तुतिसे आरम्भ की है। जैनकवि वृन्दावन भी अपने आराध्य ऋषभनाथकी वन्दनासे ही कार्यारम्भ करनेकी ओर संकेत करता है।

कवि तुलसीदासने भगवान्से प्रार्थना की है कि हे प्रभो, आपके चरणों को छोड़ और कहाँ जाऊँ ? ससारमें पतितपावन नाम किसका है ? जो दीनोंपर निष्काम प्रेम करता है वही सच्चा आराध्य हो सकता है। कविने अनेक उदाहरणों-द्वारा भगवान्की सर्व-शक्तिमत्ताका विवेचन किया है। उसने देव, दैत्य, नाग, मुनि आदिको मायाके आधीन पाया, अतएव वह सर्वव्यापक आराध्यके महत्त्वको बतलाता हुआ कहता है—

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।

काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पिथारे ॥ १ ॥

कौन देव बराह विरद-हित, हठि-हठि अधम उधारे।

खग, मृग, व्याध पखान बिटप जह, जवन-कवन सुरतारे ॥ २ ॥

देव, वनुज, मुनि, नाग, मनुज सब, माया विदस विचारे ।
तिनके हाथ 'दास तुलसी' प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥
कवि दौलतराम भी इसी आशयका विम्लेषण करते हुए कहते हैं—

जाके कहाँ तज शरन तिहारे ।

चूक अनादितनी या हमरी, माफ करो कृष्ण गुनधारे ॥ १ ॥
हृचत हों भवमागरमे अब, तुम दिन को मुह वार निकारो ॥ २ ॥
तुम मम देव अवर नहि कोई, तातैं हम यह हाथ पसारो ॥ ३ ॥
मोसम अधम अनेक उधारे, बरनत हैं श्रुत शास्त्र अपारो ॥ ४ ॥
'दौलत' को भवपार करो अब, आया है शरनागत धारो ॥ ५ ॥

कवि तुलसीदासके पदोंमें मनका विम्लेषण, जगत्की क्षणभंगुरता एवं आत्मशोधन और हरिभरणकी आवश्यकताका प्रतिपादन जैन-पद-रचयिताओंके समान ही किया है। कवि कहता है—

मैं हरि, पतित-पावन सुने ।

मैं पतित तुम पतितपावन, ढोड बानक बने ।

कवि बुधजनने भी इसी आशयके अनेक पद रचे हैं—

पतित-उधारक दीनदयानिधि, सुन्यौ तोहि उपगारो ।

नेरे औगुनपै नति जावो, अपनो सुखस विचारो ॥

×

×

×

पतित उधारक पतित रस्त है, सुनिये अरज हमारी ।

तुमसो देव न आन जगत मैं, जासौ करिये पुकारी ॥

इसी प्रकार कवि तुलसीदासके पद जैन पदोंके साथ भाव, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे साम्य रखते हैं ।

प्राचीन कवियोंके अतिरिक्त आधुनिक छायावादी और रहस्यवादी कवियोंके आध्यात्मिक गीत भी जैनपदोंसे अनेक अंशोंमें अनुप्राणित हैं ।

जिस परिस्थितिमें ससीम आत्मा विष्वक्के सौन्दर्यमें असीम परमात्माके चिर सुन्दर रूपका दर्शन कर उससे तादात्म्य स्थापन करनेके लिए आकुल हो उठती है, उस स्थितिका चित्रण आध्यात्मिक जैनपदोंसे ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। महादेवी वर्माके चिन्तनपरक और भक्तिपरक गीतोंकी भावसरणी रूप-सौन्दर्य और भावनाओंके गाम्भीर्यकी दृष्टिसे महाकवि बनारसीदासके पदोंसे प्रभावित प्रतीत होती है। दोनों कलाकारोंके अन्तर्गते दार्शनिक सिद्धान्तकी भावधारा एक-सी ही है। महादेवी वर्मा अव्यक्त सत्ताका अपने भीतर अनुभव करती हुई बुद्धिका विकास और भावनाका परिकार कर कहती है—

सखी मैं हूँ अमर सुहाग भरी !

प्रियके अनन्त अनुराग भरी '

किसको त्यागूँ किसको माँगूँ ;

है एक मुझे मधुमय विषमय;

मेरे पद छूते ही होते,

कोंटे कलियाँ प्रस्तर रसमय ।

पालूँ जग का अभिशाप कहाँ,

प्रतिरोमोंमें पुलकें लहरें ।

×

×

प्रिय चिरन्तन है सजनि

क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं ।

×

×

प्रिय सांध्य गगन,

मेरा जीवन !

कवि बनारसीदास भी आत्माकी रहस्यमयी प्रवृत्तियोंका उद्घाटन करते हुए कहते हैं—

बालम तुहुँ तन चितवन गागरि फूटी ।
 अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटी ॥ बालम० ।
 हूँ तिक रहूँ जे सजनी रजनी घोर ।
 घर करकेउ न जानै चहुँदिसि चोर ॥ बालम० ।
 पिठ सुधियावत वनमें पैसिठ पेलि ।
 छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि ॥ बालम० ।
 सँवरौ सारददामिनि और गुरु भान ।
 कछु बलमा परमारथ कहाँ बखान ॥ बालम० ॥

×

×

या चेतनकी सब सुधि गई ।
 व्यापत मोहि विकलता भई ।

×

×

पिठ निरन्तर रहत सजनि ।

×

×

विषय महारस चेतन विष समतूल ।
 छाडहु वेगि विचार पापतरु मूल ॥

कवि प्रसादके अनेक रहस्यवादी दार्शनिक गीतोपर जैनपदोंकी भावसरणीका प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। कवि प्रसाद कहता है कि जीव वृद्धावस्था और मृत्युके भयसे सदा दुःखी रहता है। जीवनमें जितने परिवर्तन होते आ रहे हैं, उनकी कोई सीमा नहीं है। जीवनमें अमरता स्वानुभूतिको प्राप्त करना ही है। विश्वका अणु-अणु परिवर्तनकी ओर अग्रसर हो रहा है, परिवर्तन ही जीवनका एक सत्य सिद्धान्त है। अमर आत्मामें भी शाश्वत परिवर्तन होता है। यह जीवात्मा शुद्ध होनेके लिए प्रतिक्षण प्रयत्नशील है।

मानव जीवन अनेक तृष्णा और आकाक्षाओंका केन्द्र है। हृदयमें अनेक प्रकारकी लालसाएँ बराबर उठती रहती हैं। जैसे पहाड़की चोटियोंसे बादल टकराते हैं, उसी प्रकार अनेक इच्छाएँ जीवनके कगारोंसे टकराती रहती हैं। बादलोंके बरसनेसे नदी प्रवाहित होती है और पहाड़ी भूमिमें हाहाकार गुरु गर्जन करती हुई तरंगायित हो आगे बढ़ती है, ठीक इसी प्रकार वेदना-परिपूर्ण आँसुओंके बरसनेसे नाना प्रकारकी वृत्तियाँ जाग्रत होती हैं। कवि प्रसाद जीवनके व्यर्थ बीतने पर पश्चात्ताप करता हुआ कहता है—

सब जीवन बीता जाता है,
धूप छाँह के खेल सदृश। सब०।
समय भागता है प्रसिद्धि में,
नव-अतीत के तुषारकण में,
हमें लगाकर भविष्य रण में,
आप कहाँ छिप जाता है। सब०।

कवि ज्ञानतरायने भी जीवनके यों ही बीतने पर पश्चात्ताप प्रकट किया है।

जीवन यों ही जाता है।
बालपने में ज्ञान न पायो, खेलि खेलि सुख पाया है।
समय निकलता है प्रसिद्धि ही, मूर्ख मदमें सोया है।
धूप-चाँदनी झिलमिल करती, ले आशाओं का बेरा है।
धनि चेतन तू जाग आज रे, मूर्ख रैन बसेरा है।

×

×

×

कवि प्रसादका चिरकालीन अशान्ति-चित्रण, जिसमें जीवनके सुख-दुःख, हर्ष-विपाद, आशा-निराशाकी भावनाओंका मार्मिक चित्रण

है; यदि भूवरदाम और रति कुचजनके पदोंमें अनुप्राणित-मा प्रतीत होता है। कवि प्रभाव जाता है—

गुन जग-भरणमें चिर अशान्त ।

जिसको अधनक मनमें भे मन जीवनमें परिवर्तन अनन्त,
अमर-र घटी सब भूलंगा तुम व्याकुल उसको कहाँ अन्त ।

कवि भूषण जगन्नाथ है—

भया रे दुहापा मानी मुधि-मुधि विमरानी ।

×

×

×

चंचल चित्त चरन धिर रामो, विषयन तैं घरजौ ।

आनन तैं गुनगाय निरन्तर, पायन पाँय जजौ ॥

जगन्नाथ जगदरामें भाग्यनुभूति वंशज और गुरुर द्रव्योंके सम्बन्धसे अभिनन्दन हुं है। पदोंमें भाव-प्रधान मुल्की हुं है। कवि यनारमीदास, भूषणदाम, भाग्यनन्द, शालतगम, कुचजन, आनन्दधनके पद हिन्दी साहित्यके लिए अमानी निधि है। इनमें कवीर, सुर और मुल्की जैसे कवि-पदोंमें अधिकांश ही आत्मानुभूति विद्यमान है।

तृतीयाध्याय

ऐतिहासिक गीतिकाव्य

अतीतसे सदा मानवका मोह रहा है। यह अतीत चाहे सुनहला हो अथवा मटमैला, पर उससे स्नेह करना मानवका स्वाभाविक गुण है। अतीतके प्रति इस प्रकार आकर्षित होनेका प्रधान कारण यह है कि भूतकालीन घटनाओंकी मधुर स्मृति वर्तमानकालीन कठिनाइयोंको विस्मृत करा सरस आनन्दानुभूति प्रदान करती है। बीती बातोंके चिन्तनमें अपूर्व रसानुभूति होती है, हृदय गौरव-रससे लज्जालब्ध भर जाता है। मानवका आदिकालसे ही कुछ ऐसा अभ्यास है, जिससे वह यथार्थ जीवनके संकल्पोंसे ऊपर उठ कल्पना-लोकोमें विचरण कर स्वर्णिम अतीतकी सजीव प्रतिमा गढ़ता है। पूर्वजोंका ज्वलन्त आदर्श नस-नसमें-उष्ण रक्त प्रवाहित कर देता है। उज्ज्वल अतीतका प्रखर प्रकाश मानवके वर्तमान अन्धकारको विच्छिन्न कर उसे आलोकित करता है; और प्रस्तुत करता है उसे दानवतासे उठा मानवतामें।

भूतकालसे पृथक् रहकर मनुष्य अपने वर्तमानसे अभिन्न नहीं हो सकता है; क्योंकि वर्तमानके साथ भूतकाल इस प्रकार लिपटा हुआ है, जिससे प्रत्येक वर्तमान क्षण अतीत बनता जा रहा है। प्रत्येक क्षणका क्रिया-व्यापार अतीतके कोपमें संचित होता जा रहा है तथा कालान्तरमें यही इतिहासका प्रतिपाद्य विषय बननेका उम्मेदवार है। यही कारण है कि ऐतिहासिक स्थलो एवं महापुरुषोंके नामोंके साथ हमारे हृदयका घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसी कारण हम इतिहास-प्रेमी बनते हैं। मानव-ज्ञान-कोषका प्रत्येक क्षण इस बातका साक्षी है कि इतिहासका कलेवर साहित्यसे ही निर्मित होता है। प्रत्येक देश, प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जाति.

अपनी आदर्शमयी यशस्वी गौरव-गाथाओंके मौलिक उपादानोंको लेकर ऐतिहासिक काव्योंका सृजन करती हैं। क्योंकि इतिहास ही राष्ट्र और व्यक्तिके जीवनमें चैतन्य, स्फूर्ति, स्वाभिमान, आशा और गौरवकी भावना उत्पन्नकर मानवको गतिशील जीवनकी ओर अग्रसर करता है। जबतक हमें अपनी एरातन सस्कृति और आचार-व्यवहारोंकी अभिज्ञता नहीं रहती, हम वास्तविक उन्नति करनेका अभ्यास नहीं कर पाते। महाभारतमें कृष्ण द्वैपायनने इसी कारण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और पुरावृत्त कथाओंका मिश्रित रूप इतिहासको कहा है। इतिहासमें अतीतके सभी चलचित्र चित्रित किये जाते हैं, जिससे आगामी परम्परा जागरण प्राप्त करती है। कवि या साहित्यकारोंने मानवताको अक्षुण्ण रखनेके लिए सरस, रागात्मक, मर्मस्पर्शी और कोमल-कमनीय भावनाओंकी अभिव्यञ्जनाके साथ ऐतिहासिक व्यक्तियोंके चरित्र, सांस्कृतिक स्थलोंकी गौरवगाथा, धर्म और सस्कृति-प्रतिष्ठापकोंके त्याग-बलिदान एवं सत्साहित्य निर्माताओंकी जीवनगाथा भी अभिव्यक्त की है। महाभारतके रचयिताने इसी कारण इतिहासको मोहान्धकारनाशक दीपक कहा है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।

पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥

इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।

लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् संप्रकाशितम् ॥

कौटिल्य अर्थशास्त्रके रचयिता चाणक्यने भी इतिहासके विषयका प्रतिपादन करते हुए पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रकी अन्वितिका निरूपण करना इतिहासका विषय बताया है। वस्तुतः अतीत-चित्रणमें हमारा चित्त रमता है, सौन्दर्यका साक्षात्कार होता है और पुरातन उदात्त भावनाओंका अवलम्बन पा हम सर्वतोमुखी विकासकी सीढ़ीपर चढ़ते हैं। 'अह' और 'मम' की भावनामें परिष्कार होता है, जिससे अन्तःविश्वासकी धारा अपनी प्रखरताके कारण ऊपरी

सतहपर लगे विकारोको ही नहीं, अपितु आन्तरिक जगत्मे प्रविष्ट हो प्रमाद और बुराइयोको भी प्रखालित कर देती है। कला-सौन्दर्यके मर्मज्ञोंने जनोद्बोधनके लिए ऐतिहासिक काव्योकी आवश्यकता इसीलिए प्रतिपादित की है, जिससे जीवनकी पलायन और दैन्यवृत्ति छूट जाय तथा भाव-वीचियों एक लयसे तरंगित हो पाठकको रसमग्न बना सके। पूर्वजोके बल, वैभव और विक्रमसे अनुप्राणित हो मानव जीवन-संग्राममे आन्तरिक और बाह्य द्वन्द्वोके मध्य लडखडाता हुआ लोकमगलके दीप प्रज्वलित कर सके तथा जीवनके चरम लक्ष्य आनन्दानुभूतिको पा सके।

भक्ति-विमोर हो जैन कवियोंने अपने धर्माचार्योंका जीवनवृत्त भी काव्यामे अंकित किया है। इस आम्नायमे गुरुका स्थान देवके तुल्य माना गया है, अतः देवतुल्य उनकी भक्ति करना और अपनी श्रद्धा भावनाको उनके चरणोमे उड़ेलना जीवनोत्थानके लिए परम आवश्यक है। हिन्दी भाषाके जैन कवियोंने सहस्रो गीत महापुरुषोके कीर्त्ति-स्मरणमें रचे हैं, जिनमे सूक्ष्म और व्यापक धार्मिक भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। सरस और मनोहर राग-रागनियोमे रचे जानेके कारण इन गीतोमे अपूर्व माधुर्य और लालित्य है। ये गीत शृंगार-भावनाके स्थानमे हृदयकी सात्त्विक और उदात्त भावनाओको उत्तेजित करते हैं। जैन गुरु और मुनियोंने अपने धर्म-प्रचारके लिए जो त्याग या चमत्कार दिखलाया है, उसका स्मरण इन गीतोमें किया गया है। गीतोकी ओर लोकरुचि विशेष रहनेके कारण तथा अपनी भावानुभूतिको व्यक्त करनेकी सुविधा अधिक होनेके कारण जैन कवियोंने गीतिकाव्यका प्रणयन अधिक किया है।

तीर्थयात्रा या अन्य धार्मिक उत्सवोके अवसरपर ऐतिहासिक गीत गाये जाते हैं, इन गीतोमे पुरातन गौरव-गाथाएँ निहित रहती हैं। जिससे साधारण व्यक्तिमे धार्मिक भावना उमड़ जाती है और वह अपने धर्म-प्रचारके महत्त्वका मूल्याङ्कन कर लेता है। महापुरुषोका कीर्त्ति-स्मरण करनेसे धृति और साहसकी भावना जागृत हो जाती है। दानवीरोंकी

यशोगाथाएँ दान देनेकी प्रेरणा तो देती ही है, पर साथ ही धर्मोत्कर्षके लिए आनन्दपूर्वक समस्त कष्टोंको सहन करनेका सदेश भी हृदय पटल पर अंकित कर देती है। वैयक्तिक विकासके बीज भी इनमें व्याप्त है।

ऐतिहासिक गीतोंमें जैन कवियोंने ऐतिहासिक तथ्योंके साथ अनुभूति और कल्पनाका प्रदर्शन भी किया है। महत् अनुभूतिके बिना न तो ऐतिहासिक तथ्य ही प्रभावोत्पादक हो सकते हैं और न कल्पना ही ठहर सकती है। जिन गीतोंमें अनुभूतिका अभाव है, वे निःप्राण हैं, उनमें मानव हृदयको रमानेवाले तत्त्व नहीं हैं। अनुभूतिहीन कल्पना और तथ्य-विवेचन जीवन-तत्त्वोंको छोड़कर गतिशील होनेके कारण हृदयको अपने साथ नहीं ले जा सकते हैं, अतः हृदय तत्त्वका अभाव होनेसे वे लोक-प्रिय नहीं बन सकते हैं। जिन गीतोंमें लोकानुरजनकी क्षमता होती है, वे ही जनताके हृदयमें रसानुभूति उत्पन्न कर सकते हैं तथा मानव इसी प्रकारके गीतोंको अपना कण्ठहार बनाता है। कल्पना और वैचित्र्यकी प्रधानता रहने पर भी लोकानुरजनके अभावमें गीत जीवनको अनुप्राणित कर सकेंगे, इसमें सन्देह है। अतएव जैन कवियोंने ऐतिहासिक गीतोंमें जीवन-तत्त्वोंका पूरा समावेश किया है, उन्होंने लोकानुरजन और अनुभूति को पूरा अवकाश दिया है। यही कारण है कि ऐतिहासिक होनेपर भी जैन-गीत लोकप्रिय हैं।

यद्यपि समयके प्रभावसे अब अधिकांश पुराने गीतोंको जैन जनता मूल रही है, फिर भी इन गीतोंका महत्त्व सदा अक्षुण्ण रहेगा। गीतिकाव्यके विकास-क्रमको अवगत करनेके लिए तथा जीवनकी भावधाराले परिचित होनेके लिए जैन ऐतिहासिक गीतिकाव्योंका विवेचन महत्त्व है। भाषाके पारखियोंके लिए तो ऐतिहासिक जैन गीतोंका अत्यधिक महत्त्व है ही, पर कलापारखियोंके लिए भी जीवन-तत्त्वोंका अभाव नहीं है। वास्तव सौन्दर्यानुभूतिके साथ अन्तःसौन्दर्यका इतना सुस्पष्ट वर्णन कम ही स्थलोंमें मिलेगा। अन्तःसाधनके रूपमें ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यको महत्ता दी

गयी है, किन्तु हृदय-पद्मको विकसित होनेकी पूरी गुंजाइश है। यद्यपि इन ऐतिहासिक गीतिकाव्योंमें रागात्मक तत्त्वोंकी अनुभूति अधिक गहरी नहीं है; जिससे शायद कतिपय समालोचक हृदय-रमण-श्रुतिका अभाव अनुभव करेंगे; परन्तु दार्शनिक पृष्ठभूमिपर भक्ति-भावनाका पुट इतना अधिक है जिससे चराचर जगत्के साथ मानवका सौहार्द स्थापित हो जाता है। अहिंसाकी सूक्ष्म और सरस व्याख्याएँ रहनेके कारण मानव सहानुभूति-सूत्रमें आवद्ध हो, विश्वबन्धुत्वकी ओर अग्रसर होता है और जीवनमें प्रेम, करुणा एवं दयाकी यथार्थताको अवगत करता है। मानव-का मानवके साथ ही नहीं, अन्य समस्त प्राणि-जगत्के साथ जो सौहार्द-सम्बन्ध है, उसकी अभिव्यंजना इन काव्योंमें मुख्य रूपसे हुई है। जगत् और जीवनके नाना रूपोंकी मार्मिक अनुभूति कई गीतोंमें विद्यमान है।

जैन ऐतिहासिक गीतोंका प्रधान वर्ण्य विषय जैन साधुओं और गुरुओंकी कीर्तिगाथा, राजा-महाराजाओं और सम्राटोंको प्रभावित कर धार्मिक अधिकार प्राप्त करनेकी चर्चा, जैनधर्मके व्यापक प्रभाव एवं धार्मिक भावनाओंको उभाढनेके तत्त्व है। अनेक सूरि और आचार्योंने मुसलिम बादशाहोंको प्रभावित कर अपने धर्मकी धाक जमाई थी तथा सनदे प्राप्त कर जिनालय निर्माण करनेकी स्वीकृति प्राप्त की थी। जिनप्रभ सूरिकी प्रशंसा करते हुए एक गीतमें बताया गया है कि अश्वपति कुतुबुद्दीनके चित्तको प्रसन्न कर इन्होंने अनेक प्रकारसे सम्मान प्राप्त किया था। सवत् १३८५ पौष सुदी ८ शनिवारको इन्होंने दिल्लीमें अश्वपति सुहम्मदशाहसे भेट की थी। सुल्तानने इन्हे उच्चासन दिया। इनकी भाषण-शक्ति विलक्षण थी, अतः इन्होंने अपने व्याख्यान-द्वारा सुल्तान का मन मोह लिया। सुल्तानने भी ग्राम, हाथी, घोड़े, धन तथा यथेच्छ वस्तुएँ देकर सूरिश्वरका सम्मान करना चाहा, पर इन्होंने स्वीकार नहीं किया। इनके इस त्यागको देखकर सुल्तानको इनके प्रति भारी भक्ति हो गई, जिससे उन्होंने इनका जुलूस निकाला, रहने के लिए 'वसति'

निर्माण करायी । गीतमें अनेक राष्ट्रिय और अहिंसक भावनाओंके साथ उक्त ऐतिहासिक तथ्य व्यञ्जित किया है—^१

उदय ले खरतरगच्छ गयणि, अभिनउ सहस करो ।
सिरी जिणप्रभसूरि गणहरो, जंगम कल्पतरो ॥

× × ×

हरखितु देइ राय गय तुरय, धण कणय देस गामा ।
भणइ अनेधि जे चाह हो, ते तुह दिउ इमा ॥
लेइ णडु किंपि जिणप्रभसूरि, मुणिबरो अतिनिरीहो ।
श्रीमुख सलहिउ पातसाहि, विविहपरि मुणि सीहो ॥

× × ×

‘असपति’ ‘कुतुबदीनु’ मनरंजेउ, दीठेलि जिणप्रभ सूरि ए ।
एकन्तिहि मन सासउ पूछई, राममणोरह पूरी ए ॥
गाम भूरिय पटोला गजबल, तूठ देइ सूरिताणू ए ।
जिणप्रभसूरि गुरुकम्पनई छइ, तिहु अणि अमलिय माणू ए ॥
ढोल दमामा अरु नीसाणा, गहिरा बाजइ तूरा ए ।
इनपरि जिणप्रभसूरि गुरु आवइ, संघ मणोरह पूरा ए ॥

एक दूसरे गीतमे बताया गया है कि जिनदत्त सुरिने बादशाह सिकन्दरशाहको, जो बहलोल लोदीके उत्तराधिकारी थे, अपना चमत्कार दिखलाकर ५०० वन्दियोंको सुक्त कराया था । इस गीतमें अनेक उपमा और उल्लेखोंका आश्रय लेकर अन्य ऐतिहासिक तथ्यके साथ जीवन ही सरस अनुभूतियोंकी भी अभिव्यञ्जना सुन्दर हुई है ।

१. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० १३-१४ ।

२. ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रह पृ० ५३-५४ ।

सरसति मति दिठ अम्ह अति घणी, सरस सुकोमल वाणि ।
श्रीमज्जिनहंस सूरि गुरु गाइसिउँ, मन लीणउ गुण जाणि ॥

X

X

X

नेति यथावइ गीत गावइ, पुण्यकलस भरइ सिरे ।
सिंगारसारा सब नारी करइ, उच्छव घर घरे ॥

X

X

X

श्री सिकंदर चित्त मानिपट, किरामत काइ कही ।
पाँच सह बन्दी बाखरसी, छोड़व्या इण गुरु सही ॥

कुछ गीतोंमें^१ बताया गया है कि मुगल-सम्राट् अकबरके मनमें जिन-चन्द्र सूरिके दर्शनकी बड़ी उत्कण्ठा थी, अतः उन्होंने सूरेश्वरको गुजरातसे बड़े आग्रह और सम्मानसे बुलाया । सूरेश्वरने आकर उन्हें उपदेश दिया और सम्राट्ने उनकी बड़ी आचमगत की । जब बादशाह सलेमशाह 'दरलुबिया' टीवान पर कुपित हो गये थे तो इन्हीं सूरेश्वरने गुजरातसे आकर बादशाहके क्रोधको शान्त किया और धर्मकी महिमा बढ़ाई । यह सूरेश्वर मुल्तान भी गये थे, और वहाँके खानमलिक-द्वारा इनका सम्मान किये जानेका भी उल्लेख है ।

इन गीतोंमें युग-चेतनाके स्पष्ट दर्शन होते हैं । उस युगके मानवकी विराट् व्यथा, हिंसाके ज्वार और उतार-चढ़ाव, साम्प्रदायिक संकीर्णता, ग्रामीणोंके हृदयकी आँकी एवं देशकी यथार्थ स्थितिका विम्लेषण इन गीतोंका प्राण है । साम्प्रदायिक गीतोंमें श्री रचयिताओंने मानव-समाजके हितोंकी पूरी विवेचना की है । ऐसा शायद ही कोई गीत होगा, जिसमें चेतना और स्फूर्ति न विद्यमान हो । अपभ्रंशसे प्रभावित पुरानी राज-स्थानी भाषा होनेके कारण आजके पाठक इन गीतोंमें शायद रस न सके, परन्तु भारतीय संस्कृति और सभ्यताका परिचय पाने तथा युगविधायक

सामाजिक घटनाओंसे अवगत होनेके लिए इन गीतोंका अत्यधिक महत्त्व है। इसी कारण इनको केवल जैनोंकी सम्पत्ति न मानकर हिन्दी-साहित्यकी अमूल्य निधि मानना चाहिये। इन गीतोंमें मुसलिम शासनके अन्याय और शोषणका विवरण भी उपस्थित किया गया है, परन्तु यह विवरण ऐतिहासिक तथ्य नहीं, प्रत्युत काव्यका तत्त्व है।

कतिपय गीतोंमें^१ ग्राम-बधुएँ पथिकोंसे अनुरोध कर पूछती हैं कि आप जिस रास्तेसे आ रहे हैं, क्या आपको उस मार्गमें आचार्यश्री मिले ? इन सूरिजीकी वाणीमें अमृत है, अनेक चमत्कारोंके ज्ञाता और ये अपरिमित शक्तिके धारी हैं। इनके तेजका वर्णन कोई नहीं कर सकता है। ये परम अहिंसा धर्मके पुजारी हैं, शुद्ध आचार-विचारका पालन करते हैं, समस्त प्राणियोंके साथ इनकी मित्रता है। जो एक बार इनका दर्शन कर लेता है, इनके मिष्ट वचनोंको सुन लेता है, उसकी इनके प्रति अपार श्रद्धा हो जाती है। कचन और कामिनी, जिन्होंने सारे जगतको अपने वश कर रखा है, इनके लिए तृणवत् है। हैं पथिक ! यदि तुम इनके आगमनका यथार्थ समाचार कह सको, तो तुम्हारी हमारे ऊपर बड़ी कृपा हो। हमारा मन-भयूर उनके आगमनके समाचारको सुन कर ही हर्षित हो जायगा। हमारे हृदयकी वीणाके तारोंपर सुरीले स्वरोका आरोहण-अवरोहण स्वतः होने लगेगा। इस प्रकार अपनी भावनाको व्यक्त करती हुई ग्राम-बधुएँ उन सूरिश्वरका ऐतिहासिक परिचय भी देती हैं, जिससे उनके आगमनकी सच्ची जानकारी प्राप्त कर सकें। इस ऐतिहासिक परिचयमें सन्, सवत् और तिथिका उल्लेख तो है ही, साथ ही उन सूरिश्वरके गण, गच्छ, गोत्र, गुरु और प्रभावका भी ऐतिहासिक तथ्य निरूपित है।

गुरु दर्शन^२ हो जानेपर अपूर्व आनन्दानुभूति होती है। जैन कवियोंने ऐतिहासिक गीतोंमें सरसताको पर्याप्त स्थान देनेके लिए ऐसे अनेक गीतोंकी रचना की है, जिनमें अपूर्व आत्म-परितोष व्यक्त किया गया है। निम्न

गीतोंमें इतिहासकी शुष्क धाराको कितना गीतल और सरस बनानेका प्रयास किया है—

आज मेरे मनकी आश फली ।

श्री जिनमिह सूरि सुख देखत, आरति दूर टली ॥१॥

श्री जिनचन्द्र सूरि सई सत्यइ, चतुर्विध संघ मिली ।

आही हुकम आचारज पदवी, दीधी अधिक भली ॥२॥

कोटिवरिम मंत्री श्री करमचन्द्र, उत्सव करत रली ॥

‘समयसुन्दर’ गुरुके पदपंकज, लीनो जेम जली ॥३॥

निम्न गीतमें जिनसागर सरिके जन्मका निरूपण करते हुए बताया गया है कि वीकानेर नगरमें बोथरा गोत्रीय शाह बच्चा निवास करते थे, इनकी भार्याका नाम मृगादे था । जब यह श्रीश्वर गर्भमें आये तो माताको ‘रक्तचोल रत्नावलीका स्वप्न’, आया, उसीके अनुसार इनका नाम ‘चोला’ रखा गया । कालान्तरमें यह श्रीजिनसिंह सूरिजीसे दीक्षा लेकर साधु बन गये और इनका नाम जिनसागर मरि पडा । उसके चमत्कार और महत्त्वको प्रकट करने वाले अनेक गीत हैं ।

सुख भरि सूती सुन्दरी, देखि सुपन मध राति ।

रगत चोल रत्नावली, पिठ न कहइ ए बात ॥

सुणी वचन निज नारि ना, मंध घटा जिम मोर ।

हरख भणइ सुत ताहरइ, थासइ चतुर चकोर ॥

आस फली माइरी मन मोरी, कृखइ कुमर निधान रे ।

मनबांछित दोहलां सवि पूरइ, पामइ अधिकड मान रे ॥

संवत ‘सोलयावन्ना’ वरपइ ‘काती सुदी’ रबिवार रे ।

चढदसिने दिनि असिनि नक्षत्रइ जनम थयो सुखकार रे ॥

१. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० २४३-‘सुण रे पन्थियो’ गीत, पृ० २४५, पृ० २४६ ‘जीहो पन्थी’ गीत ।

नित नित कुमर बाधइ बहुलक्खणि सुरतरु नठ जिमि कंद रे ।
 नमणी अनोपम निलवट सोहइ, वदन पूनम नठ चंद रे ॥
 सहुअ सजन भगतावी भगतइ, मेलि बहु परिवार रे ।
 'चोलउ' नाम दियउ मन रंगइ, सुपन तणइ अनुसारि रे ॥
 सहिअ समाण मिलि मात पासइ सरुइ 'वच्छराज' कुल दीव रे ।
 'सामल' नाम धरि हुलरावइ, मुखि बोलइ चिरजीव रे ॥

गुरुओंके चातुर्मासीका वर्णन, सधका वर्णन तथा उनके धर्मोपदेश और धर्म प्रभावनाका वर्णन इन ऐतिहासिक गीतोंमें सुन्दर हुआ है । अधिकांश-गीतोंका एक विशाल संग्रह 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह'के नामसे श्री अगरचंद नाहटा और श्री मेंबरलाल नाहटाके सम्पादकत्वसे प्रकाशित हो चुका है । इस संग्रहके सभी गीत राग-रागनियोसे युक्त हैं । कर्मगीतोंमें ६ राग और ३६ रागनियोका समावेश किया गया है ।

चतुर्थाध्याय

आध्यात्मिक रूपक काव्य

जैन कवियोंने अपनी रचनाओंमें आत्मभाव सचाईके साथ अभिव्यक्त किया है। इनके काव्यके अन्तर्बुद्धि-मूलक विच्छेदणसे जीवनकी विभिन्न वृत्तियोंका परिज्ञान सहजमें किया जा सकता है। इनके काव्यमें शुद्धात्मा और ससारी अशुद्धात्मके प्रसंगको उपस्थितकर आध्यात्मिक दोषके साथ लौकिकताका अक्षुण्ण सम्बन्ध बनाये रखनेका प्रयास निहित है। जैन कवियोंने आध्यात्मिक अनुभूतिकी सचाईको अन्योन्य और समानोक्तिमें बड़ी मार्मिकताके साथ व्यक्त किया है। इन कवियोंकी आध्यात्मिक भावनाने हृदयको समतलपर लाकर मार्गका सार सम्बन्ध उपस्थित किया है। जीवनके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षणको दार्शनिक दृष्टिकोणसे प्रस्तुत करनेमें मानव भावनाओंका गहन विच्छेदण किया गया है। प्रस्तुत-द्वारा अप्रस्तुतका विधान साधारण छोटी-छोटी आख्यायिकाओंमें किया गया है। कवियोंने इतिवृत्त भी कहीं-कहीं आध्यात्मिक ही अगनाये हैं; परन्तु इनमें विचारों, भावनाओं और प्रवृत्तियोंके संश्लिष्ट चित्रोंका सद्भाव पूर्ण रूपेण विद्यमान है।

जैन आध्यात्मिक रूपक काव्योंमें विराट् कल्पना, अगाध दार्शनिकता तथा मुख्य भावनाओंका विच्छेदण है। इन काव्योंके लघु व्याख्यानों में क्षमा, श्रद्धा, उन्माह एवं सहानुभूति आदि नैसर्गिक पक्षोंकी योजना कर जीवनके प्रकाश और अन्धकार, पशुकी उदात्तता मूर्खता के बीच, इन कल्पकारोंकी कल्पनाने कभी स्वर्णकमलोंसे कल्पित-सुधा सरोवरके कूलोंपर मलयानिल सन्दिग्ध पाटलोंके बीच विचरण किया है, कभी अलकापुरीके रत्नजटित प्रासादोंका सारङ्गिताका संकेत करते हुए शेष-

मान-माया-लोभादि मनोविकारोके परिमार्जनका प्रयास किया है एव कमी-कनकमेखलामण्डित विविधवर्णमय धनपटल्लोकी क्षणभंगुरताका दिग्दर्शन कराते हुए संसार-आसक्त मानवको वैराग्यकी ओर ले जानेका सुन्दर प्रयत्न किया है ।

आध्यात्मिक रूपक काव्योका उद्देश्य ज्ञान और क्रिया-द्वारा दुःखकी निवृत्ति दिखलाकर लोककल्याणकी प्रतिष्ठा करना है । लोकमंगलाशासे जैन कवियोका हृदय परिपूर्ण और प्रफुल्ल था । अतः सच्चिदानन्द स्वरूप आत्माका आभास करा देना ही इन्हे अमीष्ट है और इसीमें इन्होंने सच्चा लोककल्याण भी समझा है । मनोविकारोके आधीन रहनेसे मानव-जीवनमें 'शिव'की उपलब्धिमें बाधाएँ आती हैं, जीवनव्यापी आदर्शों और धर्मोंकी अनुभूति भी नहीं हो पाती है तथा सात्त्विक, राजस और तामस प्रवृत्तियों-से राजस और तामस प्रवृत्तियोका परिष्कार भी नहीं हो पाता है ; जिससे जीवनकी सात्त्विक, उदात्त भावनाएँ आच्छादित ही पड़ी रहती हैं । भौतिकवादकी निस्सारता और आध्यात्मिकवादकी श्रेयताका मार्मिक विवेचन—“आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्” अहिंसा वाक्यको मूलमें रखकर किया है । आत्माकी प्रेयता तथा इसका शोषन भी अहिंसाकी भावनापर ही अवलम्बित है । इसी कारण रूपक काव्य-निर्माताओंने आत्मतत्त्वकी उपलब्धिके लिए निवृत्ति मार्गको विशेषता या महत्त्व प्रदान किया है । यद्यपि प्रवृत्ति-मार्ग आकर्षक है, पर पूर्ण दुःखकी निवृत्ति नहीं करा सकता है तथा इस मार्गमें प्राप्त होनेवाली भोगसामग्रियों क्षणभंगुर होनेसे अन्तमें वेदनाप्रद होती हैं । अतः जैन कलाकारोंने जैन दर्शनके सूक्ष्म तत्त्वोके विम्लेषणके साथ शुद्धात्माकी उपलब्धिका विधान बतलाया है । इस विधानमें आत्माकी विभिन्न अवस्थाओं और उसके विभिन्न परिणामोका बड़े ही स्पष्ट और मार्मिक ढंगसे विवेचन हुआ है । आध्यात्मिकताके विवृत रूपके प्रति विद्रोहकर आत्माकी विग्राल अतुलित शक्तिका उद्घाटन भव्य और आकर्षक रूपमें विद्यमान है । इस विवेचनमें

उदात्त भावनाके चित्र बड़े ही संयत, गम्भीर और आदर्श उत्तरे हैं। दार्शनिक भाव-भूमिपर आत्मा और जड़-बन्धनके विच्छेदको जिस प्रकार सजाया-सँवारा है, वह महान् है। मानव हृदयकी दुर्वलताओं और शक्तियोंको इतना टटोला और परखा है, जिससे रूपकोंमें तात्त्विक अभिव्यञ्जनाने नीरसता नहीं आने दी है। आत्मिक विधान स्वस्थ और सन्तुलित रूपमें मानस सन्तोषके लिए प्रेरणा तो देता ही है, साथ ही जीवनको कर्त्तव्य-मार्ग—रचनात्मक मार्गकी ओर गतिशील करता है।

आध्यात्मिक रूपक जैन कान्य-निर्माताओंमें महाकवि बनारसीदास और भैया भगवतीदासका नाम विशेष गौरवके साथ लिया जाता है। कवि बनारसीदासने नाटक समयसार, वरवै, सोलह तिथि, तेरह काठिया, ज्ञानपञ्चीसी, अध्यात्मवत्तीसी, मोक्षपैड़ी, शिवपञ्चीसी, भवसिन्धु चतुर्दशी, ज्ञानवावनी आदि रचनाएँ लिखी हैं। चेतन कर्मचरित्र, अक्षरवत्तीसी, मिथ्यात्वविध्वंसन चतुर्दशी, मधुविन्दुक चौपई, सिद्ध चतुर्दशी, अनादि-वत्तीसिका, उपशमपञ्चीसिका, परमात्मवत्तीसी, नाटकपञ्चीसी, पञ्चेन्द्रियसंवाद, मनवत्तीसी, स्वप्नवत्तीसी एवं सूत्रावत्तीसी आदि रचनाएँ भैया भगवतीदासने लिखी हैं। इनमें कुछका परिचय निम्न है—

यह एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक रचना है। आत्मान्वेषकोंको सरस कवितामें आत्म-तत्त्वकी उपलब्धि करनेकी सुन्दर अभिव्यञ्जना इसमें निहित है। कुशल कलाकारने चित्रकारके समान आत्मानु-नाटक समयसार भूमिमें नाना कल्पनाओंका रंग लगाकर अद्भुत चित्र खींचनेका प्रयास किया है। यद्यपि कविने अपने इस ग्रन्थकी रचना आचार्य कुन्दकुन्दके समयसारके आधारपर की है, परन्तु रागसत्त्व, बुद्धि-सत्त्व और कल्पनातत्त्वका मिश्रण कर इसे मौलिकता प्रदान करनेमें तनिक भी कमी नहीं की है। प्रत्येक पद्यमें प्रवाह और माधुर्य वर्तमान है। सरस और क्रौमल शब्दोंका चयन करनेमें कविने अद्भुत सफलता पायी है। अनूठी उक्तियाँ और नवीन उद्भावनाएँ तो पाठकका मन बरबस ही

अपनी ओर खींच लेती है। जीवनके कोमल पक्षकी सम्यक् अभिव्यजना होनेसे कविता हृदय और मस्तिष्क दोनोंको समान रूपसे छूती है। इसमें जीवन सम्बन्धी उन विशेष विचारों और भावनाओंका सकलन किया गया है, जो यथार्थ जीवनको प्रगति देते हैं।

अन्तर्जगत् और बाह्य-जगत्का यथार्थ दिग्दर्शन कराते हुए आत्माकी शुद्धताका निरूपण अद्भुत ढंगसे किया है। इसमें ३१० दोहा-सोरठा, २४३ सवैया-इकतीसा, ८६ चौपाई, ६० सवैया-तेईसा, २० छापय, १८ कवित्त, ७ अडिस्त और ४ कुण्डलियाँ हैं। सब ७२६ पद्य हैं। इसमें कविने आत्मतत्त्वका निरूपण नाटकके पात्रोंका रूपक देकर किया है। इसमें सात तत्त्व अभिनय करनेवाले हैं। यही कारण है कि इसका नाम नाटक समयसार रखा गया है।

कविने मंगलाचरणके उपरान्त सम्यग्दृष्टिकी प्रशंसा, अज्ञानीकी विभिन्न अवस्थाएँ, ज्ञानीकी अवस्थाएँ, ज्ञानीका हृदय, ससार और शरीरका स्वरूप-दिग्दर्शन, आत्मजागृति, आत्माकी अनेकता, मनकी विचित्र दौड़ एवं सप्त व्यसनोंका सच्चा स्वरूप प्रतिपादित करनेके साथ, जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सातों तत्त्वोंका काव्य रूपमें निरूपण किया है। आत्माकी अनुपम आभाका कविने कितना सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है। कवि कहता है—

जो अपनी द्रुति आप विराजत, है परधान पदारथ नामी ।
चेतन अंक सदा निकलंक, महासुख सागरको विसरामी ॥
जीव अजाव जिते जगमें, तिनको गुनज्ञायक भन्तरजामी ।
सो शिवरूप वसै शिवथानक, ताहि विलोकनमें शिवगामी ॥

अज्ञानी व्यक्ति भ्रमके कारण अपने स्वरूपको विस्मृत कर सनारमें जन्म-मरणके कष्ट उठा रहा है। कवि कहता है कि कायाकी चित्रगालामें कर्मका पलंग बिछाया गया है, उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या

कल्पनाका चादर ढाल रहा है । इस शय्यापर अचेतनकी नीदमें चेतन सोता है । मोहकी मरोड़ नेत्रोंका वन्द करना—झपकी लेना है । कर्मके उदयका बल ही इवासका घोर शब्द है और विषय सुखकी दौर ही स्वप्न है । इस प्रकार तीनों कालोंमें अज्ञानकी निद्रामें मग्न यह आत्मा भ्रमजालमें ही दौड़ती है, अपने स्वरूपको कभी नहीं पाती । अज्ञानी जीवकी यह निद्रा ही ससार-परिभ्रमणका कारण है । मिथ्यात्व-तत्त्वोंकी अश्रद्धा होनेसे ही इस जीवको इस प्रकारकी निद्रा अभिभूत करती है । आत्मा अपने शुद्ध, निर्मल और शक्तिशाली स्वरूपको विस्मृत कर ही इस व्यापक असत्यको सत्य रूपमें समझती है । अतः कवि यथार्थताका विम्लेयण करता हुआ कहता है—

काया चित्रसारीमें करम परजंक भारी,
मायाकी सँवारी सेज चादर कल्पना ।
शैन करे चेतन अचेतनता नीद लिए,
मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥
उदै बल जोर यहै इवासको शब्द घोर,
विषै सुखकारी जाकी दौर यहै सपना ।
ऐसी मूढ़ दशामें मगन रहे तिहुँकाल,
धावे भ्रम-जालमें न पावे रूप अपना ॥

कविने रूपक-द्वारा अज्ञानी जीवकी उक्त स्थितिका मार्मिक चित्रण किया है । वस्तुतः आत्मा सुख-शान्तिका अक्षय भण्डार है, इसमें ज्ञान, सुख, वीर्य आदि गुण पूर्ण रूपेण विद्यमान हैं, अतएव प्रत्येक व्यक्तिको इसी शुद्धात्माकी उपलब्धि करनेके लिए प्रयत्नशील होना चाहिये ।

ज्ञानका प्रकाश होते ही हृदय परिवर्तित हो जाता है । परिष्कृत हृदयमें नानाप्रकारकी विचार-तरंगें उठने लगती हैं । एकाएक सारी स्थिति बदल जाती है । जिन पर-पदांशोंमें निजबुद्धि उत्पन्न हो गयी थी,

चे पदार्थ आत्मासे भिन्न प्रतीत होने लगते हैं। शरीर एवं बाह्य भौतिक पदार्थोंकी आत्मासे पृथक् अनुभूति होने लगती है। कवि इसी परिवर्तनकी अवस्थाका चित्रण करता हुआ कहता है—आत्म-ज्ञानके अभावमें मानव-का हृदय मायो-मोह और वेचैनीसे व्यथित रहता है, जिससे प्राणिहिंसा, असत्य आदि दुष्प्रवृत्तियों शाश्वत सत्यको प्राप्त करनेमें अत्यन्त बाधक होती है। कुत्सित रूपमें राग या द्वेष दोनों ही प्रकारकी वृत्तियाँ दुःख परम्पराको उत्पन्न करती हैं। राग-द्वेषके नाना सकल्प मोहके विकारको उद्बुद्ध करते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ ये अन्तरात्माके भयंकर दोष हैं। इनका पूर्णरूपसे त्याग करनेपर ही ज्ञानभावकी उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे घना अन्धकार दूर हो जाता है, जलकी वर्षा होनेपर दावाग्नि शान्त हो जाती है एवं वसन्तागमन जानकर कोयल कूकने लगती है उसी प्रकार ज्ञान भावके उदित होते ही मोह, पाप, भ्रम, अज्ञान, दुष्प्रवृत्तियाँ क्षणभरमें पलायन कर जाती हैं।

हिरदै हमारे महामोहकी विकलताई,
ताते हम करना न कीनी जीवघातकी।
आप पाप कीने औरनिको उपदेश दीने,
हुती अनुमोदना हमारे याही बातकी ॥
मन, वच, काया में मगन है कसायो कर्म,
धाये भ्रमजालमें कहाए हम पातकी।
ज्ञानके उदयतें हमारी दशा ऐसी भई,
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥

आत्मामें अशुद्धि परद्रव्यके संयोगसे आती है। यद्यपि मूल द्रव्य अन्य प्रकार रूप परिणमन नहीं करता है, फिर भी पर द्रव्यके निमित्तसे अवस्था मलिन हो जाती है। जब सम्यक्त्वके साथ ज्ञानमें भी सच्चाई उत्पन्न होती तो ज्ञानरूप आत्मा परद्रव्योसे अपनेको मिला समझकर शुद्धात्मावस्थाको

प्राप्त होती है। कवि कहता है कि कमल रातदिन पकमें रहता है तथा पकज कहा जाता है, फिर भी कीचड़से वह सदा अलग रहता है। मन्त्रवादी सर्पको अपना गात पकड़ाता है, परन्तु मन्त्रशक्तिके विषके रहते हुए भी सर्पका डक निर्विष रहता है। पानीमें पड़ा रहनेसे जैसे स्वर्णमें काई नहीं लगती है ; उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति ससारकी समस्त क्रियाओंको करते हुए भी अपनेको भिन्न एव निर्मल समझता है।

जैसे निशिबासर कमल रहें पंक ही में,
पंकज कहावै पै न वाके ढिग पंक है।
जैसे मन्त्रवादी विषधरसों गहावें गात,
मंत्रकी शक्ति वाके बिना विप डंक है ॥
जैसे जीभ गहे चिकनाई रहे रखे अंग,
पानीमें कनक जैसे काईसे अटंक है।
तैसे ज्ञानवान नानाभाँति करतल ठानै,
किरिया तैं भिन्न माने मोते निष्कलंक है ॥

ज्ञानके उत्पन्न होनेपर ही आत्मराज्यकी उत्पत्ति होती है, विकार और वासनाएँ ज्ञानके उद्बुद्ध होते ही क्षीण हो जाती हैं। यह ज्ञान बाह्य पदार्थोंमें नहीं रहता है, किन्तु आत्माका गुण है। आत्मबोध पाते ही ज्ञानकी अवस्था जागृत हो जाती है। आत्मज्ञानी भेद-ज्ञानकी ओरसे आत्मा और कर्म इन दोनोंकी धाराओंको अलग-अलग करता है। आत्माका अनुभव कर श्रेष्ठ आत्मधर्मको ग्रहण करता है और कर्मोंके भ्रमको नष्ट कर देता है। इस प्रकार रत्नत्रय मार्गकी ओर अग्रसर होता है, जिससे पूर्ण ज्ञानका प्रकाश सहजमे ही उत्पन्न हो जाता है। ज्ञानी विश्वनाथ बन जाता है। पूर्ण समाधिमें मग्न होकर शुद्धात्माको प्राप्त करता है, जिससे शीघ्र ही ससारके आवागमनसे रहित होकर कृतकृत्य हो विश्वनाथके पदपर आसीन हो जाता है। कवि कहता है—

भेदज्ञान आरा सों दुफारा करे ज्ञानी जीव,
आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै ।
अनुभौ अभ्यास लहे परम धरम गहे,
करम भरम का खजाना खोलि खरचै ॥
यों ही मोक्ष मग घावै केवल निकट आवे,
पूरण समाधि जहाँ परमको परचै ।
भयो निरदोर याहि करनो न कछु और,
ऐसे विश्वनाथ ताहि बनारसी भरचै ॥

जब कर्मोंके ससर्गसे आत्माकी विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ हो रही हैं । निश्चय रूपसे वास्तविक दृष्टिकोणसे आत्मा एक होनेपर भी व्यवहारमें अनेक रूप है तथा अनेक होनेपर भी एक रूप है । ससारमें कर्मोंके बन्धन ने आत्माको इतना विवृत और विचित्र कर दिया है, जिससे इसकी यथार्थ अवस्थाका चित्रण नहीं किया जा सकता है । यह आत्मा कर्त्ता भी है और अकर्त्ता भी । कर्मफलका मोक्ता भी है और अमोक्ता भी । व्यवहारसे पैदा होता है और मरता है, किन्तु निश्चयसे न पैदा होता है और न मरता है । व्यवहार रूपमें बोलता है, विचारता है, नाना प्रकारके सिंह-शूकर-श्वान-शृगाल-काक-कीट आदि रूपोंको धारण करता है । वस्तुतः यह आत्मा अचेतन कर्मोंके ससर्गसे नट बन गयी है, इसी कारण अनेक वेदोंको धारणकर नानाप्रकारकी क्रियाओंको किया करती है । समय—आत्माके विभिन्न नटरूपों तथा उसके वास्तविक स्वरूपका विश्लेषण होनेसे ही इस ग्रन्थका नाम समय-सार नाटक रखा है । कवि आत्माकी इसी नट-वाजीका निरूपण करता हुआ कहता है—

एकमें अनेक है अनेक ही में एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यो न परत है ।
करता अकरता है भोगता अभोगता है,
उपजे न उपजत मरे न मरत है ॥

बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु,
 भेख को न भाजन पै भेख को धरत है ।
 ऐसो प्रभु चेतन अचेतनको संगतिसों,
 उलट-पलट नटवार्जा साँ करत है ॥

जिस प्रकार नदीकी एक ही धारमें नाना स्रोतोंका जल आकर मिलता है तथा जिस स्थानपर पापाणधिलाएँ रहती हैं, वहाँ धारा मुड़कर जाती है ; जहाँ ककड़ रहते हैं, यहाँ झाग देती हुई आगे बढ़ती है ; जहाँ हवाका जोर पड़ता है, वहाँ चंचल तरंगे उठती हैं और जहाँकी भूमि नीची होती है, वहाँ भँवरें पड़ती हैं ; इसी प्रकार आत्मामें पुद्गल—अचेतनके अनन्त रसोंके कारण अनेक प्रकारके विभव उत्पन्न होते हैं । आत्माकी ये लीलाएँ नाटकके पात्रोंकी लीलाओंमें कम नहीं होती । संसाररूपी रंगस्थलीपर आत्मा नट बनकर नाना तरहकी लीलाएँ किया करती है । नायक आत्मा है और प्रतिनायक पुद्गल-जड़ पदार्थ । कविने आत्माकी इस अनेकरूपताका कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

जैसे महीमण्डलमें नदीका प्रवाह एक,
 तार्हीनँ अनेक भाँति नीरझी ढरनि है ।
 पाथरके जोर तहाँ धारकी मरोर होत,
 काँकरकी खानि तहाँ आगकी झरनि है ॥
 पानकी झकोर तहाँ चंचल तरंग उठै,
 भूमिकी निचानि तहाँ सौरकी परनि है ।
 तैसो एक आत्मा अनंत रस पुद्गल,
 दोहूके संयोगमें विभावकी भरनि है ॥

नाटक समयसारकी मापा सरस, मधुर और प्रसादगुणपूर्ण है । शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास और पदावलियोंके संगठनमें सतर्कता और सार्थकताका ध्यान सर्वत्र रखा गया है । इसमें मल्यानिलका स्पर्श

विद्यमान है, जो हृदयकलिका विकसित करनेमें पूर्ण समर्थ है। अतएव भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोंसे यह रचना उत्कृष्ट कही जा सकती है।

यह एक सरस रचना है। इसमें कवि बनारसीदासने भौतिक जीवनको पशु-जीवन बतलाते हुए मानव बननेका मार्ग बतलाया है। मानव जीवन-
तेरह काठिया का उच्च आदर्श प्रतिपादित होनेके कारण यह वर्ग विशेषकी वस्तु न होकर सर्व साधारणकी सम्पत्ति है। इसमें साहित्यके उपयोगवादी दृष्टिकोणके अनुसार जीवनमें 'अशिव'का परिष्कार कर 'शिव'को प्राप्त करनेका सकेत किया गया है। क्षणभंगुर शरीरके मोह और ममताको छोड़ आत्माकी अमरताको प्राप्त करनेका प्रयत्न ही श्लाघ्य हो सकता है। समस्त पार्थिव तृप्तियोंके साधन रहते हुए भी मन एक अभावका अनुभव करता है; सारी सुख-सुविधाओंके रहने पर भी मनकी तृप्ति नहीं होती है, यह अभाव राजनैतिक या सामाजिक नहीं; प्रत्युत आध्यात्मिक होता है। इस ग्रन्थमें कविने जीवनमें इसी अभावकी पूर्णताकी आवश्यकता बतलायी है। आध्यात्मिक संवेदनशील सरस स्रोतसे हमारी समस्त आन्तरिक पीड़ाएँ दूर हो जाती हैं। यह सरस रचना पाठकको साधारण मानव-जीवनके धरातलसे ऊपर उठाकर जीवन-का वास्तविक आनन्द देती है।

कवि जीवन-परिष्कारके लिए विधानका प्रतिपादन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार छुटेरे, बदमाश, चोर आदि देशमें उपद्रव मचाते हैं, उसी प्रकार तेरह काठिया आत्मामें उपद्रव—विकृति उत्पन्न करते हैं। जुआ, आलस, शोक, भय, कुकथा, कौतुक, कोप, कृपणबुद्धि, अज्ञानता, भ्रम, निद्रा, मद और मोह ये तेरह आत्मामें विकार उत्पन्न करते हैं। विभाव परिणतिके कारण श्रद्धा, बुद्ध और निरंजन आत्म-तत्त्वमें पर-पदार्थोंके संयोगसे विकृति उत्पन्न हो जाती है। जब तक आत्मामें विभाव-परिणति पर-पदार्थ रूप प्रवृत्ति, करनेकी क्षमता रहती है तब तक उक्त

तेरह धूर्त आत्माके निजी धन अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यको चुराते रहते हैं।

पहला धूर्त जुआ है। मानव जीवनमें सबसे बड़ी अशान्ति इसीके कारण उत्पन्न होती है। यह प्रभुता, शुभकृत्य, सुयश, धन और धर्मका हास करता है। जुआरी व्यक्ति सबसे प्रथम अपने वैभव और साखसे हाथ धोता है। मान-भर्यादा और ऐश्वर्य सभी जुआके कारण नष्ट हो जाते हैं। आत्मोत्थानके कार्योंमें प्रवृत्ति नहीं होती है, निन्द्रा और छोटे कामोंमें शक्ति और धनका व्यय होता है। जगत्में जुआरीका अपयश भी फैल जाता है। हृदयकी सत् भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और आसुरी-भावनाओंका प्रतिग्रह होने लगता है। स्वार्थ और हिंसा प्रवृत्ति जो व्यक्ति और समाज दोनोंके लिए अत्यन्त अहितकारक है; जुआके कारण ही जन्म-ग्रहण करती है।

दूसरा धूर्त है आलस। यह जीवनके मन्दाकिनी-प्रवाहको पर्वतके उस सूने पथपर ले जाता है, जहाँ लहरें उठती हैं और कगारकी गोदमें जाकर विलीन हो जाती है। जीवनमेंसे श्रद्धा, विश्वास और कर्तव्य-परायणता निकल जाती है तथा हृदय-मण्डलमें धूल और राख भर जाती है। जीवन श्रितिज अन्धकाराच्छन्न हो ज्ञान-मार्गको अवरोध करनेमें सहायक बनता है, शान्त-सरोवरकी मधुर चाँदनी अस्ताचलकी ओर प्रस्थान कर देती है तथा भावनाओंका उठना बन्द हो जाता है और झपकी आने लगती है। बाह्य जगत्का हाहाकार अन्तर्जगत्में भी मुखरित होने लगता है। प्रेमका पपीहा अध्यात्मरस न मिलनेसे प्यासा ही रह जाता है। जीवनकी ओर गतिशील होनेकी कामना सुख-स्वप्न हो जाती है और जीवन जेठकी दुपहरियाके समान प्रमादके कारण दहकता है। कविका कहना है कि प्रमाद का अभाव होनेपर ही जीवन-श्रितिज रम्य प्रकाश-रश्मियोंसे व्याप्त हो सकता है।

तीसरा धूर्त शोक है, यह सन्ताप-बीजको उत्पन्न कर आत्माकी धैर्य

और धर्म-क्रियाओंको छुत कर देता है। परिश्रम और शक्तिका अभाव हो जानेपर शोक नृपका शासन अधिक दिनों तक चलता है। जीवनमें अगणित विद्युत्-कण नृत्य करने लगते हैं। प्रलयकालीन मेघोंकी मूसला-धार वर्षा होने लगती है। जीवन-समुद्रमें यह धूर्त बाढ़वाग्नि उत्पन्न करता है, जिससे वह गुरु गर्जन-तर्जन करता हुआ क्षुब्ध हो जाता है तथा नाना प्रकारके भयकर और विपैले जन्तु आत्माकी शक्तिका अपहरण कर लेते हैं।

चौथा ठग है भय। जीवन-पथको विषय और भयकर बनानेमें यह अपनी सारी शक्तिको लगाता है। उल्लास, स्फूर्ति, तेज और गतिशीलता आदि सभी प्रवृत्तियोंमें ज्वालामुखी विस्फोटन होने लगता है। जीवन-नौका डोंड न लगनेसे तथा पतवारके अस्थिर होनेसे अनिश्चित दिशाकी ओर विभिन्न विकारजनित लहरोंके साथ थपड़े खाती हुई प्रवाहित होती जाती है। इस ठगका आतंक इतना व्याप्त रहता है जिससे सामनेका कगार भी धुंधला ही दृष्टिगोचर होता है। जीवनमें अगति और अनिश्चितता इसीके कारण आती है तथा भयाक्रान्त व्यक्ति जीवनमें सुनहले प्रभातके दर्शन कभी नहीं कर पाते हैं। जीवनका प्रत्येक कोना इस ठगके कारण अरक्षित रहता है। यह रात्रिमें ही धोखा नहीं देता, चोरी नहीं करता; प्रत्युत दिनमें भी निषङ्क हो अपने कार्योंका सम्पादन करता है। जीवनकी विकासशील स्थितिको ढावोंढोल करना इसीका काम है।

जीवन-मार्गका पाचवाँ ठग कुकथा है। रागात्मक चर्चाएँ आत्मा-भावनाको आवृतकर अनात्म-भावनाओंको उद्बुद्ध करती हैं। जिस प्रकार प्रलयकालमें समुद्रके जल-जन्तु विकल हो उछल-कूद मचाते हैं, उसी प्रकार कुकथाओंके कहने और सुननेसे मानसिक विकार आत्मिक भावोंका मन्थन करते हैं, जिससे आत्मिक शक्तियाँ कुटित हो जाती हैं। आत्म-चेतना छुत हो जाती है और जीवनमें विकारोंका त्फान उठकर जीवनको परम अगान्त बना देता है। मानव प्रकृत्या कमजोर है, वह कुत्सित

चर्चाओं और वार्ताओंके श्रवण, पठन एवं चिन्तनमें सदा आगे रहता है, जिससे यह ठग अपना अवसर पाकर आत्मिक शक्तिको चुपचाप ही अपहृत कर लेता है तथा जीवन अशान्त हो जाता है। यान प्रवृत्तिको प्रोत्साहन भी इसी ठग द्वारा मिलता है।

जीवन-मार्गका छटवॉ पाकिटमार है कौतूहल। इसकी माया अपार है, जिधर अपूर्व और रमणीय वस्तु दिग्नलायी पड़ती है, उधर भी वह पहुँच जाता है। कोमल, मुनहली और उजली आशा-किरणें जीवनके मार्गमें मनमोहक और आकर्षक दृश्य उपस्थितकर एकान्त और निर्जन धानके खेतोंमें ले जाती हैं; जहाँ जीवात्माके रक्तत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्यको बलपूर्वक लूट लिया जाता है। यद्यपि इस मार्गमें शीतलजलके सहित्तों न्योत रस वर्षा करते हैं, परन्तु है यह खतरनाक।

सातवॉ ढाकू कोप है। इस अग्निमें अधिक उष्णता, दाहकता और भस्मसात् करनेकी शक्ति निहित है। जीवनमें कालरात्रिका आगमन इस ढाकूकी कृपाका ही फल है। दया और स्नेह, जिनसे जीवनमें सरसता आती है, हृदय कंजोंपर अनुराग मकरन्द बिखरने लगता है एवं नाना भाव तपी वृक्षोंपर आच्छादित हिमकं पिघल जानेसे जीवनकी जड़ों-वृटियों जागरणको प्राप्त करती हैं, यह ढाकू उन्हें देखते-देखते ही चुरा लेता है। इसी कारण इसे पय्यतोहर कहा गया है। ज्ञान और श्रमाके साथ इसका भीषण युद्ध भी होता है। दोनोंकी सेनाएं सजती हैं, युद्ध-वाद्य बजने हैं, तथा अपनी-अपनी ओरसे युद्ध-कौशलका पूरा-पूरा प्रदर्शन किया जाता है। यह विद्रोही रत्नत्रयको लेनेके लिए नाना उपाय करता है, इसको परास्त करना साधारण बात नहीं है। जों महावीर हैं, इन्द्रियजयी हैं, संयमी हैं और जिन्होंने प्रलोभनोंको जीत लिया है, वे ही इसे परास्त करनेकी क्षमता रखते हैं। जीवनमें उच्छृङ्खलता और अव्यवस्था इसकी देन है।

आठवॉ ठग है कृपणबुद्धि। समस्त वस्तुओंको ले लेनेका लोभ करना

ही आत्मोत्थानका बाधक है। विश्वके मनमोहक पदार्थ इस प्राणीको अपनी ओर खींचते हैं। प्रलोभनोपर विजय प्राप्त किये बिना व्यक्तित्वका विकास नहीं हो सकता है। वस्तुतः वासना और सयमके उचित अनुपातसे ही जीवन अभ्युदयकी ओर बढ़ता है। प्रलोभनोंके मनमोहक दृश्य मानव मनको उलझाये बिना नहीं रह सकते। कृपणबुद्धि तो सर्वदा ही छोटे-बड़े सभी प्रकारके प्रलोभनोंमें ममत्व करती है, जिससे धर्मका नाश होता है। रत्नत्रय-धर्मका विधातक यह ठग है। आजतक इस ठगने कितने ही व्यक्तियोंकी हत्या कराई, कितने ही देवायतनोंको दूषित कराया और कितने ही निरपराधियोंको मौतके घाट उतारा। सासारिक सौन्दर्य का मूल्य इसी मापदण्डसे निर्धारित किया गया। एक-एक पैसेके लिए पाप किये, अनाचार किये, झूठ बोला, चोरी की और न मालूम क्या-क्या नहीं किया। सब इसी ठगने तो कराया, आत्माकी शक्तिको मुख्य रूपमें इसने विकृत किया।

नौवाँ ठग है अज्ञान, जिसने प्रकाशमान भास्करके ऊपर घने अन्धकारका आवरण ढाल दिया है। इसके रहनेसे जीवन-पथ भिँकुल अरक्षित है। यह अकेला नहीं रहता है, इसकी सेना बहुत बड़ी है। यद्यपि यह अपने दलका मुखिया है, परन्तु अन्य ठग भी बड़े ही शक्तिशाली हैं। सयमसे यह डरता है, उसके धनुषकी टकार सुनते ही इसके कान बधिर और आँखें अन्धी बन जाती हैं। धर्मरत्नकी सुरक्षाके लिए इस ठगको भगाना ही पड़ेगा। इसके साथ सन्धि करनेसे काम नहीं चल सकेगा।

दसवाँ ठग भ्रम है, इससे सारी शक्तियोंको ही चुरा लिया है। यह अहर्निश वसन्त वैभव और ओस मोतीकी माला लिये भावना वैभवकी सृष्टि करता है। जीवनको ठोस सत्यके धरातलसे पृथक्कर किसी भयकर सागरमें डुबाना चाहता है। शुद्ध, निर्मल और ज्ञानरूप आत्माको शरीर आदि जड़ पदार्थोंमें समझता है।

ग्यारहवाँ ठग है नीद । तन्द्रा मानवको संसारके मधुर स्वप्नोंमें भले ही विचरण कराये, पर ठोस विश्वसे पृथक् कर देती है । जन्म-मरणकी समस्या और संसारके प्रति विराम भावकी कल्पनामें यह अनेक विघ्न उपस्थित करती है । यह ठग आत्मानुभूति सौन्दर्यकी यथार्थ अभिव्यक्तिको चुरा लेता है ।

बारहवाँ ठग है अहंकार । संसारकी दो प्रवृत्तियाँ जो जीवनको इस क्षितिजसे उस क्षितिजकी ओर ले जाती है, इसीके कारण उत्पन्न होती हैं । आत्मामें मार्दवधर्म उत्पन्न न होने देना तथा सहानुभूति और सहृदयता, जो कि नम्रता भावको उत्पन्न करनेमें साधक हैं, नहीं उत्पन्न होने देना इसकी विशेषता है ।

तेरहवाँ ठग मोह है । सारा विश्व इसके प्रभावसे दुःखी है । रत्नत्रय-चर्मको ये सभी ठग चुराते हैं, उसको प्राप्त करनेमें बाधक बनते हैं ।

यद्यपि इस तेरह काठियाकी रचना साधारण है, काव्य-सौन्दर्य अत्यल्प है; फिर भी भावनाओं और विचारकी दृष्टिसे यह रचना श्रेष्ठ है, इसमें जीवनके सभी पक्षोंकी अनुभूतिके लिए हृदय-कपाटको खुला रखा गया है । मनोविकारोंके परिमार्जनकी ओर प्रत्येक व्यक्तिको सर्वदा ध्यान रखना चाहिये, उसपर विशेष जोर दिया है । भाषापर गुजरातीका प्रभाव है ।

यह सरस हृदयग्राहक रचना है । कवि बनारसीदासने इसमें संसारकी विडम्बनाओंसे पृथक् रहनेकी ओर संकेत करते हुए परमात्म-चिन्तन

भवसिन्धु-

चतुर्दशी

अथवा तत्त्वान्वेषणकी ओर प्रवृत्त होनेकी बात कही है । प्रायः देखा जाता है कि उच्चतर अभिव्यक्तिसे वचित मानव-जीवन ऐन्द्रिय उपयोगमें ही डूबा रहता है । भौतिक सघर्षके कारण जीवन-नौका आध्यात्मिकताकी ओर गीतशील नहीं होती है । रागवश मानव स्वभावतः विषम परिस्थितियोंसे आहत रहता है और उसे आत्म-मुख-रूपिणी स्थिति नहीं मिल

पाती । शरीर और मन दोनों ही अस्वस्थ रहते हैं तथा कुत्सित लालसाएँ जीवन-रसको सुखा देती हैं । कविने प्रस्तुत रचनामें ससारको समुद्रकी उपमा देकर उसका विद्वलेपण मनोहर ढंगसे किया है तथा आत्मोद्धार करनेके सरल और अनुभूत उपाय बतलाये गये हैं । उपमाएँ अत्यन्त चुमती हुई सरल और सरस हैं । कवि कहता है कि—कर्मरूपी महा-समुद्रमें क्रोध मान-माया-लोभ रूप विकारोका जल भरा है और विषय-वासनाओंकी नाना तरंगे अहर्निश उठती रहती हैं । तृष्णा-रूपी प्रबल द्वाढवाग्नि इसमें नाना प्रकारसे विकृति उत्पन्न करती रहती है और चारो ओर भमतात्पी गुरुगर्जनाएँ होती रहती हैं । इस विकराल समुद्रमें भ्रम, मिथ्याज्ञान और कदाचाररूपी भँवर उठती रहती हैं । समुद्रकी भीषणताके कारण मनरूपी जहाज चारों ओर घूमता है, कर्मके उदयरूपी पवनके जोरसे वह कभी गिरता है, कभी डगमगाता है, कभी झूबता है और कभी उतराता है ।

जैसे समुद्र ऊपरसे सपाट दिखलायी पड़ता है, पर कहीं गहरा होता है और कहीं चंचल भँवरोंमें डाल देता है, उसी प्रकार ससार भी ऊपरसे सरल दिखलायी पड़ता है, किन्तु नाना प्रकारके प्रपञ्चोंके कारण गहरा है और मोहरूपी भँवरोंमें फँसानेवाला है । इस ससारमें समुद्रकी बड़-वाग्नि के समान माया तथा तृष्णाकी ज्वाला जला करती है, जिससे सारी जीव अहर्निश झुलसते रहते हैं ।

ससार अग्निके समान भी है, जैसे अग्नि ताप उत्पन्न करती है, उस प्रकार यह भी त्रिविध ताप—दैहिक, दैविक और भौतिक संतापोको उत्पन्न करता है । अग्नि जिस प्रकार ईंधन डालनेसे उत्तरोत्तर प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार अधिकाधिक परिग्रह बढ़ानेसे सासारिक आकाक्षाएँ बढ़ती चली जाती हैं । यह संसार अन्धकारके तुल्य भी है, क्योंकि प्राणीके सम्यग्ज्ञानको छुतकर उसे विवेकहीन बना देता है । मिथ्यात्वके सबर्द्धन

और पोषणसे प्राणीको अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं तथा उसकी चिरन्तन शान्ति भी इसीके कारण विवृत हो जाती है।

जब चैतन्य आत्मा जाग्रत हो जाती है, तब मानव लड़ पदार्थोंके सुखको नीरस अनुभव करने लगता है। समतान्त्र्य पतवारके हाथमें आजानेसे मनु-समुद्रको पार करनेमें सरलता होती है। आत्मगुणरूपी यन्त्र दिशाओंका परिज्ञान करता है। शुद्धध्यानरूपी मस्त्राह् मित्रद्वीप मोक्षकी ओरसे चल्ता है। यद्यपि मार्गमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, पर रत्नत्रयके पानमें रहनेसे गन्तव्यपर पहुँचनेमें त्रिबन्ध नहीं होता है।

इसमें प्रस्तुत संसारकी अभिव्यञ्जनाके लिए अप्रस्तुत समुद्रका साङ्गो-पाङ्ग निरूपण करते हुए उससे पार होनेके प्रयत्नोंपर प्रकाश डाला है। कथानकके अवलम्बन बिना ही भावनाओंकी इतनी सुन्दर अभिव्यञ्जना कविके काव्य-चमत्कारकी सृष्टिका है। कविने कितने सीधे-सादे दृगंश भावोंको प्रकट किया है—

कर्म समुद्र बिनाव लल, विषय कपाय तरंग ।
बड़बानल नृप्या प्रबल, मनता धुनि सबंग ॥
भरम भँवर तामें फिरै, मन जहाज चहुँओर ।
गिरै फिरै बूढ़े तिरै, उदय पवनके जोर ॥
जब चेतन मालिक लगै, लगै विपाक नज्म ।
ढारै समता शृंखला, यकै भँवर का धूम ॥
दिशि परगै गुण जन्मसों, करै शक्ति सुखान ।
धरै साथ मित्र दीप मुख, बाइवान शुन ध्यान ॥

इसकी भाषा सरल, परिमलित और मधुर है। उष्णार्द्र जायक हैं, कल्पनाकी उड़ान ऊँची नहीं है, फिर भी नाचकी दृष्टिसे रचना अच्छी है। कविने इसमें आध्यात्मिक भावनाओंका अपूर्ण मिश्रण किया है।

कवि बनारसीदासने हिंडोलेका रूपक देकर आत्मानुभूतिकी जो इतनी सरस अभिव्यञ्जना की है वह अन्यत्र मिल सकेगी, इसमें सन्देह है। चेतन

अध्यात्म-
हिंडोलना

आत्मा स्वाभाविक सुखके हिंडोलेपर आत्मगुणोंके साथ क्रीड़ा करती रहती है। हिंडोलेका झूलना आनन्दप्रद, श्रान्ति और क्लान्तिको दूर करनेवाला एव नानाप्रकारसे मनमें हर्ष और प्रसन्नताको उत्पन्न करता है। यह हिंडोला समतल भूमि-पर निर्मित किसी भव्य प्रासादमें रस्सीके सहारे टोंगा जाता है। हिंडोला झूलते समय सौभाग्यवती नारियाँ चित्तको आह्लादित करनेवाले नानाप्रकार के मनोरम गायन गाती हैं तथा हर्षातिरेकसे तन-बदनको झूल अलौकिक आनन्दमें मग्न हो जाती हैं। हिंडोलेके समय वर्षा भी होती है, घन-घटाएँ गर्जन-तर्जन करती हुई नानाप्रकारके मय उत्पन्न करती हैं। कभी-कभी शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु प्रवाहित होती है, जिससे हिंडोला झूलनेवालेका मन अपार आनन्दको प्राप्त होता है। वर्षा ऋतुमें हिंडोला झूला जाता है, अतः विद्युत्की चकाचौंध अन्धकारमें एक क्षीण प्रकाशकी रेखा उत्पन्न करती है। कविने इस छोटेसे दर्शनके सहारे जीवन और जीवन-विकासके सारे सिद्धान्तको अभिव्यञ्जित करनेमें अपूर्व सफलता पायी है। कवि इसी रूपकको स्पष्ट करता हुआ कहता है—हर्षके हिंडोलेपर चेतन राजा सहज रूपमें झूमता हुआ झूलता है। धर्म और कर्मके संयोगसे स्वभाव और विभावरूप रस उत्पन्न होता है। मनके अनुपम महत्में सुचिह्नरूपी सुन्दर भूमि है, उसमें ज्ञान और दर्शनके अचल खम्भे और चारित्रिकी मजबूत रस्ती लगी है। यहाँ गुण और पर्यायकी सुगन्धित वायु बहती है और निर्मल विवेकरूपी भ्रमर गुञ्जार करते हैं। व्यवहार और निश्चय नयकी दंडी लगी है। तुमतिकी पटरी बिछी है और उसमें छह द्रव्यकी छह कीलें लगी हैं। कर्मोंका उदय और पुरुषार्थ दोनों मिलकर हिंडोलेको झिलते हैं। सवेग और सवर दोनों सेवक सेवा करते हैं तथा व्रत ताम्बूल आदि देते हैं, जिससे आनन्दस्वरूप चेतन अपने आत्मसुखकी समाधिमें निश्चल

होता है। धारणा, समता, क्षमा और करुणा ये चारों सखियों चारो ओर उपस्थित हैं तथा सकाम, अकाम निर्जरारूपी दासियों सेवा करती हैं। यहाँ सातों नयरूपा सुहागिनी बालाओंके कंठकी मधुरध्वनि सुनाई पड़ती है। गुरुवचनका सुन्दर राग आलापा जा रहा है तथा सिद्धान्तरूपी ध्रुपद और अर्थरूपी तालका संचार हो रहा है। सत्य श्रद्धानरूपी मेघमाला गुरु गर्जन करती हुई क्रोध, तृष्णा, ईर्ष्या आदि छुटेरोको भगा रही है। स्वानुभूतिरूपी विद्युत् जोरसे चमकती है और शीलरूपी शीतलवायु प्रत्येक सहृदयके हृदयको रस निमग्न कर देती है। तप करनेसे कर्म-कालिमा भस्म हो जाती है और अपरिमित आत्मशान्ति प्रकट हो जाती है। कविने उपर्युक्त भावकी कितनी सुन्दर अभिव्यजना की है—

सहज हिँडना हरख हिँडोलना, झूलत चेतन राव ।
 जहँ धर्म कर्म सँजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव ॥
 जहँ सुमन रूप अनूप मन्दिर, सरुचि भूमि सुरंग ।
 तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल चरन आड अभंग ॥
 मरुवा सुगुन पर जाय विचरत, और विमल विवेक ।
 व्यवहार निश्चल नय सुदंड़ी, सुमति पटली एक ॥
 उद्यम उदय मिलि देहिँ झोटा, शुभ-अशुभ कल्लोल ।
 पटकील जहाँ पद द्रव्य निर्णय, अभय अंग गडोल ॥
 संवेग संवर निकट सेवक, विरत वीरे देत ।
 आनन्द कन्द सुखन्द साहिब, सुख समाधि समेत ।
 धारना समता क्षमा करुणा, चार सखि चुहुँ ओर ।
 निर्जर दोड चतुरदासी, करहिँ खिदमत जोर ॥
 जहँ विनय मिलि सातो सुहागिन, करत धुन झनकार ।
 गुरु वचन राग सिद्धान्त ध्रुपद, ताल अरथ विचार ॥
 श्रद्धाहन साँची मेघमाला, दाम गर्जन घोर ।
 उपदेश वर्षा अति मनोहर, अविक चातक शोर ॥

अनुभूति दामिन दमक दीसै, शील शीत समीर ।

तप भेद तपत उछेद परगट भाव रंगत चीर ॥

यद्यपि अध्यात्म-हिंडोलनाकी भाषा साधारण है, किन्तु कविने रमणीयतामें पवित्रताको इस प्रकार मिला दिया है जिससे आत्म-व्योति फूटती हुई दिखलायी पड़ती है। आत्माकी मधुर स्मृति जाग्रत हो जानेसे मानव आत्माके साथ आनन्दका झूला झूलने लगता है अर्थात् अशुद्ध आत्मा शुद्ध होनेकी ओर अग्रसर होती है।

यह मैया भगवतीदासका सुन्दर आध्यात्मिक रूपक-काव्य है। वस्तुतः यह आत्म-चेतनाकी वाणी है। कवितामें हृदयकी कोमलता, चेतन-कर्म-कल्पनाकी मनोरमता और आत्मोन्मुखी तीव्र अनु-चरित्र भूति है। कृति सुरम्य, विचित्रवर्णोंसे सयुक्त, अलौकिक आनन्द देनेवाली और मनोज है। आन्तरिक विचारों और अनुभूतियोंका सम्मिश्रण इस कृतिमें इतना अद्भुत है, जिससे यह कृति मानव अन्तस्तलको स्पर्श किये बिना नहीं रह सकती है। विकारोंको पात्र कल्पना कर कविने इस चरित्रमें आत्माकी श्रेयता और प्राप्तिका मार्ग प्रदर्शित किया है।

सुबुद्धि और कुबुद्धि ये दोनों चेतनकी भार्याएँ थीं। अतः कविने इन दोनोंका वार्तालाप आरम्भमें कराया है। सुबुद्धि चेतन आत्माकी कर्म-सयुक्त अवस्थाको देखकर कहने लगी—“चेतन ! कथावस्तु तुम्हारे साथ यह दुष्टोंका संग कहाँसे आ गया ? क्या तुम अपना सर्वस्व खोकर भी सजग होनेमें विलम्ब करोगे। जो व्यक्ति सर्वस्व खोकर भी सावधान नहीं होता है, वह जीवनमें कभी भी उन्नति-शील नहीं हो पाता है। नाना प्रकारके व्यक्तियोंके सम्पर्क एवं विभिन्न प्रकारकी परिस्थितियोंके बीच गमन करते हुए भी वास्तविकताको हृदयंगम करनेका प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।”

चेतन—“हे महाभागे ! मैं तो इस प्रकार फँस गया हूँ जिससे इस

गहन-पंकसे निकलना मुझे असम्भव-सा लगता है। मैं यह जाननेके लिए उत्सुक हूँ कि मेरा उद्धार किस प्रकार हो सकेगा। मैं किस प्रकार उन अनन्तोकी पक्तिमें स्थान प्राप्त कर सकूँगा, जो अपनेको ईश्वर हो जानेका दावा करते हैं।”

सुबुद्धि—“नाथ! आप अपना उद्धार स्वयं करनेमें समर्थ हैं जो व्यक्ति अपने स्वरूपको भूल जाता है, उस व्यक्तिको पराधीन करनेमें विलम्ब नहीं होता। जब तक हम अपनी यथार्थ स्थिति नहीं समझते हैं, तब तक प्रायः हमारे ऊपर शासन किया जाता है। हमारे ऊपर शोषणका क्रम भी तभीतक चलता है, जबतक हम अपने अधिकार और कर्त्तव्योंसे वंचित हैं। भेदविज्ञान ही आपके लिए परम उपयोगी अस्त्र है, इसीसे आप रण-क्षेत्रमें युद्ध करनेके लिए सक्षम हो सकते हैं। जैसे सिंह गधोके साथ रहते-रहते अपनेको भूल जाता है, उसी प्रकार आप भी कुबुद्धिके कुसगसे पथच्युत हो गये हैं तथा इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं। सावधान होकर अब मैदानमें आ जाइये, विजय निश्चित है।”

कुबुद्धि—“री दुष्टा! क्या बक रही है। मेरे सामने तेरा इतना बोलने-का साहस, तू नहीं जानती कि मैं प्रसिद्ध शूरवीर मोहकी पुत्री हूँ। मुझे इस बातका अभिमान है कि अपने प्रभावसे मैंने अनेक योद्धाओंको परास्त कर दिया है। अरी सौत! तू इतनी बढ-बढ कर क्यों बाते कर रही है, क्यों नहीं यहाँसे चली जाती?”

सुबुद्धि—“बाह! बाह!! आपने खूब कहा। मैं और यहाँसे चली जाऊँ और तुम अकेली क्रीड़ा करो। न! न!! यह कभी नहीं होनेका। मेरे रहते हुए तेरा अस्तित्व कभी सम्भव नहीं, तू दुराचारिणी है। चल हट यहाँसे।”

सुबुद्धिके इन वाक्य-वाणोने कुबुद्धिके हृदय-कुसुमको छिन्न-भिन्न कर दिया, वह क्रुद्ध हो लाल-पीली होती हुई अपने पिता मोहराजके पास गई। यद्यपि यह मोहराज प्रचण्ड बली थे, पर समय और परिस्थितिका उन्हें

पूर्ण रूपसे अनुभव था, अतएव अपनी प्यारी पुत्रीको समझाते हुए कहने लगा—“बेटी, चिन्ता मत करो, मेरे रहते हुए ससारमे ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारा परित्याग कर सके। मैं तुम्हारे पतिकी बुद्धिको ठिकाने पर लाता हूँ। अभी अपने समस्त सरदारोंको बुलाकर चेतनके पास भेजता हूँ। जबतक वह सुबुद्धिको निकालकर तुमको अपने घरमे स्थान नहीं देगा, प्यार नहीं करेगा तबतक मैं चुप होने का नहीं। मेरी और मेरे योद्धाओंकी शक्ति महान् है।”

इस प्रकार कुबुद्धिको समझा-बुझाकर मोहने अपने चतुर दूत ‘काम-कुमार’को बुलाया और उसे आदेश दिया कि तुम चेतन राजासे जाकर कहो कि तुमने अपनी स्त्रीका परित्याग क्यों कर दिया है। या तो हाथ जोड़कर क्षमा याचना करो, अन्यथा युद्धके लिए तैयार हो जाओ।

दौत्यकर्ममे निपुण काम-कुमारने मोहका सन्देश जाकर चेतन राजासे कह दिया। बाद-विवादके उपरान्त चेतन राजा भी मोहसे युद्ध करनेको तैयार हो गया। मोहने महापराक्रमशाली क्रोध और लोभ योद्धाओंको चेतनराजको पकड़नेके लिए आमन्त्रित किया।

राग और द्वेष दोनों मन्त्रियोने नानातरहसे परामर्शकर चेतनराजको आधीन करनेका उपाय बतलाया। ज्ञानावरणने मन्त्रियोंको प्रसन्न करनेके लिए चाटुकारिता करते हुए कहा—“प्रभो! मेरे पास पाँच प्रकारकी सेनाएँ हैं, मैंने एक चेतनकी बात ही क्या, सारे ससारको अपने आधीन कर लिया है। मैं, आप जिस प्रकार कहें, चेतनराजको बन्दी बनाकर आपके सामने प्रस्तुत कर सकता हूँ। मेरी शक्ति अपार है, जहाँ-जहाँ आपको अज्ञान दीख पड़ता है, वह मेरी कृपाका फल है।”

इसी समय दर्शनावरणने अपनी डाँग हाँकते हुए कहा—“देव! मैं अपने विषयमे अधिक प्रशंसा क्या करूँ, मैंने तो चेतनकी वह दुरवस्था कर रखी है, जिससे वह कहींका नहीं रहा है। मुझ-जैसे सेनानीके रहते हुए आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं।” अवसर पा इसी समय

वेदनीय बोला—“नाथ ! मेरा प्रताप जगविख्यात है । जो वीतरागी कहलाते हैं, जिनके पास संसारका तिल-तुप मात्र भी परिग्रह नहीं है उनको भी मैंने नहीं छोड़ा है । सुख-दुःख विकीर्ण करना मेरी महिमा नहीं तो और क्या है ?” अब मोहनीयकी पारी आई और वह ताल ठोकता हुआ बोला—“अह, विश्वमें मेरा ही तो साम्राज्य है । मैं रहते हुए चेतनका यह साहस कि दुबुद्धिको घरसे निकाल दे । यह कभी नहीं हो सकता है, मैं तो प्रधान सेनापति हूँ । यदि मैं यह कहूँ कि मोहराज्यका सारा संचालन मेरे ही द्वारा होता है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।” इसी प्रकार क्रमानुसार आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायने अपनी-अपनी विघे-ताएँ बतलायीं । मोहराजा अपनी अपरिमित शक्तिको देखकर ईसा और बोला—“मुझ जैसे प्रतापीके शासन करते हुए, जिसके पास अष्ट कर्मोंकी प्रबल सेना है, चेतनराजा कभी अनीति नहीं कर सकेगा । क्या मेरी पुत्री दुबुद्धिको इस प्रकार घरसे निकाल सकेगा । अतः निश्चय हुआ कि अब जल्दी ही चेतनराजापर आक्रमण कर देना चाहिये ।

समस्त सेना आनन्दमेरी वजाती हुई राग-द्वेषको मोर्चेपर आगे कर रणक्षेत्रको चली । जब वे चेतननगरके समीप पहुँचे तो दूर ही पड़ाव डाल दिया ।

इधर जब चेतनराजाको मोहके आक्रमणका समाचार मिला तो उसने भी अपने सभी सचिव और सेनापतियोंको एकत्रित किया । सर्व प्रथम ज्ञान बोला—“नाथ ! मोहसे डरनेकी कोई बात नहीं, विजय निश्चय ही हमारे हाथ है । हमारी वाणवर्षाको मोहकी सेना कभी भी सहन नहीं कर सकती है ।”

चेतनराजा प्रसन्न हो बोला—“ज्ञानदेव ! तुम्हारी आन ही हमारी शान है । वीर ! मैं तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास करता हूँ, अनेक युद्धोंमें तुम्हारी वीरता देख भी चुका हूँ अतः शीघ्र ही अपने सैन्यदलको तैयार कर यहाँ उपस्थित करो । भयकी कोई बात नहीं है ; तुम्हें याद होगा,

अनेकवार तुमने मोहराजाकी सेनाको परास्त किया है, जल्द जाओ। इसी प्रकार दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य आदि भी क्रमशः चेतनराजाके समक्ष उपस्थित हुए और अपनी-अपनी विशेषताएँ बतलाकर बैठ गये। चेतनराजाने अपनी समस्त सेनाको आज्ञा दी कि शीघ्र ही तैयार होकर एकत्रित हो जाय; आज भयकर युद्धका सामना करना होगा।

ज्ञानदेव अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गया था, फिर भी वह शत्रुके पराक्रमसे सशंक था अतः विनीत होकर कहने लगा—“प्रभो ! अपराध क्षमा हो तो प्रार्थना करूँ।”

चेतनराजा—“वीरवर ! तुम्हारे ऊपर तो सारे युद्धका निपटारा निर्भर है। इस समय तुम्हें अप्रसन्न करनेसे मेरा कार्य किस प्रकार चल सकेगा ? अतः निस्सकोच जो कहना चाहो, कहो ; डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं। युद्धके अवसर पर वीरोंकी बात मानी जाती है। जो राजा रणनीतिविज्ञ वीरोंकी बात नहीं सुनता वह पीछे पश्चात्ताप करता है, अतः आप निर्भय होकर अपनी बातें कहें।”

ज्ञानदेव—“प्रभो, युद्धके लिए आक्रमण करनेके पूर्व दूत भेजकर शत्रुके प्रधान सचिवको या उसके किसी प्रतिनिधिको बुलवा लीजिये तथा जहाँ तक हो सके सन्धि कर लेना ही ठीक होगा।”

चेतनराजा—“ज्ञानदेव ! आज तुम युद्धके अवसरपर कातर क्यों हो रहे हो ? हमारी शक्ति अपार है, विश्वास करो, विजय होगी। घरमे दुश्मनको बुलवाना कहाँतक उचित है। राजनीति बड़ी विलक्षण होती है, अतः अब सन्धिका अवसर नहीं है। इस समय युद्ध करना ही हमारे लिए श्रेयस्कर है।”

ज्ञानदेव—“देव ! आप मोहराजाकी अपार शक्तिसे परिचित होकर भी इस प्रकारकी बातें कर रहे हैं। मेरा विश्वास है कि जब आपके सामने राग-द्वेष नाना प्रलेमनोंके साथ सुन्दर रमणियोंके समूहोंको लेकर प्रस्तुत

होंगे, उस समय आप दृढ़ रह सकेंगे ? आप मोहराजाके भयंकर अल्लोसे अपरिचित हैं ?”

चेतन राजा—ज्ञानदेव ! बात तो तुम्हारी ठीक है । मोहराजाने भुलवा देकर ही अपनी पुत्री कुसुमिके साथ मेरा विवाह कर दिया, जिसके वशीभूत हो मैंने कौन-कौन कुकर्म नहीं किये हैं ? परन्तु हमें अपनी अतुलित शक्तिका पूर्ण विश्वास है, विजय-लक्ष्मी मिलेगी । रमणियोंके कटाक्ष-वाण हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे, परन्तु तुम्हें हमारा साथ देना पड़ेगा । वीर तुमने यदि दृढ़तासे हमारा साथ दिया तो मोहका सैन्यदल हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा । अतः रणनीतिके अनुसार विवेक-दूतको मोहराजाके पास भेज देना चाहिये, शायद सन्धि हो जाय । यहाँ किसीका बुलाना ठीक नहीं । जब हममें अनन्त बल है, अनन्त सुख है, फिर इतना भय क्यों ?”

बहुत विचार-विनिमयके बाद ज्ञानदेवके सेनापतित्वमें चेतनराजाकी सेना और कामदेव कुमारके सेनापतित्वमें मोहराजाकी सेनाका युद्ध होने लगा । ज्ञानदेव समरनीतिका विशेषज्ञ था, यद्यपि कामदेवकुमार भी राजनीतिका पण्डित था, पर था शरीरसे सुकुमार । कठोर बलशाली ज्ञानदेवने सुकुमार कामदेव कुमारको एक ही वाणमें घराशायी कर दिया, यद्यपि कामदेव कुमारने अपना पौरुष दिखलानेमें कोई कमी नहीं की, किन्तु ज्ञानदेवके समक्ष उसकी एक भी चाल सफल नहीं हुई । ज्ञानदेवने चक्रव्यूह-रचना की और द्वार-सरक्षणका भार व्रतदेवको प्रदान किया । इस चक्रव्यूहको तोड़नेमें मोहराजाकी सारी सेना अक्षम रही और ज्ञानदेवने अवसर पा ज्ञानावरण, दर्जनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चारों वीरोंको मूर्च्छित कर दिया । मिथ्यात्वमट, जो कि मोहका बलवान सेनानी था, व्रतदेवने गिरा दिया । अविरतिको भी इस प्रकार पटका, जिससे यह वीर रणभूमिसे उठ ही नहीं सका, और सटाके लिए सो गया ।

चेतनगढ़ शत्रुओंसे खाली हो रहा था, शत्रुसेना माग रही थी और चेतन राजाने गुणस्थान प्रदेशोका मार्ग ग्रहण कर अपने गढ़के कौने-कौने-से शत्रुके भगानेका कार्य आरम्भ किया। यद्यपि मोहराजाकी सेना अस्त-व्यस्त थी, फिर भी कुछ सुभट, जिनमें प्रधान लोभ, छल, कपट, मान, माया आदि थे, छिपे हुए उचित समयकी प्रतीक्षामें थे। चेतन राजा मिथ्यात्व, सासादन, सम्पत्तिमिथ्यात्व और अविरत स्थानोसे मोहकी सेनाको खदेड़ता हुआ आगे बढ़ा और देशविरत, प्रमत्त एवं अप्रमत्त देशमें जाकर उसने मोह राजाके बलशाली सेनापति प्रमादका हनन किया। इस वीरके मारे जानेसे मोहकी सेना बलहीन होने लगी। भेद-विज्ञानका अस्त्र लेकर चेतन राजाने यहाँ भयकर युद्ध किया और क्षपकश्रेणी—टूट-टूटकर शत्रुओंको परास्त करनेके मार्गका आरोहण कर अपूर्वकरण और अनिष्टचिक्करण नामक नगरोंमें पहुँच ज्ञानावरणके दो वीर, मोहनीय-के चार और नामकर्मके तीस वीरोंको धराशायी किया। सूक्ष्म लोभका विध्वंस करनेके लिए अपने राज्यके दसवें नगर सूक्ष्मसाम्भरायमें प्रवेश करना पड़ा। यहाँ थोड़ी देर तक सूक्ष्म लोभके साथ युद्ध हुआ। बेचारा जर्जरित लोभ चेतन राजाका सामना नहीं कर सका और ध्यानवाण-द्वारा विद्ध होकर गिर पड़ा। चेतन राजाने अब समाधि अस्त्रको अपनाया, उसने समस्त कपाय शत्रुओंको इस एक ही वाण-द्वारा परास्त कर ग्यारहवें और बारहवें नगरोंको शत्रुओंसे खाली कराया। यद्यपि ग्यारहवाँ नगर उपशान्त मोह चेतन राजाके भयसे यों ही शत्रुओंसे खाली हो गया था, इसलिए उसे इस नगरमें जाना नहीं पड़ा। बारहवें क्षीण मोह नगरमें पहुँचकर मोह राजाको चेतन राजाने खूब पटका और उसका सर्वनाश कर कतिपय अवशेष शत्रुओंको परास्त करनेके लिए तेरहवें नगर सयोगकेवली में पहुँचा और वहाँ विजयका डंका बजाता हुआ कैवल्यज्ञान-लक्ष्मीको प्राप्तकर निहाल हो गया। इस समय एक ओर विजयी चेतन राजा आनन्दमें मग्न ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यको प्राप्तकर निष्कण्टक राज्य करने

लगा और दूसरी ओर विजित मोह अपनी सेनाको खोकर चेतनकी आधी-नता और महत्ता स्वीकार कर चुका था । चेतन राजाने अपने चौदहवें नगरमें पहुँच थोड़े ही समयमें मोक्षनगरी प्राप्त कर ली थी और यहीं स्थायी रूपसे राजधानी नियुक्तकर शासन करने लगा ।

यह एक सुन्दर काव्य है । कविने दोहा, चौपाई, सोरठा, पदरि मरहठा, करिखा और प्लवङ्गम छन्दोंमें इसकी रचना की है । कुल पद्य २९६ हैं । यह काव्यके अनेक गुणोंसे समन्वित है ।

काव्य-सौष्टव कल्पना, अरूप भावना, अलंकार, रस, उक्ति-सौन्दर्य और रमणीयता आदिका समवाय इसमें वर्तमान है । भावनाओंके अनुसार मधुर अथवा परुष वर्णोंका प्रयोग इस कृतिमें अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर रहा है । युद्धका वर्णन कविने कितना सजीव किया है—

सूर बलवन्त मदमत्त महा मोह के, निकसि सब सैन आगे जु भाये ।
मारि घमासान महा जुद्ध बहु क्रुद्ध करि, एक तैं एक सातों सवाये ॥
वीर सुबिबेकने धनुष ले ध्यानका, मारिकै सुभट सातों गिराये ।
कुमुक जो ज्ञान की सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा सवाये ॥
रणसिंगे बज्जहिं कोऊ न भज्जहिं, करहिं महा दोऊ जुद्ध ।
इत जीव हंकारहिं, निज पर धारहिं, करैह जरिन को रुद्ध ॥

युद्ध-वर्णनमें द्वित्व और संयुक्त वर्णोंका प्रयोगकर सजीवता लानेका प्रयास प्रशंस्य है । शब्दचित्रो-द्वारा कविने युद्धक्षेत्रका चित्र उतारनेमें सफलता प्राप्त की है । वीर रसके सहायक भयानक और वीभत्स रसोंका निरूपण भी यथास्थान विद्यमान है । आरम्भमें सुसंस्कृत शृङ्गारका आभास भी मिलता है, कविने वीर रसकी प्रेरणाके लिए संयमित शृङ्गारका वर्णन किया है । उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक, रूपक और समासोक्ति अलंकारोंकी छटा भी कवितामें विद्यमान है । रूपक-द्वारा व्यञ्जित आत्मिक वाणीका सिंहावलोकन करनेपर प्रतीत होता है कि कवि चिर सुखकी

लालसासे जगत्के कोलाहलपूर्ण वातावरणसे निकलकर जीवनकी आनन्द-मयी निधियों एकत्रित करनेमें सलग्न है तथा छल-कपट-राग-द्वेष-मोह-माया-मान-लोभ आदि विकारोंका परिमार्जनकर आत्मानन्दमें विचरण करना चाहता है और अपने पाठकोंको भी आत्मसरितामें अवगाहन, मजन और पान करनेकी प्रेरणा करता है। संक्षेपसे यह अनघ पद्य-बद्ध रूपक है।

एकसौ आठ पद्योंमें कवि भगवतीदासने आत्मज्ञानका सुन्दर उपदेश दिया है। यह रचना बड़ी ही सरस और हृदय-ग्राह्य है। अत्यल्प कथानक

शत अष्टोत्तरी के सहारे आत्मतत्त्वका पूर्ण परिज्ञान सरस शैलीमें करा देनेमें इस रचनानामे अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। कवि कहता है कि चेतन राजाकी दो रानियाँ हैं—एक सुबुद्धि और दूसरी माया। माया बहुत ही सुन्दर और मोहक है। सुबुद्धि बुद्धिमती होनेपर भी सुन्दर नहीं है। चेतन राजा माया रानीपर बहुत आसक्त है, दिनरात भोग-विलास में सलग्न रहता है। राज-काज देखनेका उसे विल्कुल अवसर नहीं मिलता है, अतः राज्यकर्मचारी मनमानी करते हैं। यद्यपि चेतन राजाने अपने शरीर देशकी सुरक्षाके लिए मोहको सेनापति, क्रोधको कोतवाल, लोभको मन्त्री, कर्म उदयको काजी, कामदेवको प्राइवेट सेक्रेटरी और ईर्ष्या-वृणाको प्रबन्धक नियुक्त किया है, फिर भी शरीर-देशका शासन चेतनराजाकी असावधानीके कारण विश्रृंखलित होता जा रहा है। मान और चिन्ताने प्रधानमन्त्री बननेके लिए संघर्ष आरम्भ कर दिया है। इधर लोभ और कामदेव अपना पद सुरक्षित रखनेके लिए नाना प्रकारसे देशको त्रस्त कर रहे हैं। नये-नये प्रकारके कर लगाये जाते हैं, जिससे राज्यकी दुरवस्था हो रही है। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य जो कि चेतन राजाके विश्वासपात्र अमात्य हैं, उनको कोतवाल, सेनापति, प्राइवेट सेक्रेटरी आदिने खदेड़ बाहर कर दिया है। शरीर-देशको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ चेतनराजाका राज्य न होकर सेनापति मोहने अपना

आत्म स्थापित कर लिया है। चेतनकी आवाजकी कमी अनुभूति करने हैं।

साधारणी में मोह और भ्रमको सुनवार गन्धर्वनायकमें सङ्केत देती है। उसने दमप्रकार प्रवृत्त किया है जिसे चेतन गलतका गलत उलट दिया नाथ और वह कथं उनकी शक्ति का इन नाथ। जब सुख को चेतन गलतके विन्द किया गये प्रवृत्तका उपाय क्या हो उसने अपना कर्म और कर्म समझ कर चेतन रचनाको सम्झाया तथा उसने प्रार्थना की—“प्रिय चेतन, तुम अपने भँवर गलेवाले ज्ञान आदिकी पैनाल नहीं करते हो। इच्छा और इर्गके गुणोंको अपना समझ साधा गुणमें इतना आत्म होना तुम्हें शोभा नहीं देता। जिन श्रेष्ठ, मोह और काम कर्म-आदिगण, तुम्हें शिक्षा कर लिया है, वे निश्चय ही तुमको उपाय नष्ट हैं, तुम्हारे चेतन्य नगरपर उनका अधिकार होनेवाला है, क्योंकि तुम्हें दर्प के हाथपर अपनी हार और चेतनेपर कर्म समझ लें हैं। जिन-रूप माया के द्वारा निरन्तर सौन्दर्यिक कर्मोंमें मग्न रहते हैं तुम्हें अपने विकास-त्रय अन्तर्गतों की लोभ देना पड़ेगा। तुम्हें जो नारां अर्थात् अज्ञान किया है, वह निश्चय अनुचित है। क्या कर्मा तुम्हें विचार किया है कि तुम जान हो, कहते आये हो, तुम्हें जीवन-काल दे रहे हैं और तुम अपने स्वभावके विस्मयान् व्युत् हो रहे हो? ये उच्च कर्म ज्ञानवागादि तथा भावकर्म सम-वेगति, जिनपर तुम्हारा बहुत विकास हो गया है, तुम्हें निश्चय मिला है, इनका तुम्हें कुछ भी लाभ-लभ्य नाथ नहीं है। जे चेतन ! क्या तुम राजा होकर अब दास बनना चाहते हो। इतने पुरु और अज्ञानवादी होकर तुम्हें वह वेकलन क्यों की ? हाथ लेकके काम होकर मायाकी मीठी बातोंमें लक्ष्मण मिथाने बन रहे हो। तुम्हारे जो वेकलन मैं वेदनासे सुझ रही हूँ, तुम्हारे अज्ञान मेरे लिए सब बात है, अब मैं समझ है, अन्तर है, उपोष है और है विकास-त्रय का नौका नहाव। इदमेव ! अब सावधान होकर अपनी नाराजता का

करें, जिससे शीघ्र ही मोक्ष महलपर अधिकार किया जा सके। प्राणनाथ ! राज्य सँभालते समय तुमने मोक्षमहलको प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा भी की थी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मोक्षमहलमें रहनेवाली मुक्ति-रानी इस ठगनी मायासे करोड़ों गुनी सुन्दरी और हाव-भाव प्रवीण है। उसे देखते ही मुग्ध हो जाओगे। एक बार उसका आलिङ्गन कर लेनेपर तुम अपनी सारी सुष-बुध भूल जाओगे। प्रमाद और अहंकार दोनों ही तुमको मुक्तिरमाके साथ विहार करनेमें बाधा दे रहे हैं।

इस प्रकार सुबुद्धिने नाना तरहसे चेतनराजाको समझाया। सुबुद्धि की बात मान लेनेपर चेतनराजा अपने विश्वासपात्र अमात्य ज्ञान, दर्शन आदिकी सहायतासे मोक्षमहलपर अधिकार करने चल दिया।

काव्यत्वकी दृष्टिसे इस रचनामें सभी गुण वर्तमान हैं। मानवके विकार और उसकी विभिन्न चित्तवृत्तियोंका अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर विवेचन किया गया है। यह रचना रसमय होनेके साथ मंगलप्रद है। 'शिव' और 'सुन्दर'का संयोग इसमें इतने अच्छे ढंगसे दिखलाया गया है जिससे यह रचना स्थायी साहित्यमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। गैलीकी दृष्टिसे इस रचनामें संस्कृत तत्सम शब्दोंकी प्रधानता, गम्भीरता और अलंकारोंका प्रयोग सुन्दर हुआ है। भावात्मक गैलीमें कविने अपने हृदयकी अनुभूतिको सरलरूपसे अभिव्यक्त किया है। दार्शनिकताके साथ काव्यात्मक गैलीमें सम्बद्ध और प्रवाहपूर्ण भावोंकी अभिव्यञ्जना रोचक हुई है। चमत्कारपूर्ण उक्तियों हृदयको स्पर्श ही नहीं करतीं, किन्तु भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं। मावुर्य और प्रसाद गुणके साथ कतिपय पद्योंमें ओज-गुण भी विद्यमान है। ब्रजभाषाका निखरा रूप भावोंको हृदयंगम करनेमें अत्यधिक सहायक है।

कवि चेतन राजाकी व्यवस्थाका विद्वलेपण करता हुआ कहता है—

काया-सी खु नगरीमें चिदानन्द राज करै ;

माया-सी खु रानी पै मगन बहु भयो है।

मोह-सो है फौजदार क्रोध-सो है कोतवार ;
 लोभ-सो वर्जार जहाँ लूटिबैको रह्यो है ॥
 उदैको जु काजी मानै, मानको अदल जानै ;
 कामसेनाका नवीस आई चाको कह्यो है ।
 ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूलि रह्यो ;
 सुधि जब आई तब ज्ञान आय गह्यो है ॥

मुमुक्षु चेतनराजाको समझाती है—

कौन तुम, कहाँ आप कौन बौराये तुमहि ;
 काके रस राचे कछु सुधहू धरतु हो ।
 कौन है ये कर्म जिन्हें एकमेक मानि रहे ;
 अजहूँ न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो ॥
 वे दिन चित्तारो जहाँ याँते हैं अनादि काल ;
 कैसे कैसे संकट सहे हू विसरतु हो ।
 तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हों ;
 तीन लोक नाथ हूँ के दीन से फिरतु हो ॥
 सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु ;
 कौन धिक्साहु जाहि ऐसी लीजियतु है ।
 दस द्वांस विपै सुख ताको कहो केतो दुख ;
 परिकै नरक सुख कौलों सीजियतु है ।
 केतो काल बीत गयो, मनहू न छोर लोय ;
 कहूँ तोहि कहा भयो ऐसो रीक्षियतु है ।
 आपु ही विचार देखो, कहिबे को कौन लेखो ;
 आवत परेखो तातैं कह्यो कीजियतु है ॥

इसमे पाँचों इन्द्रियोंका सुन्दर स्वाद भैया भगवतीदास-द्वारा वर्णित

है। बताया गया है कि एक सुरम्य उद्यानमें एक दिन एक मुनिराज पञ्चेन्द्रिय-संवाद भर्मापदेश दे रहे थे। उनकी भर्मदेशनाका श्रवण करनेके लिए अनेक व्यक्ति एकत्रित थे। समामे नाना प्रकारकी शर्काएँ की जाने लगी। एक व्यक्तिने मुनिराजसे पूछा—
“प्रभो! पञ्चेन्द्रियोंके विषय सुखकर है या दुःखकर।”

मुनिराज—“ये पञ्चेन्द्रियों बड़ी दुष्ट हैं, इनका कितना ही पोषण किया जाता है, दुःख देती हैं।”

एक विद्याधर बीचमें ही इन्द्रियोका पक्ष लेकर बोला—“महाराज इन्द्रियों दुष्ट नहीं है। इनकी बात इन्हींके मुखसे सुनिये, ये प्राणियोंको कितना सुख देती हैं।”

मुनिराज—“इन्द्रियों मेरे सामने प्रस्तुत हैं। मैं आज्ञा देता हूँ कि जो इनमें प्रधान हो, वह अपनी महत्ता बतलाये।”

मुनिराजके इन वचनोंको सुनकर सबसे पहले नाक अपनेको बढ़ा सिद्ध करती हुई बोली—“मेरे समान महान् ससारमें कौन है? नाकके लिए राजा-महाराजा, गरीब-अमीर सभी कष्ट सहन करते हैं। नाक रखनेके लिए ही तो बाहुबलीने दीक्षा धारण की, रामने वन-वन भ्रमण किया, सती सीताने अग्निमें प्रवेग किया, द्रौपदी सोमा आदिने अनेक कष्ट सहन किये और कितने ही साधु वनकर दर-दरके मिखारी बने। मेरी महत्ताका पता इतनेसे ही लगाया जा सकता है कि नाककी रक्षाके लिए कोई भी व्यक्ति अपना सर्वस्व छोड़नेको तैयार हो जाता है।”

नाककी इस आत्मप्रशंसाको सुनकर कान कहता है—“री मूर्ख! तुझे धमण्ड हो गया है, तेरे दर्पको मैं चूर कर दूँगा। तू कितनी घिनावनी है, दिनरात तुझमेंसे पानी गिरता रहता है। छींक किसी भी इष्ट काममें बाधक हो जाती है। तू गन्दगीका भाण्डार है। देख मेरी ओर, मैं कितना भाग्यशाली हूँ। अच्छे-अच्छे मधुर शब्द श्रवण कर कविता रचनेकी प्रेरणा मैं ही देता हूँ। भर्मापदेश सुननेका काम भी

मेरा ही है, यदि मैं उपदेश न सुनूँ तो यह जीव कभी भी मोक्ष प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं कर सकता है। द्वादशांग वाणीका श्रवण मैं ही करता हूँ, मेरी ही प्रेरणाको प्राप्त कर जीव आत्म-कल्याण करनेके लिए तैयार होता है।”

कानकी इन अहम्भन्यतापूर्ण बातोंको सुनकर आँख बोली—“तुझे झूठी बड़ाई करते हुए लज्जा नहीं आई, झूठ बोलना पाप है। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे द्वारा ही अश्लील और गन्दी बातें सुनकर राग-द्वेष उत्पन्न होता है। तुम्हारे द्वारा सुनी गई बातें झूठी भी हो सकती हैं; कितने ही व्यक्ति इन झूठी बातोंके कारण आपसमें कलह करते हैं, लड़ते हैं तथा कितने ही लड़-झगड़कर मृत्युको भी प्राप्त हो जाते हैं। मुझसे बड़े तुम कभी नहीं हो सकते। मेरे द्वारा देखी गयी बात कभी भी झूठी नहीं हो सकती है। सुन्दर और मनोरंजक दृश्योंका अवलोकन मैं ही करती हूँ। मेरे द्वारा ही तुम तीर्थंकरोंके मनोहर रूपको देख सकते हो, मेरे द्वारा ही साधु-सन्तोंके दर्शन हो सकते हैं। यदि मैं न रहूँ तो ससारका काम चलना बन्द हो जाय। शरीरमें सबसे प्रधानता मेरी ही है। सिद्धान्त-ग्रन्थोंका अध्ययन मुझसे देखे बिना कोई कैसे कर सकेगा? रास्ता चलना, देना-लेना, पुण्य कार्य करना मेरी ही कृपाका फल है। मेरे रहनेपर ही भाई-बन्धु इज्जत करते हैं। एक ही क्षणमें मैं क्यासे क्या बना देती हूँ।”

आँखकी इस आत्मश्लाघाको सुनकर रसना बोली—“अरी! तुझे काजलसे रँगकर भी लज्जा नहीं आती। तेरी ही कृपाका यह फल है कि सुन्दरी रमणियाँ अपने अद्भुत सलोने रूप-द्वारा साधु-मुनियोंको भ्रष्ट कर देती हैं। तुझसे अधिक तो मेरा ही प्रभाव है, अतः मैं तुझसे बड़ी हूँ। क्या तू नहीं जानती कि मैं ही पट्टस व्यंजनोका स्वाद लेती हूँ। मेरे बिना शरीर पुष्ट नहीं रहेगा, परिणाम यह होगा कि न कान सुन सकेगा, न आँख देख सकेगी और न नाक सूँघ सकेगी। स्वाद लेनेके अतिरिक्त

मन्त्रसिद्धि और साहित्यके रसका आस्वादन मैं ही करती हूँ । मुझमें इतनी प्रबल शक्ति है कि मैं शत्रुको मित्र बना सकती हूँ । बड़े-बड़े मुनिराज और धर्मोपदेशक मेरे द्वारा ही धर्मका वर्णन करते हैं । स्वर्ग, नरक और मोक्षकी चर्चा मेरे द्वारा ही होती है ।”

बीचमें बात काटकर स्पर्शनेन्द्रिय बोल उठी—“अरी जिहा ! व्यर्थ अभिमान मत कर । तेरी ही कृपासे आपसमें युद्ध होता है, तू ही राजा-महाराजो-द्वारा खून-खराबी कराती है । अभक्ष्य-भक्षण करना भी तेरा ही काम है । मैं अपने सम्बन्धमें अधिक क्या कहूँ—नाक, कान, आँख सभी तो मेरे पाँवों पड़ते हैं, तुम सभी इन्द्रियों मेरी दासी हो । मेरे सामने तुमने व्यर्थमें झूठी बड़ाई कर पाप अर्जन किया है । मेरी महत्ता यही है कि मेरे बिना जप, तप, दान, पुण्य आदि कोई भी कार्य नहीं हो सकता है । हाथोंसे दान दिया जाता है, पाँवोंसे तीर्थयात्रा की जाती है और मेरे ही द्वारा ससारके विपयोका अनुभव किया जाता है । जानती हो मेरे बिना क्रिया नहीं और क्रियाके बिना सुख नहीं, अतः मैं सब इन्द्रियोंमें प्रधान हूँ ।”

इसी बीचमें मन बोल उठा—“अरी मूर्खा, तुम क्या अनाप-सनाप बकती हो । तुम्हारे समान धूर्त कोई भी नहीं है । रमणियोंके प्रेमालिंगन से तुम्हीं जीवको बाँधती हो, तपत्यासे विचलित करना तुम्हारा ही काम है । अतः तुमसे बड़ा और प्रधान मैं हूँ । मेरे शुद्ध रहने पर ही सब कुछ शुद्ध रह सकता है । मैं ही व्या, ममता आदिको करता हूँ, जितने भी विकार हैं, मुझमें ही उत्पन्न होते हैं । इन्द्रियोका संचालन मेरे ही द्वारा होता है । अतः मैं सबका राजा हूँ और इन्द्रियों मेरी दासी हूँ । मेरी प्रेरणाके बिना एक भी इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकती है । जीवके समस्त कार्योंका संचालन मेरे ही हाथमें है ।”

इसी बीच मुनिराज हँसते हुए कहने लगे—“अरे मूर्ख मन, तू क्यों गर्व करता है । जीवके पापोंकी अनुमोदना तुम्हारे ही द्वारा होती है ।

इन्द्रियों स्थिर भी रहती हैं, किन्तु तुम सदा बन्दरके समान चंचल रहते हो। कर्मबन्धनका कारण रे मन, तू ही है। विषयोंकी ओर दौड़ना तेरा सहज स्वभाव है।”

मुनिराजकी इन बातोंको सुनकर नमस्कार करता हुआ मन कहने लगा—“प्रभो ! मैं अपना दोष समझ गया। आप कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि परमात्मा कौन है और सुख किस प्रकार उपलब्ध होता है।”

मुनिराज—“राग-द्वेषके दूर हो जानेपर यह आत्मा ही परमात्मा बन जाती है। परमात्मा दो प्रकारके हैं—सकल और निकल। परमात्माके ये भेद राग-द्वेषके अभावकी तारतम्यताके कारण है। यद्यपि किसी भी परमात्मामे राग-द्वेष बिल्कुल नहीं रहता, परन्तु जर्जरित संस्कार और वासनाएँ इस जीवके साथ लगी रह जाती हैं, जिससे निकल परमात्मा शरीर के बन्धनको छोड़नेके उपरान्त ही यह जीव बन पाता है।”

इस पञ्चेन्द्रिय सवादमे इन्द्रियोंके उत्तर-प्रत्युत्तर बड़े ही सरस और स्वाभाविक हैं। कविने प्रत्येक इन्द्रियका उत्तर इतने प्रभावक ढंगसे दिखाया है, जिससे पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। सर्वप्रथम अपने पक्षको स्थापित करती हुई नाक कहती है—

नाक कहै प्रभु मैं बड़ी, और न बड़ी कहाय।
नाक रहै पत लोकमें, नाक गए पत जाय ॥
प्रथम वदन पर देखिए, नाक नवल आकार।
सुन्दर महा सुहावनी, मोहित लोक अपार ॥
सुख बिलसै संसारका, सो सब मुझ परसाद।
नाना वृक्ष सुगन्धि को, नाक करै आस्वाद ॥

नाकके पक्षको सुनकर कानका उत्तर—

कान कहै री नाक सुन, तू कहा करै गुमान।
जो चाकर आगे चलै, तो नहीं भूप समान ॥

नाक सुरनि पानी झरै, बहे इलेषम अपार ।
गूँधनि करि पूरित रहै, लाजै नहीं गँवार ॥
तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज ।
मूढ़ै तुह दुर्गन्धमें, तक न आवै लाज ॥
वृषभ ऊँ नारी निरख, और जीव जग मॉहिं ।
जित तित तोको छेदिये, तोक लजानो नाहिं ॥

×

×

×

कानन कुण्डल झलकता, मणि मुक्ताफल सार ।
जगमग जगमग है रहै, देखै सब संसार ॥
सातों सुरको गाइबो, अद्भुत सुखमय स्वाद ।
इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद ॥
कानन सरभर को करै, कान बड़े सरदार ।
छहों द्रव्य के गुण सुनै, जानै सबद विचार ॥

यह एक सरस आध्यात्मिक रूपक काव्य है। इसका सृजन कवि भगवतीदासने मानवात्माकी उस चिरन्तन पुकारको लेकर किया है, जो मानव-मनमें अनादि कालसे व्याप्त जड़ीभूत अन्ध मधुबिन्दुक चौपाई तमिस्रा-पुञ्जका विदारण कर चिर-अमर आनन्द-भासके अन्वेषणकी आकाक्षासे व्याप्त है। कविने रूपकात्मक कथानकमें अपने अन्तःप्राणोका स्पन्दन भर कर शाश्वत वास्तविकताका अक्षम स्वरूप कलात्मक रूपसे प्रस्तुत किया है। इसके मर्ममें निहित चिरन्तन सत्य सदा सूर्यकी तरह प्रोज्ज्वल रहेगा, युग या समय-विशेषका प्रकोप आचणके मेघोंके समान इसके उज्ज्वल स्वरूपको क्षणभरके लिए भले ही अन्धकार-मय बना दे, परन्तु इसका दिव्य सन्देश सदा ही मानवताका पाठ पढ़ाता रहेगा। कविने अतीन्द्रिय आनन्दका निरूपण करते हुए नाना मनोद्वेग एवं मायामय दृश्यपटोंका विवेचन बड़े ही हृदय-ग्राह्य ढंगसे किया है।

प्रलोभन इस मानवको मानवतासे किस प्रकार दूर कर देते हैं तथा जीवन-क्षितिज इन प्रलोभनोंसे कितना धूमिल हो जाता है, आदिका सूक्ष्म विश्लेषण इस लघुकाय काव्यमें विद्यमान है। कञ्चन और कामिनीका प्रलोभन ही प्रधान है, इसीके अधीन होकर मानव नाना प्रताडनाओं, वेदनाओं और उद्वेगोंका सन्दोह अपनेमें समेटे अखण्ड ऐश्वर्य-सम्भोगके अप्रतिहत आत्मोल्लासमें रत रहता है। परन्तु इस अपरिमित सुख-भाण्डारमें भी आकाक्षाओंकी अतृप्ति रहनेसे वेदनाजन्य अनुभूति वर्तमान रहती है। कविने अपनी भावुकता और कलात्मकताका आश्रय लेकर इस रूपकमें उपयुक्त तथ्यकी सुन्दर विवेचना की है।

कविने मधुबिन्दुकका रूपक देते हुए बताया है कि एक दिन एक मुनिराज पूछे गये प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए कथा कहने लगे—“एक पुरुष वनमें जाते हुए रास्ता भूलकर इधर-उधर भटकने लगा। जिस अरण्यमें वह पहुँच गया था, वह अरण्य अत्यन्त भयंकर था। उसमें सिंह और मदोन्मत्त गजोंकी गर्जनाएँ सुनाई पड़ रही थी। वह भयाक्रान्त होकर इधर-उधर छिपनेका प्रयास करने लगा, इतनेमें एक पागल हाथी उसे पकड़नेके लिए दौड़ा। हाथीको अपनी ओर आते हुए देखकर वह व्यक्ति भागा। वह जितनी तेजीसे भागता जाता था, हाथी भी उतनी ही तेजीसे उसका पीछा कर रहा था। जब उसने इस प्रकार जान बचते न देखी तो वह एक वृक्षकी शाखासे लटक गया, इस वृक्षकी शाखाके नीचे एक बड़ा अन्धकूप था तथा उसके ऊपर एक मधुमक्खीका छत्ता लगा हुआ था। हाथी भी दौड़ता हुआ उसके पास आया, पर शाखासे लटक जानेके कारण, वह उस पेड़के तनेको सँझसे पकड़कर हिलाने लगा। वृक्षके हिलनेसे मधुछत्तेसे एक-एक बून्द मधु गिरने लगा और वह पुरुष उस मधुका आस्वादन कर अपनेको सुखी समझने लगा।

नीचेके अन्धकूपमें चारो किनारोंपर चार अजगर मुँह फैलाये हुए बैठे थे तथा जिस शाखाको वह पकड़े था, उसे काले और सफेद रङ्गके

घटकी जटा लटकि जो रही । सो आयुर्दा जिनवर कही ॥
 तिहँजर काटत भूसा दोय । दिन भर रैन लखहु तुम सोय ॥
 माँखी चूँदत ताहि शरीर । सो बहु रोगादिक की पीर ॥
 अजगर पखो कूपके बीच । सो निगोद सबतैं गति बीच ॥
 याकी कछु मरजादा नाहिँ । काल अनादि रहै इह माहिँ ॥
 तातैं भिन्न कही इहि ठौर । चहुँगति महितैं भिन्न न और ॥
 चहुँदिश चारहु महाभुजंग । सो गति चार कही सरवंग ॥
 मधुकी बून्द बिपै सुख जान । जिहँ सुख काज रहौ हितमान ॥
 ज्यों नर त्यों विषयाश्रित जीव । इह विधि संकट सहै सदाव ॥
 विद्याधर तहँ सुगुरु समान । दै उपदेश सुनावत ज्ञान ॥

कविने इस रूपक द्वारा विषय-सुख और सारहीनताका सुन्दर विश्लेषण किया है। तथा मिथ्यात्व, अविरति आदिको त्यागकर सम्यक् भ्रष्टाल और सम्यक् ज्ञानी बननेके लिए जोर दिया है।

स्वप्नवत्तीसी, मिथ्यात्वचतुर्दशी आदि और भी कई रचनाएँ आध्यात्मिक रूपक काव्यके अन्तर्गत आती हैं। जैन रूपक काव्यकी परम्परा बहुत दिनोंतक चलती रही।

हिन्दी साहित्यमें जायसीके पञ्चावतके पश्चात् रूपक साहित्यकी घारा सुखी-सी मालूम पड़ती है। यद्यपि नाट्यक्षेत्रमें भारतेन्दुका पाखण्ड-विह-म्बन, प्रसादका कामना नाटक और कवि पन्तका ज्योत्स्ना रूपकके सुन्दर उदाहरण हैं, तो भी इस अंगके विकासकी अभी आवश्यकता है। काव्य साहित्यमें प्रसादकी 'कामायनी' रूपक काव्य है। भारतेन्दुने कलियुगके प्रभावसे जीवनमें सत्तोगुणका अभाव एवं रजोगुण-तमोगुणका प्राधान्य है, इसका चित्रण इस रूपकमें किया है। नाटककारने बताया है कि शान्ति और करुणा दो सखियाँ हैं। शान्ति अपनी प्यारी माँ भ्रष्टाके वियोगमें दुःखी है। करुणा अपनी सखी शान्तिको सान्त्वना देती हुई तीर्थों,

आश्रमों, मठों, देवालयों एवं मुनियोंके आवासोंमें श्रद्धाको हूँदनेको कहती है। शान्ति सर्वत्र श्रद्धाको हूँदती है, पर उसे सर्वत्र पाखण्ड ही दिखलायी पड़ता है। धार्मिक श्रेष्ठताका भाव केवल शब्दोंमें ही है, क्रियात्मक जीवनमें प्रत्येक धर्मावलम्बी धर्मके उदात्तस्वरूपको भूढ़कर इन्द्रिय-सुख-लिप्सामें ही धर्म समझता है। यह नाटक ज्ञानसूर्योदय नाटककी छाया-सा प्रतीत होता है।

कवि प्रसादका कामना नाटक सांस्कृतिक रूपक है। कामना मानव-मनःलोककी रानी है, वह विलासके प्रति आकृष्ट होती है, पर उसके साथ उसका विवाह नहीं होता और अन्तमें सन्तोषके साथ उसका परिणय हो जाता है। विलास कामनाको छोड़ लालसाके साथ परिणय करता है—दोनों एक दूसरेके आकर्षणपर मुग्ध हैं। विलास अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए स्वर्ण और मदिराका प्रचार करता है, पश्चात् शनैः-शनैः सम्य शासनकी दुहाई देकर सभी लोगोपर नियन्त्रण करना आरम्भ कर देता है। जब मानवता त्राहि-त्राहि करने लगती है, तो कामनाको अपनी भूल अवगत हो जाती है और वह सन्तोषको वरण करती है। सब मिलकर विलास और लालसाको उनकी समस्त स्वर्णराशिके साथ समुद्रमें विसर्जित कर देते हैं। वह रूपक सागोपाङ्ग है।

जैन काव्यके रूपक भी साङ्गोपाङ्ग हैं। यद्यपि कथामें मानवीय रोचकता कुछ क्षीण है, सैद्धान्तिक आधार कुछ अधिक स्पष्ट होनेके कारण मानव मनको रमानेमें कुछ असमर्थसे है; पर मानव मनको थकाते या वोझिल नहीं बनाते हैं। कवित्वका उल्लास प्रत्येक काव्यमें विद्यमान है। पात्रोंका चरित्र-विलास, उनका मासल व्यक्तित्व और आकर्षक वार्तालाप इन काव्योंमें प्रायः नहीं है, फिर भी विचारोंका सुन्दर सकलन हुआ है। सूक्ष्म शरीरधारी पात्रोंका अतीन्द्रिय कर्मलोक स्वभावतः मनोरञ्जक होता है। इन काव्योंमें सिद्धान्त और कविता जीवनकी आधार भूमिपर सहज समन्वित है। सुनहली कल्पनाएँ वायवी वातावरणमें कविताकी रग-

विरंगी क्यारियोंमे सिद्धान्तोंकी कुसुमवाटिका आरोपित करती हैं। यह वाटिका केवल इन्द्रियोंको ही तृप्ति नहीं देती, प्रत्युत अतीन्द्रिय जगत्को भी शान्ति प्रदान करती है। जीवनके रागात्मक सम्बन्धोंसे पृथक् हो मानव आध्यात्मिक लोकमे विचरण करने लगता है। जैन कवियोंने स्वर्ग-के अमूर्त सिद्धान्तोंमे और मूर्त कथावस्तुमे समानान्तर चलनेवाली एक साम्य भावना अंकित की है। साम्य प्रायः इतना स्पष्ट और कथाका आवरण इतना झीना है कि सिद्धान्त स्वयं बोलते हुए सुनाई पड़ते हैं।

पञ्चमाध्याय

प्रकीर्णक काव्य

जीवनके सूक्ष्म व्यापक सत्योंका उद्घाटन करना, मानवके प्रकृत राग-द्वेषोंका परिमार्जन करना एवं मानवकी स्वभावगत इच्छाओं, आकांक्षाओं और प्रवृत्ति-निवृत्तियोंका सामञ्जस्य करना ही जैन प्रकीर्णक काव्योंका वर्ण्य विषय है। इन काव्योंमें मानवको जड़तासे चैतन्यकी ओर, शरीरसे आत्माकी ओर, रूपसे भावकी ओर बढ़ना ही व्येय बतलाया गया है। जीवनकी विभूति त्याग और सयम है, यह त्याग भावुकताका प्रसाद न होकर ज्ञानका परिणाम होता है। जबतक जीवनमें राग-द्वेषकी स्थिति बनी रहती है तबतक त्याग और सयमकी प्रवृत्ति आ नहीं सकती। राग और द्वेष ही विभिन्न आश्रय और अवलम्बन पाकर अगणित भावनाओंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। जीवनके व्यवहार-क्षेत्रमें व्यक्तिकी विशिष्टता, समानता एवं हीनताके अनुसार उक्त दोनों भावोंमें मौलिक परिवर्तन होता है। साधु और गुणवान्‌के प्रति राग सम्मान हो जाता है, यही समानके प्रति प्रेम एवं हीनके प्रति कृपा बन जाता है। मानव राग भावके कारण ही अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्ति न होनेपर क्रोध करता है, अपनेको उच्च और बड़ा समझ कर दूसरोंका तिरस्कार करता है, दूसरोंकी धन-सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य देखकर हृदयमें ईर्ष्याभाव उत्पन्न करता है तथा सुन्दर रमणियोंके अवलोकनसे काम-तृष्णा उसके हृदयमें जाग्रत हो जाती है।

जिस प्रकार रोगकी अवस्था और उसके निदानके मालूम हो जानेपर रोगी रोगसे निवृत्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसी प्रकार प्रत्येक

व्यक्ति ससाररूपी रोगका निदान और उसकी अवस्थाको जानकर उससे मुक्त होनेका प्रयास कर सकता है। संसारके दुःखोंका मूल कारण राग-द्वेष है, इन्हे शास्त्रीय परिभाषामें मिथ्यात्व कहा जाता है। आत्माके अस्तित्वमें विश्वास न कर अनात्मरूप—राग-द्वेष रूप भ्रद्धा करनेसे मनुष्य-को स्व-परिवेक नहीं रहता है, जड़-शरीरको आत्मा समझ लेता है तथा स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्यमें रागके कारण लिप्त हो जाता है; इन्हे अपना समझकर इनके सन्नाह और अभावमें हर्ष-विषाद उत्पन्न करता है।

आत्मविश्वासके अभावमें ज्ञान भी मिथ्या रहता है। अतएव कषाय और असंयमसे युक्त आचरण भी मिथ्याचरण कहा जाता है। अनात्म-विषयक प्रवृत्ति होनेसे इस मानवको सर्वदा कष्ट भोगना पड़ता है। इसी कारण सदाचारसे विमुख मानवको आत्मभावमें प्रतिष्ठित करना सत्साहित्यका ध्येय माना गया है। प्रकीर्णक काव्यके रचयिता जैन आचार्यों और कवियोंने मानवका परिष्कार करनेके लिए धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि आदर्शोंकी सरस विवेचना की है। उन्होंने मानवको व्यक्ति के तलसे उठाकर समष्टि के तलपर प्रतिष्ठित किया है। बहिर्जगत के सौन्दर्यकी अपेक्षा अन्तर्जगत के सौन्दर्यका इन्होंने प्रकीर्णक काव्योंमें विशेष निरूपण किया है। यह सौन्दर्य क्षणिक आनन्दको प्रदान करनेवाला नहीं है, अपितु मानव-हृदयकी गूढतम जटिल समस्याओंका प्रत्यक्षीकरण करनेवाला है।

जो कवि मानवके अन्तर्जगत के रहस्यको खोलकर देखता है, उसकी मानसिक पहेलियोंको सुलझाता है, वही श्रेष्ठ कविके सिंहासनपर आरुढ़ होनेका अधिकारी है। यद्यपि कुछ आलोचक काव्यके इस उपयोगितावादी दृष्टिकोणको स्वीकार नहीं करते हैं तथा आचारात्मक वर्णनोंकी प्रधानता होनेसे दूसरे काव्य साहित्यसे पृथक् ही कर देना चाहते हैं; परन्तु वे सम्भवतः इसे भुला देते हैं कि जीवनमें जो प्रमुख इच्छाएँ और कामनाएँ हैं, साहित्यमें वे ही स्थायी भाव हैं। जो साहित्यकार

मानवको अनात्म-भावनाओंसे मोड़कर आत्मभावनाओंकी समचतुरस्र भूमिमें ले जाता है और वहाँ जीवनका यथार्थ परिज्ञान करा देता है, उसे स्थायी साहित्यका निर्माता माननेमें किसीको भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। हाँ, जहाँपर भावोंकी अप्रतिहत धारा न होकर कोरा उपदेश रहता है, वहाँ निश्चय ही काव्य निष्पाण हो जाता है। जैन प्रकीर्णक काव्यके निर्माताओंने अपार भाव-भेदकी निधिको लेकर प्रायः श्रेष्ठ काव्य ही रचे है, जो युग-युगगत सांस्कृतिक चेतना प्रदान करते रहेगे।

काव्यके सत्य, शिवं और सुन्दर इन तीनों अवयवोंमेंसे जैन प्रकीर्णक काव्योंमें शिवत्व-लोकहितकी ओर विशेष ध्यान दिया है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि सत्य और सुन्दरकी अवहेलना की गयी है। इन काव्योंमें सौन्दर्य और सत्यकी स्वाभाविकता इतनी प्रचुरमात्रामे पायी जाती है, जिससे उदात्त भावनाओंका संचार हुए बिना नहीं रहता। तथ्य यह है कि लोकहितकी प्रतिष्ठाके लिए जैन प्रकीर्णक काव्य-रचयिताओंने रचना-चातुर्यके साथ मानसिक शक्तिके निमित्त सद्बुद्धियोंकी आवश्यकता अनिवार्य रूपसे प्रतिपादित की है।

कवि वनारसीदासकी सूक्तिमुक्तावली, ज्ञानपञ्चीसी, अध्यात्मवत्तीसी, कर्मलक्ष्मीसी, मोक्षपैड़ी, शिवपञ्चीसी, ज्ञानवावनी; मैया भगवतीदासकी पुण्यपञ्चीसिका, अक्षरवत्तीसिका, शिक्षावली, गुणमंजरी, अनादिबत्तीसिका, मनवत्तीसी, स्वप्नवत्तीसी, वैराग्यपञ्चीसिका, आश्चर्यचतुर्दशी; काव्य रूपचन्द्रका परमार्थ-शतक दोहा, कवि दानतरायका 'सुबोधपचासिका' धर्मपञ्चीसी, व्यसन त्याग षोडश, सुखवत्तीसी, विवेकनीसी, धर्मरहस्य-वावनी, व्यौहारपञ्चीसी, सज्जनगुणदशक; कवि आनन्दधनकी आनन्द-बहसरी; भूषर कविका जैनशतक, बुधजन कविकी बुधजनसतसई; बालरामका गुरूपदेश श्रावकाचार एवं दौलतराम कविकी छहदावा प्रसिद्ध प्रकीर्णक काव्य हैं। इन सभी कवियोंने आचार और नीतिकी अनेक बातें

सरस रूपमें अकित की है। यहाँ कुछ रचनाओंके सम्बन्धमें प्रकाश डाला जायगा।

संस्कृत भाषामें कवि सोमप्रभने सूक्ति-मुक्तावलीकी रचना की है। कविवर बनारसीदासने इसका इतना सरल और सरस अनुवाद किया है कि अनुवाद होनेपर भी इस रचनामें मौलिकताका आनन्द सूक्ति-मुक्तावली आता है। कविने जीवनोपयोगी, आत्मोत्थानकारी बातें अद्भुत ढंगसे उपस्थित की हैं। मूर्ख मनुष्य इस मानव जीवनको किस प्रकार व्यर्थ खोता है, इसका निरूपण करता हुआ कवि कहता है कि जैसे विवेकहीन मूर्ख व्यक्ति हाथीको सजाकर उसपर ईंधन देता है, सोनेके पात्रमें धूल भरता है, अमृतसे पैर धोता है, कौएको उड़ानेके लिए रत्न फेंककर रोता है, उसी प्रकार वह इस दुर्लभ मानव शरीरको पाकर आत्मोद्धारके बिना योही खो देता है। कविका निरूपण जितना प्रभावोत्पादक है, उतना ही भर्मेस्पर्शी भी है। कवि कहता है—

ज्यों मति हीन विवेक बिना नर, साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै ।
कंचन भाजन धूल भरै शठ, मूढ सुधारस सों पग धोवै ॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार उदधि मणि मूरख रोवै ।
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै ॥

लक्ष्मी कितनी चंचल होती है और यह कितने तरहकी विलास-लीलाएँ करती है, इसका चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि वह सरिताके जल-प्रवाहके समान नीचकी ओर ढलती है, निद्राके समान बेहोशी बढ़ाती है, विजलीकी तरह चंचल है तथा धुँएके समान मनुष्यको अन्धा बनाती है। यह तृष्णा अग्निको उसी तरह बढ़ाती है जैसे मदिरा मत्तताको। वेश्या जिस तरह कुरूप-सुरूप, शूद्र-ब्राह्मण, ऊँच-नीच, विद्वान्-मूर्ख, आदिसे दिखावटी स्नेह करती है, उसी प्रकार यह भी समीसे कृत्रिम प्रेम करती है। वेश्याके समान ही विश्वघातिनी और नाना दुर्गुणोंकी खान है। कवि इसी आशयको स्पष्ट करता हुआ कहता है—

नीच की ओर ढरै सरिता जिमि, धूम बढ़ावत नौदकी नाई ।
चंचला हूँ प्रगटै चपला जिमि, अन्ध करै जिम धूमकी झाँई ॥
तेज करै तिसना दध ज्यो मद, ज्यो मद पोपित मूढके ताई ।
ये करतुत करै कमला जग, डोलत ज्यो कुलटा बिन साई ॥

समस्त दोषोको उत्पन्न करनेवाला अहकार विकार है। इस 'अह' प्रवृत्तिके आधीन होकर मनुष्य दूसरोंकी अवहेलना करता है। अपनेको बड़ा और अन्यको तुच्छ या लघु समझता है। अतएव समस्त दोष इस एक ही दुष्प्रवृत्तिमें निवास करते हैं। कवि कहता है कि इस अभिमानसे ही विपत्तिकी सरिता कल-कल ध्वनि करती हुई चारो ओर प्रवाहित हो रही है। इस नदीकी धारा इतनी प्रखर है, जिससे यह एक भी गुणग्रामको अपने पूरमे बहाये बिना नहीं छोड़ती। अतएव यह 'अहभाव' एक विशाल पर्वतके तुल्य है, कुबुद्धि और माया इसकी गुफाएँ हैं, हिंसक बुद्धि धूमरेखाके समान और क्रोध दावानलके समान है। कवि कहता है—

जातैं निकस विपत्ति सरिता सब, जगमें फैल रही चहुँ ओर ।
जाके ढिग गुणग्राम नाम नहिं; माया कुमतिगुफा अति घोर ॥
जहँ वधबुद्धि धूमरेखा सम; उदित कोप दावानल जोर ।
सो अभिमान पहार पढंतर, तजत ताहि सर्वज्ञ किशोर ॥

इस काव्यमे जीवनोपयोगी अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एव सयमकी विवेचनाके साथ क्रोध, मोह, लोभ, अभिमान, काम, ईर्ष्या, घृणा आदि विकारोंकी आलोचना की गयी है। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियोसे रचना उपादेय है।

मानवके शान्त गम्भीर हृदयको अज्ञान सर्वदा वेदनामय बनाता रहा है। ज्ञानका जो अश शिवत्वका उद्घाटन करता है, उसके तिरोहित ज्ञानबावनी या आच्छादित हो जानेसे मानवका मानवत्व ही छुट हो जाता है। कविने इस रचनामें ज्ञानकी महिमा का मनोहर वर्णन किया है तथा कवि मानव-हृदयके अन्तरतमको टटो-

रता हुआ प्रभावोत्पादक शैलीमें मर्मोद्गार व्यक्त करता हुआ पाखण्डियों-को फटकारता है कि रे मूर्ख प्राणी ! तू क्यों दीन पशुओंका वध करता है । हृदयमें ज्ञान-ज्योतिके जागृत हुए बिना तुम यज्ञ करनेके अधिकारी नहीं । सच्चा यज्ञ वही व्यक्ति कर सकता है जो आत्मज्ञानके दीपकको प्रज्वलित कर सकेगा । जो व्यक्ति नाना तीर्थों और अनेक सरिताओंमें अवोधपूर्वक स्नान करता है, उसका वह स्नान व्यर्थ है । निर्मल आत्म-जलमें स्नान किये बिना तीर्थस्नान कोरा आढम्बर है । सच्चा आत्मबोध ही शान्ति दे सकता है, इसीसे आत्मदर्शन सम्भव है । ज्ञानी व्यक्ति विपत्ति और सकटके समय अचल, अडिग और स्थिर रहता है । संसारका कोई भी प्रलोभन उसे अपने कर्त्तव्य-मार्गसे च्युत नहीं कर सकता है । सुख-दुःख तो संसारमें पुण्य-पापके उदयसे अहर्निश आते रहते हैं । विचारों और भावनाओंमें सन्तुलन उत्पन्न करना तथा अन्तर्ममें ज्ञानदीपको प्रकाशित कर अनात्म-भावनाओंके तिमिरको विच्छिन्न करना प्रत्येक विचारवान् व्यक्तिका कर्त्तव्य है । कवि बनारसीदास इसी भावनाको व्यक्त करते हुए कहते हैं—

कौन काल सुगंध करत वध दीन पशु,
जागी न अगम ज्योति कैसो यज्ञ करिहै ।
कौन काज सरिता समुद्र सर जल डोहै,
आतम अमल डोहो अजडूँ न डरिहै ॥
काहे परिणाम संक्लेश रूप करै जीव,
पुण्य पाप भेद किए कहूँ न उधरिहै ।
'बनारसीदास' निज उक्त अमृत रस,
सोई ज्ञान सुनै तू अनन्त भव तरिहै ॥

आत्मज्ञानीकी अवस्था, कार्य-पद्धति एवं जीवनकी गतिविधिका निरूपण करते हुए कवि कहता है कि जिस व्यक्तिको सच्चा आत्मबोध प्राप्त

हो गया है, वह अपनी सीमाका उल्लंघन नहीं करता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें सरिताओंमें वाढ आ जाती है और उसमें तृण, काष्ठ आदि वस्तुएँ वह जाती है, किन्तु चित्राबेल इस वाढमें वह जानेपर भी सड़ती-गलती नहीं है और न वह गली-गली मारी-मारी फिरती ही है, इसी प्रकार पौँचों इन्द्रियोंके प्रपञ्चमें पडकर भी आत्मज्ञानी विलाससे पृथक् रहता है, इन्द्रियों उसे आसक्त नहीं कर पाती है। लोभ, मोह आदि विकारोंसे यह अपनी रक्षा कर लेता है—

ऋतु वरसात नदी नाले सर जोर चढ़े,
वाढ़ै नाहिं मरजाद सागरके फैल की।
नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द वहे जात,
चित्राबेल आह चढ़ै नाही कहूँ गैल की ॥
'वनारसीदास' ऐसे पंचनके परपंच,
रंचक न संक आवै वीर बुद्धि छैल की।
कुछ न अनीत न क्यों ग्रीति पर गुण सेती,
ऐसी रीति विपरीति अध्यात्म शैल की ॥

इस रचनामें कुल ५२ पद्य हैं, सभी आत्मबोध जागृत करनेमें सहायक हैं।

भैया भगवतीदासको जीवनकी नञ्वरता और अपूर्णताकी गम्भीर अनुभूति है। इसी कारण विश्व और विश्वके द्वन्द्वोंका चिन्तन, मनन और विश्लेषण इनकी कवितामें विद्यमान है। अनित्यपञ्चीसिका काल्पनिक और वास्तविक जीवनकी गहन व्याख्या करते हुए आत्मतत्त्वका विवेचन किया है। कविने इस प्रस्तुत रचनामें अपने आभ्यन्तरिक सत्यको देखने और दिखलानेका प्रयास किया है। कविका अनुभूतिका स्रोत आत्मदर्शनसे प्रवाहित है। वह जीवनकी समस्त समस्याओंका एकमात्र समाधान साधना या सयमको बतलाता है। जब-

तब विष्वक्के पदार्थोंमें आसक्ति रहेगी, समयकी भावना उत्पन्न नहीं हो सकती । इसी कारण कल्याणकर जगत्के वास्तविक क्षणभंगुर रूपको व्यक्त करता हुआ संसारकी स्वार्थ-भरता, उसके रागात्मक चिन्तने सम्बन्ध, एवं अन्तर्जगत्की विभिन्न अवास्तविकताओंका प्रत्यक्षीकरण करता है, क्षणभंगुर शरीरसे अमर आत्माकी ओर अग्रसर होना है तथा मूर्त जीवनमें अमूर्तका एवं स्थूल रूपमें सूक्ष्म रूपका सामीप्य लाभ करनेको उत्सुक है । अनित्य-पञ्चासिकांमं याज्ञचित्रणमं इतनी प्रगल्भता नहीं दिखलाई गयी है, जितनी अन्तर्जगत्के चित्रणमें । विष्वक्के अतिरजित चित्र कविको मोहित नहीं कर सके हैं, अतः वह संसारकी अस्थिरता, अनित्यता एवं नित्यारताका विवेचन करता है । कविकी यह विशेषता है कि उसने निराशाकी भावना कहीं भी व्यक्त नहीं होने दी है । जीवनमें आशा, स्मृति, प्रेम, सन्तोष, विवेक आदि गुणोंको उतारनेके लिए खोर दिया है ।

कवि कहता है कि इस दुर्लभ मानव शरीरको प्राप्तकर यदि हमने अपने अन्तर्मुका आलोडन नहीं किया, अपने रहन-सहन, खान-पानकी शुद्धिपर जोर नहीं दिया, क्रोध-मान-माग-लोभ जैसे विकारोंको अपने हृदयसे निकाल बाहर नहीं किया एवं इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त हो नाना प्रकारके कुकृत्य करना नहीं छोड़ा तो फिर इस शरीरका प्राप्त करना निरर्थक है । जीवनमें अपरिमित आनन्द है, अनन्त सुख है, किन्तु इसकी प्राप्ति सब्बे आत्म-बोधके बिना नहीं हो सकती है । हमारे जितने भी रागात्मक सम्बन्ध हैं, वे सब स्वार्थपर आश्रित हैं । हम इन रागात्मक सम्बन्धोंसे ऊपर उठनेपर ही वास्तविक सुख पा सकते हैं । मानव जीवन वास्तविक आत्मदर्शन करनेके लिए मिला है, अतएव इसका सदुपयोग करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है । इस मौक्तिक जगत्में दुःखका मूल कारण अनात्म-भाव ही है । कवि कहता है—

नर देह पाये कहा, पंडित कहाये कहा,
तीरथके न्हाये कहा तब तो न जैहै रे ।

छिड़के कनाये कहा, अचटके अघाये कहा,
छत्रके धराये कहा छीनता न छेड़े रे ॥
देशके झुँगाये कहा, भेषके बनाये कहा,
जोषनके भाये कहा, जराहू न खँदें रे।
भ्रमकों विलास कहा, दुर्जनमें धाम कहा,
धातम प्रकाश दिन पीछें पठितें रे।

इन रचनाओं शुल् २६ पत्रों, कविने इनमें भविष्यके उज्ज्वल प्रकाश-
को अंकित करनेके साथ अतीत और वर्तमानका समन्वय भी करनेका
आशय किया है।

कवि धानतरायने १२१ पद्योंमें यह मनभावना रचना लिखी है।
कविने आत्मगीन्दर्पका अनुभव कर उसे गगारके मामने इन दगसे रखा
उपदेशगतक है, जिसमें बान्तविक आन्तरिक सौन्दर्यका परिज्ञान
सहजमें हो जाता है। यह कृति मानव-हृदयको स्वार्थ
गम्यन्धोकी सर्वाङ्गतामें ऊपर उठाकर लोक-कल्याणकी भावभूमिपर ले
जाती है, जिसमें मनोविचारोंका परिष्कार हो जाता है। अनेक विकारोंका
विश्लेषण करनेके आग्य कविकी बहुदर्शिता प्रकट होती है। मानव-हृदयके
रहस्योंमें प्रवेश करनेकी अनुलक्षता विद्यमान है। आरम्भमें इष्टदेवको
नमस्कार करनेके उपरान्त भक्ति और लुप्तिकी आवश्यकता, मिथ्यात्व और
सम्यक्तत्वकी महिमा, गृहबाराका दुःख, इन्द्रियोंकी दासता, नरक-निगोदके
दुःख, पुण्य-पापकी महत्ता, धर्मका महत्त्व, जानी-अजानीका चिन्तन,
आत्मानुभूतिकी विशेषता, शुद्ध आत्मस्वरूप, नवतत्त्वस्वरूप, आदिका
मर्म विवेचन विद्यमान है। कविने भवसागरसे पार उतरनेका कितना
सुन्दर उपाय बतलाया है—

मोचत जात सब दिनरात, कछु न बसात कहा करिये जी।

सोच नियार निजातम धारहु, राग विरोध सबै हरिये जी ॥

यौं कहिये जु कहा लहिये, सु वडै कहिये करना धरिये जी ।
पावत मोख मिटावत दोष, सु यौं भवसागरकौ तरिये जी ॥

ससारमे सुख और शान्ति समताके द्वारा ही स्थापित हो सकती है । जबतक तृष्णा और लालसा लगी रहती है, तबतक शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती । शाश्वतिक शान्ति सन्तोषके बिना नहीं मिल सकती है । जबतक हमारी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी रहती है, तबतक आध्यात्मिक प्रभातका उदय नहीं हो सकता । इस आध्यात्मिक समरसताके विवेचनमे कवि प्रत्यक्ष जीवनमे निराग दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु आशाकी नवीन राशियों उसके मानस क्षितिजपर उदय हो रही है । कवि चरम सत्यमें विश्वास करता हुआ कह उठता है—

काहै कौं सोच करै मन मूरख, सोच करै कछु हाथ न ऐहै ।
पूरब कर्म सुमासुभ संचित, सो निहचै अपनो रस दैहै ॥
ताहि निवारनको बलवन्त, तिहूँ जगमाहि न कोड लसैहै ।
तातैं हि सोच तजौ समता गहि, ज्यौ सुख होइ जिनंद कहैहै ॥

समदृष्टि अपने आत्मरूपका अनुभव करता है, उसे अपने अन्तस्की यह छवि सुग्ध और अतुलनीय प्रतीत होती है । उसकी यह प्रेयसी अत्यन्त ज्योतिर्मय है, इसके भ्रूसकैतमात्रसे पकज खिलते हैं, तृण-तरुपात सिहर उठते हैं, हरित दूर्वादल लहराने लगते हैं और नवीन उमगे, नयी भाव-नाएँ उत्पन्न हो आनन्द-विमोर कर देती हैं । कवि इस अनुपम सुन्दरीकी कल्पनासे ही सिहर जाता है और कह उठता है—

केवलग्यानमई परमात्म, सिद्धसरूप लसै सिव ठाहीं ।
व्यापकरूप अखंड प्रदेश, लसै जगमैं जगसौ बह नाहीं ॥
चेतन अंक लियै चितमूरति, ध्यान धरौ तिसकौ निजमाहीं ।
राग विरोध विरोध सदा, निम होइ वही तजिकै विधि छाहीं ॥

इस रचनामें कवि दानतरायने दानका महत्त्व, आदर्श, उपयोगिता एवं सहकारिताकी भावनाका अंकन किया है। कविने कोमल, कमनीय कल्पनाओंका सृजनकर जीवनकी विषमताओंका दानबावनी समाधान करनेका आयास नहीं किया है, प्रत्युत जीवनकी ठोस भावभूमिमें उतरकर प्रकृत राग-द्वेषोंके परिमार्जनका विधान बताया है। अनन्त आकाशमें दान, त्याग, सन्तोषके अभावमें वृद्धिगत होती हुई जीवनको दुःखमय बना देती है। कविने अपने अन्तस्मै इस बातका अनुभव किया कि यह मानव जीवन बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुआ है, इसे प्राप्तकर यों ही व्यतीत करना मूर्खता है, अतः 'सर्वजनहिताय'की प्रेरणासे प्रेरित होकर कवि यह कहता है—

मौन कहा जहाँ साध न आवत, पावन सो भुवि तीरथ होई ।
पाय प्रछालकैं काय लगायकैं, देहकी सर्व विया नहिं खोई ॥
दान कस्यो नहिं पेट भख्यौ बहु, साधकी आवन वार न जोई ।
मानुष जोनिकौ पायकैं मूरख, कामकी बात करो नहिं कोई ॥

मानवकी तृष्णा प्रज्वलित अग्निमें डाले गये ईंधनकी तरह वैभव-विभूतिके प्राप्त होनेपर उत्तरोत्तर वृद्धिगत ही होती जाती है। जिन बाह्य-पदार्थोंमें मानव सुख समझता है और जिनके पृथक् हो जानेसे इसे दुःख होता है, वास्तवमें वे सब पदार्थ विनाशीक हैं। लोभ और तृष्णा मानव-को अशान्ति प्रदान करती हैं, इन्हीं विकारोंके आधीन होकर मानव आत्म-सुखसे वंचित रहता है। सूम व्यक्ति उपर्युक्त विकारोंके आधीन होकर ही सम्पत्तिका न स्वयं उपभोग करता है और न अपने परिवारको ही उपभोग करने देता है। कविने ऐसे व्यक्तिकी कौएसे तुलना करते हुए इस पामरको कौएसे भी नीच बतलाया है। कवि कहता है—

सूमकौ जीवन है जगमें कहा, आप न खाय खवाय न जानैं ।
दर्वके धंधन माहिं धँख्यो दड़, दानकी बात सुनै नहिं कानैं ॥

तार्ते बढौ गुन कागमै देखियै, जात बुलायकै भोजन ठानै ।
लोभ बुरौ सब औगुनमैं इक, ताहि तजै तिसको हम मानै ॥

दान देनेकी सार्थकताका निरूपण करता हुआ कवि कितने गर्मस्पर्शी ढंगसे कहता है—

दीनकौं दीजिये होय दया मन, भीतकौं दीजिये प्रीति बढावै ।
सेवक दीजिये काम करै बहु, साहब दीजिये आदर पावै ॥
शत्रुको दीजिये वैर रहै नहिं, भाटकौं दीजिये कीरति गावै ।
साधकौं दीजियै मोखके कारन, 'हाथ दियौ न अकारथ जावै' ॥

इसमे कविने अपनी वैयक्तिक आत्मानुभूतिको जागृत करते हुए इस मानव जीवनको सुखी बनानेवाली अनेक बातोंका निरूपण किया है ।

ज्ञानेन्द्रियोंके माध्यमसे मन जिन भावनाओं, सबेद-
नाओंको ग्रहण करता है, उनका किसी न किसी

प्रकारका चित्र हृदयपटलपर अवश्य अंकित हो जाता है । वातावरण, परिस्थिति, सस्कार आदिकी विभिन्नताके कारण कविके हृदयपटलपर अनेक वस्तुओंके विविध चित्र उतरे हैं; अतः उसने अपने अन्तस्मे जगत्का अनुभव जिस रूपमें किया है, उसे व्यावहारिक रूप देकर व्यञ्जित करनेका उपक्रम किया है । बाह्यजगत्मे तभी सुख-शान्ति स्थापित हो सकती है, जब मानवका हृदय स्वच्छ हो जाय । व्यक्तित्वके परिष्कारके लिए सयम, त्याग और अहिंसातत्त्वका अपनाना प्रत्येक व्यक्तिके लिए आवश्यक है । जो व्यक्ति इष्ट-विद्योग और अनिष्ट-सयोगमें धबड़ा जाता है, जीवनमें निराश हो जाता है; कविने उसके मनमें सन्ध्या समय सरिताके उस पार सुदूर आकाशके कोनेमें उठे किसी नवीन बादलमें विद्युत्की रेखाओंके समान उज्ज्वल आशाका संचार करते हुए कहा है—

पीतम मरेकौ सौच करै कहा जीव पोच,
तजे तै अनन्त भव सो कछु सुरत है ।

एक भावै एक जाय ममतासौ बिलखाइ,
 रोज मरे देखै सुनै नैक ना झुरत है ॥
 पूत सौं अधिक प्रीत वह ठानै विपरीत,
 यह तौ महा अनैत जोग क्यों झुरत है ।
 मरनौ है सुझै नाहिं मोहकी महलमाहिं,
 काल है अर्बया स्वास नाँवति झुरत है ॥

ज्ञानी व्यक्ति जब ज्ञानकी दिशामें बढ़ने लगता है, तो सत्सारिक आकर्षणके प्रतिकूल झोंके उचे अपने पथसे विचलित नहीं कर सकते । उसके हृदयमें मानव जातिका प्रेम इतना प्रबल हो जाता है, जिससे वह किसी भी व्यक्तिको दुःखी नहीं देखना चाहता है । रम्य इन्द्र-धनुषके समान ऐन्द्रियिक आकांक्षाएँ, वासनाएँ स्वार्थके स्तरसे ऊपर उठा देती हैं, जिससे सर्वप्रकारकी शान्ति उपलब्ध होती है । जिन पदार्थोंके प्रलोभनके कारण राग-वृद्धि उत्पन्न होती है, मनकी भूमिकी सुमन-जैसी कोमल भावनाएँ स्वार्थसे पंकिल होती रहती हैं; कविने उन्हीं पदार्थोंसे उत्पन्न भावनाओंका रसमयी भावतरंगोंके फुहारोंसे सिचन करते हुए मधुर कामनाओंके साक्षात्कारका आयास किया है । सहृदय कवि लालसाको लहरोंसे युक्त रसकी नदीके किनारे विचरण करते हुए अनुभव कर कह उठता है—

देस देस धाए गढ़ बाँके भूपती रिझाये,
 यलहू खुदाए गिरि ताए पाए ना सख्यो ।
 सागरकौ तीर धाए मंत्रहू नसान ध्याए,
 पर घर भोजन ससंक काक ज्यों रह्यौ ॥
 बड़े नाम बड़े ठाम कुल अभिराम धाम,
 तजिकै पराये काम करे कान ना सख्यो ।
 तिसना तिगोहीनै न छोड़ी बात मौँही कोऊ,
 मति हू कनौड़ी कर कौड़ी धन ना सख्यो ॥

कविने इस व्यौहारपच्चीसीमें जीवनको परिकृत करनेके साथ गर्व, ईर्ष्या, प्रमाद, क्रोध आदि विकारोंको दूर करनेके लिए जोर दिया है। कवि कहता है कि समष्टि और व्यक्ति के हितके लिए क्रोध, मान, माया और लोभ कपायोंका त्याग करना आवश्यक है। क्रोध प्रीतिका नाश करता है, मान विनयका, माया मित्रताका और लोभ सभी सदगुणोंका नाश करता है। अतएव शान्तिसे क्रोधको, नम्रतासे अभिमानको, सरलतासे मायाको और सन्तोषसे लोभको जीतना चाहिये। मानवकी मानवता यही है कि वह अपने हृदय और मनका परिष्कारकर समाजको सब प्रकारसे सुखी रखे। जो व्यक्ति अपने ही स्वार्थोंमें रत रहता है, समाजका खयाल नहीं करता है; वह पशुसे भी नीच है। कविने इस बातको अनेक दृष्टान्तों, प्रतिदृष्टान्तों-द्वारा स्पष्ट किया है। नैतिक विधानका निरूपण करते हुए कविने उपदेशकका पद नहीं ग्रहण किया है। कविता सरस है, आचार और लोकहितका नित्यप्रण करनेपर भी सौन्दर्यकी कमी नहीं आने पायी है।

कवि दानतरायकी यह सुन्दर सरस रचना है। कविने इसमें मानव जीवनको सुखी और सम्पन्न बनानेके लिए अनेक विधि-निषेधात्मक नियमोंका प्रतिपादन किया है। कवि कहता है कि पूरण पंचासिका यदि क्रोध करनेकी आदत पड़ गयी है तो कर्मोंके ऊपर क्रोध करना चाहिये। कर्मोंके आवरणके कारण ही यह सच्चिदानन्द आत्मा नाना प्रकारके कष्टोंको सहन कर रही है, अतः इस आत्माको स्वतन्त्र करनेके लिए कर्मोंपर क्रोध करना परम आवश्यक है। मान करना यद्यपि हानिप्रद है, परन्तु आत्मिक गुणोंका मान करना श्रेष्ठ होता है। जब व्यक्तिको यह अनुभूति हो जाती है कि हमारी अपनी सम्पत्ति अपने पास है, यह ज्ञान, आनन्द रूप सम्पत्ति भौतिक सम्पत्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठतम है, उस समय आत्मामे हर्ष और गौरवकी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं तथा आत्मविकासकी प्रेरणा मिलती है। इसी प्रकार माया

ससारके पदार्थोंमें लिप्त कराती है, परन्तु दूसरेके दुःखको देखकर द्रवीभूत हो जाना और ममतावश उसके कष्ट-निवारणके लिए तत्पर हो जाना जीवनकी श्रेष्ठ प्रवृत्ति है। अन्यके संकटको दूर करनेवाली ममता जीवनमें सुख उत्पन्न करती है, अतएव ग्राह्य है।

लोभवश किसी वस्तुको लेनेकी प्रवृत्ति करना तथा धन एकत्रित करनेके लिए समाजका शोषण करना, जघन्य प्रवृत्ति है। यद्यपि लोभके प्रत्यक्ष दोषोंसे प्रत्येक व्यक्ति परिचित है, किन्तु यह नैसर्गिक प्रवृत्ति अनेक प्रयत्न करनेपर भी नहीं छूटती है। अतएव कवि कहता है कि तप करनेका लोभ उपादेय है, इस प्रवृत्तिसे जीवका सच्चा विकास होता है, और समष्टि एवं व्यष्टि दोनोंके हितके लिए इस प्रकारका लोभ ग्राह्य होता है। जब हम आत्म-शोधनके लिए लालायित रहते हैं, उस समय हमारे द्वारा लोकका मंगल तो होता ही है, साथ ही हम अपना भी मंगल कर लेते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि अन्य व्यक्तियोंके साथ कलह एवं संघर्ष करनेकी प्रवृत्ति हमसे निसर्गत रहती है। लाख प्रयत्न करनेपर विरले व्यक्ति ही इस प्रवृत्तिको परिष्कार कर पाते हैं। कवि इस प्रवृत्तिके परिष्कारका उपाय बतलाता हुआ कहता है कि कपायो—क्रोध, मान, माया और लोभके साथ द्वन्द्व करना उपादेय है। मानव कमजोरियोंका दास है, अपनी मूल्य और प्रवृत्तियोंको वह सहसा रोकनेमें असमर्थ है; अतएव वह कषायोंके साथ द्वन्द्व, संघर्ष और कलह करता हुआ अपने जीवनको आनन्दमय बना सकता है। यह निश्चय है कि विकारोंको शनैः-शनैः सुप्रवृत्तियोंके अभ्याससे ही रोका जा सकता है। इसी बातको कवि स्पष्ट करता है—

क्रोध सुई जु करै करमौ पर, मान सुई विढ़ मान बढ़ावै ।
माया सुई परकट निवारत, लोभ सुई तपसौ तन तावै ॥

राग सुईं गुरु देवपै कीजियै, दोष सुईं न विपै सुख भावै ।
 मोह सुईं जु लखै सव आपसे, ध्यानत सज्जनको कहिलावै ॥
 पीर सुईं पर पीर बिडारत, धीर सुईं जु कपायसौं जूझै ।
 नीति सुईं जो अनोति निवारत, मीत सुईं अवसौं न अरुहै ॥
 औगुन सो गुन दोष बिचारत, जो गुन सो समतारस वृझै ।
 मंजन सो जु करै मन मंजन, अंजन सो जु निरंजन सूझै ॥

कविने दस प्रकार जीवनमें सत्य, शिव और सुन्दरको उतारनेका उपाय बतलाया है । निम्न पद्यमें बुद्धि और दयाके वार्तालापका कितना सुन्दर सवाद अंकित किया गया है । बुद्धि दयासे अनुरोध करती है कि मखि, मैं तेरा अत्यन्त उपकार मानूँगी, तू मेरा एक काम कर दे । यह चैतन्य मानव कुबुद्धि रूपी नायिकाके प्रेम-पाशमें बँध गया है, यद्यपि मैंने इससे विरत करनेके लिए इस मानवको बहुत समझाया है, पर मेरी एक भी बात नहीं सुनता । अतः तू इस मानवको समझा, जिससे यह मोहके बन्धनको तोड़ अपने वास्तविक रूपको समझ सके । री सखी दया ! तू जानती है कि सौतका अभिमान किस प्रकार सहन किया जा सकता है ? पति यदि अन्य रमणीसे स्नेह करने लगे, तो इससे बड़ा और क्या कष्ट हो सकता है !

बुद्धि कहै बहुकाल गये दुःख, भूर भगे कबहुँ न जगा है ।
 मेरी कहाँ नहिँ मानत रंचक, मोसौं विगार कुमार सगा है ॥
 ये हुरी सीख दया तुम जा विधि, मोहकौ तोरि दै जेम तगा है ।
 गावहुँगी तुमराँ जस मैं, बल री जिस पै निज पेम पगा है ॥

मानव-जीवनमें विरक्ति प्राप्त करना सबसे अधिक कठिन कार्य माना गया है । कवि भृधरदासने अपने इस शतकमें वैराग्य-भावना जाग्रत

भृधरशतक करनेका विधान बतलाया है । कवि वैराग्यको जीवन-विकासके लिए परम आवश्यक मानता है, उसका अभिमत है कि विश्वकी अव्यवस्था, कलह और प्रतिद्वन्दिताका मूलोच्छेदन

इसी भावनाके द्वारा हो सकता है। यद्यपि कहनेका ढग सिद्धान्त निरूपण जैसा ही है, परन्तु मंजुल भावनाओकी अभिव्यक्ति कविने सरस और हृदयग्राहक ढगसे की है। विषय-प्रतिपादनमें 'दैत्य' या पलायन वृत्तिका अनुसरण नहीं है, प्रत्युत तथ्य-विवेचन है।

भूधरशतकके कवित्त, सवैये, छप्पय बड़े ही सरस, प्रवाहपूर्ण, लोकोक्ति समाविष्ट एवं जोरदार हुए हैं। वृद्धावस्था, ससारकी असारता, काल-सामर्थ्य, स्वार्थ-परता, दिगम्बर मुनियोकी तपस्या, आशा-तृष्णाकी नग्नता आदि विषयोंका निरूपण कविने बड़े ही अद्भुत ढगसे किया है। विषय-प्रतिपादनकी गैत्री बड़ी ही स्पष्ट है। भावोंको विशद करनेमें कवि-को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। जिस बातका कवि निरूपण करना चाहता है, उसे स्पष्ट और निर्भय होकर प्रस्तुत करता है। नीरस और गूढ़ विषयोंका निरूपण भी सरस और प्रभावोत्पादक ढगसे किया गया है। कल्पना, भावना और विचारोंका समन्वय सन्तुलित रूपमें हुआ है। आत्मसौन्दर्यका दर्शन कर कवि कहता है कि ससारके भोगोंमें लिप्त प्राणी अहर्निच विचार करता रहता है कि जिस प्रकार भी समय हो, उस प्रकार मैं धन एकत्रित कर आनन्द भोगूँ। मानव नानाप्रकारके सुनहले स्वप्न देखता है और विचारता है कि धन प्राप्त हो जानेपर अमुक कार्यको पूरा करूँगा। एक सुन्दर भव्य प्रासाद बनवाऊँगा, सुन्दर रह, मणियों और मोतियोंके आभूषण बनवाऊँगा, अपनी ग्रहता और गौरवके प्रदर्शन-के लिए धन खर्चकर बड़ेसे बड़ा कार्य करूँगा। अपने पुत्र-पौत्रादिका ठाट-बाटके साथ विवाह करूँगा। इस विवाहमें सोने-चाँदीके वर्तनोका वितरण करूँगा, जगत्में अपनी कीर्त्तिगाथा सर्वदा स्थिर रखनेका उपाय भी करूँगा। जहाँ अवकाश वार धन हाथमें आया कि मैंने अपने यशको अमर करनेका उपाय किया। मानव इस प्रकारकी उधेड़-झुनमें सर्वदा लगा रहता है, उसका मनोराज्य निरन्तर वृद्धिगत होता चला जाता है और एक दिन मृत्यु आकर उसके विचारोंकी बीचमें ही हत्या कर देती है,

परिणाम यह निकलता है कि वह शतरंजके खिलाड़ीके समान अपनी बाजीको वही छोड़ चला जाता है। सारे मनस्वे मन-के-मनमे ही समा जाते हैं। यह विचारधारा किसी एक व्यक्तिकी नहीं है, प्रत्युत मानव-मात्रकी है, हर व्यक्तिकी यही अवस्था होती है। कवि इस सत्यका उद्घाटन करता हुआ कहता है—

चाहत है धन होय किसी विघ्न, तो सब काज सरे नियरा जी ।
गेह चिनाय करूँ गहना कल्लु, व्याहि सुता सुत बाँटिय भाँली ॥
चिन्तित थों दिन जाहिं चले, जम आनि अचानक देत दगाजी ।
खेलत खेल खिलायि गये, रहि जाइ रूपी शतरंजकी बाजी ॥

इस संसारमें मनुष्य आत्मज्ञानसे विमुख होकर शरीरकी ही सेवा करता है। इस शरीरको स्वच्छ करनेमें अनेक साधुनकी वट्टियाँ रगड़ डालता है तथा सुगन्धित तेलकी शीशियाँ खाली कर डालता है। पैशनके अनेक पदार्थोंका उपयोग शारीरिक सौन्दर्य-प्रसाधनमें करता है, प्रतिदिन रगड़-रगड़कर शरीरको साफ करता है, इत्र और सेन्टोंका आस्वादन करता है तथा प्रत्येक इन्द्रियकी तृप्तिके लिए अनेक प्रकारके पदार्थोंका संचय करता है। स्पर्शन इन्द्रियकी तृप्तिके लिए वेद्यालयोंमें जाता है, रसनाकी तृप्तिके लिए अमक्ष्य भक्षण करता है, घ्राणकी सतृप्तिके लिए इत्र फुलेलकी गन्ध लेता है, नेत्रकी तृप्तिके लिए मनोहर रूपका अवलोकन करता है एवं कर्ण इन्द्रियकी तृप्तिके लिए मनोहर मधुर शब्दोंको सुननेके लिए लालायित रहता है। इस प्रकारके मानवकी दृष्टि अनात्मिक है, वह शरीरको ही सब कुछ समझ गया है। कवि भूधरदासने अपने अन्तस्में उसी सत्यका अनुभव कर जगत्के मानवोंको सजग करते हुए कहा है—

माता पिता-रज-बीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है ।
माखिनके पर माफिक बाहर, चामके बैठन वेढ़ घरी है ॥

नाहिं तो आय लगेँ अबहीं, बक बायस जीव बचै न घरी है ।

देह दशा यह दीखत आत, घिनात नही किन बुद्धि हरी है ॥

मनुष्य अपनेको अमर समझ जगत्में नाना प्रकारके पाप और अत्याचार करता है । इस विनाशीक शरीरको अमर बनानेके लिए वह खड़ी-बूटियोंका सेवन करता है, नाना देवी-देवताओंको प्रसन्नकर वरदान प्राप्त करना चाहता है, और विज्ञान-द्वारा ऐसी ओपधियोंका आविष्कार करता है, जिनके सेवनसे अमर हो जाय । इसके लम्बे-चौड़े प्रोग्राम इस शरीरको ही सजाने, सँवारने, और वृद्धिगत करनेके लिए बनते हैं; अनात्मिक दृष्टि रखनेके कारण आत्मकल्याणसे विपरीत सभी वस्तुएँ इसे अच्छी प्रतीत होती हैं । अतएव कवि विद्वदके समक्ष मृत्युकी अनिवार्यताका निरूपण करता हुआ यह बतलानेका प्रयास करता है कि व्यर्थ-के पाप करनेसे कोई लाभ नहीं, मृत्यु जीवनमें अनिवार्य है, अतः दीनता और पलायनको छोड़ जीवनके मार्गमें अबाधित रूपसे बढ़ते चले जाना यह मानवता है । जीवन-मोह कर्त्तव्य-मार्गसे च्युत कर देता है, इसीसे व्यक्ति साहस, वीरता और नैतिक कार्योंमें गतिशील नहीं हो पाता । कवि-ने अनात्मिक भावनाओंको हृदयसे निकालनेके लिए जोर देते हुए कहा है—

लोहमई फोट केई कोठनकी ओट करो,
काँगरेन तोप रोपि राखों पट भेरिकैं ।
इन्द्र चन्द्र चौकायत चौकत है चौकी देहु,
चतुरंग चमू चहुँ ओर रहौ घेरिकैं ॥
तहाँ एक भौहिरा बनाय बीच बैठो पुनि,
बोलौ मति कोऊ जो बुलावै नाम टेरिकैं ।
ऐसे परपंच पॉतिरचौ क्यों न भॉति भॉति
कैसे हू न छोटे जम देख्यो हम हेरिकैं ॥

युवावस्थामें मनुष्यकी भावनाएँ एक विशेष तीव्र प्रवाहसे बहती हैं। इस अवस्थामें पतनका गर्त और महत्ताका सोपान दोनों ही विद्यमान रहते हैं, यदि तनिक भी शिथिलता आई तो गर्तमें गिरना निश्चित है और सजग होने पर महत्ताके सोपान पर व्यक्ति चढ़ जाता है। जो युवावस्थामें त्रिषय-वासनाओंमें अनुरक्त रहते हैं, वे एक प्रकार क्षम्य भी हैं; परन्तु वृद्धावस्था आजाने पर भी जो आत्मकल्याणमें विमुख हैं, वे वस्तुतः निन्दाके पात्र हैं। कविने वृद्धावस्थाको बढ़ी पैनी और सूक्ष्म दृष्टिसे देखा है। इतना त्वाभाविक और कलापूर्ण वर्णन अन्यत्र कठिनाईसे मिलेगा—

दृष्टि घटी पलटी तनकी छवि, बंक भई गति लंक नई है।
 रूस रहीं परनी घरनी अति, रंक भयी परयंक लई है ॥
 काँपत नार बई मुख लार, महामति संगति छोरि गई है।
 अंग डपंग पुराने परै, तिथना डर और नवीन भई है ॥

X

X

X

X

लोई दिन कटै सोई आशमें अवश्य घटे,
 बूढ़ बूढ़ बीतै जैसे अँजुलीको जल है।

देह नित छीन होत नैन तेजहीन होत,
 जोवन मलीन हांत छीन होत बल है ॥

आवै जरा नेरी तक अंतक अहरी आवै,
 पर भी नबीक जात नर-भी विफल है।

मिलकै मिलापी जन पूँछत कुशल मेरी,
 पेसी माहीं मित्र ! काहे की कुशल है ॥

भाव, भाषा, कल्पना और विचारोंकी दृष्टिसे यह रचना श्रेष्ठ है।

इस सरस नीतिपूर्ण रचनामें देवानुरागशतक, सुभाषितनीति, उप-
देशाधिकार और विराग-भावना ये चार प्रकरण हैं। प्रथम देवानुराग-
शतकमें कवि बुधज्जने दास्य भावकी भक्ति अपने
बुधजन-सतसई आराध्यके प्रति प्रकट की है। यद्यपि वीतरागी प्रभुके
साथ इस भावनाका सामंजस्य नहीं बैठता है, फिर भी भक्तिके अतिरेकके
कारण कविने अपनेको दासके रूपमें उपस्थित किया है। आत्मालोचन
करना और जिनेश्वरके माहात्म्यको व्यक्त करना ही कविका लक्ष्य है,
अतः वह कहता है—

मेरे अवगुन जिन गिनौ, मैं औगुनको धाम ।

पतित उधारक आप हौ, करौ पतितको काम ॥

सुभाषित खण्डमें २०० दोहे हैं, ये सभी दोहे नीतिविषयक हैं।
लोक-भर्यादाके संरक्षणके लिए कविने अनेक हितोपदेशकी बातें कही हैं।
कबीर, तुलसी, रहीम और वृन्दसे इस विभागके दोहे समता रखते हैं।
एक-एक दोहेमें जीवनको प्रगतिशील बनानेवाले अमूल्य सदेश भरे हुए
हैं। कवि कहता है—

एक चरन हूँ नित पदै, तो काटै अज्ञान ।

पनिहारीकी लेज सों, सहज कटै पापान ॥

महाराज महावृक्षकी, सुखदा शीतल छाये ।

सेवत फल भासे न तौ, छाया तो रह जाय ॥

पर उपदेश करन निपुन, ते तौ लखै अनेक ।

करै समिक बोलै समिक, ते हजारमें एक ॥

विपत्ताकौ धन राखिये, धन दीजै रखि द्वार ।

आत्म हितकौ छाँड़ि, धन, दारा परिवार ॥

इस खण्डके कतिपय दोहे तो पञ्चतन्त्र और हितोपदेशके नीतिश्लोकों-
का अनुवाद प्रतीत होते हैं। तुलसी, कबीर और रहीमके दोहोंसे भी

कवि अनुप्राणित-सा प्रतीत होता है। यद्यपि पारिभाषिक जैन शब्दोंके प्रयोग-द्वारा सम्यक्तत्त्वकी महिमा, मिथ्यात्वकी हानि एवं चरित्रकी महत्ता प्रतिपादित की है, फिर भी सामान्य सुक्तियोंका हितोपदेश और तुलसीदासके दोहासे बहुत साम्य है।

उपदेशाधिकारमें विद्या, मित्र, जुआनिपेध, मद्य-मास-निपेध, वेभ्या-निपेध, शिकार-निन्दा, चोरी-निन्दा, परस्त्री-स्नान-निपेध आदि विषयोंपर अनेक उपदेशात्मक अनुभूतिपूर्ण दोहे लिखे गये हैं। इन दोहोंके मनन, चिन्तन, स्मरण और पठनसे आत्मा निर्मल होती है, हृदय पृत भावनाओं-से भर जाता है और जीवनमें सुख-शान्तिकी उपलब्धि हो जाती है।

विराग-भावना खण्डमें कविने संसारकी असारताका बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। इस खण्डके सभी दोहे रोचक और मनोहर हैं। दृष्टान्तों-द्वारा संसारकी वान्तविक्रताका चित्रण करनेमें कविको अपूर्व सफलता मिली है। वस्तुका चित्र-नेत्रोंके सामने मृत्तिमान होकर उपस्थित हो जाता है।

को है सुत को है तिया, काको धन परिवार ।
आके मिले सरायमें, बिछुरेंगे निरधारं ॥
परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय ।
छलबलि करि क्यों हु न वचै, काल अपट लै जाय ॥
आया सो नाही रखा, दशरथ लछमन राम ।
तू कैसें रह जायगा, झट पापका धाम ॥

कविकी चुभती हुई उक्तियों हृदयमें प्रविष्ट हो जाती हैं तथा जीवनके आन्तरिक सौन्दर्यकी अनुभूति होने लगती है। इस सतसईकी भाषा टेट हिन्दी है, किन्तु कहीं-कहीं जयपुरी भाषाका पुट भी विद्यमान है।

यह छोटी-सी सरस रचना कवि विनोदीलालकी है। कविने इसमें नेमिनाथकी बरातका चित्रण किया है तथा पशु-पक्षियोंको पिण्डमें बन्द
नेमिव्याह देखकर उनकी हिंसासे भयभीत हो युवक नेमिनाथ
वैराग्य ग्रहण कर लेते हैं। इसकी कथावस्तुका निर्देश
पूर्वमें नेमिचन्द्रिकाके परिशीलनमें किया जा चुका है।

इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि नेमिनाथके मनमें दुःखी राष्ट्रके दुःखको दूर करनेकी प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि उनके मनमें कुछ क्षणोंतक सासारिक प्रलोभनोंसे युद्ध होता है, परन्तु जब तटस्थ होकर राष्ट्रकी परिस्थितिका चिन्तन करते हैं, उस समय उनका मोह समाप्त हो जाता है। भौतिक सुखोंको छोड़कर मानव कल्याणके लिए नेमिनाथका इस प्रकार तपस्याके लिए चला जाना, जीवनसे पलायन या दैन्य नहीं है। यह सच्चा पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थको हर व्यक्ति नहीं कर सकता, इसके लिए महान् आत्मिक बलकी आवश्यकता है। जिसकी आत्मामें अपूर्व बल होगा, अन्तस्तलमें मानव-कल्याणकी भावना सुलगती होगी, वही व्यक्ति इस प्रकारके अद्वितीय कार्योंको सम्पन्न कर सकेगा। कविने रचनाके आरम्भमें वरकी वेश-भूषाका वर्णन करते हुए बत-लाया है।

मौर धरो सिर दूलहके कर कंकण बाँध दई कस डोरी ।
कुंडल काननमें झलके अति भालमें लाल विराजत रोरी ।
मोतिनकी लज्ज शोभित है छवि देखि लज्जें बनिता सब गोरी ।
लाल विनोदीके साहिबके मुख देखनको हुनियौ उठ दौरी ।
विरक्त होते हुए नेमिनाथका चित्रण—

बेम उदास भये जबसे कर जोड़के सिद्धका नाम लियो है ।
अम्बर भूषण डार दिये शिर मौर उतारके डार दियो है ॥
रूप धरौं मुनिका जबहीं तबहीं चढ़िके गिरिनारि गयो है ।
लाल विनोदीके साहिबने तहाँ पाँच महाव्रत योग लयो है ॥

कविने इस रचनामें युवकोंके आदर्शके साथ युवतियोंके आदर्शका भी सुन्दर अंकन किया है। जबतक देशका नारी-समाज जाग्रत न होगा और “विवाह ही जीवनका उद्देश्य है” इस सिद्धान्तका त्याग न करेगा तबतक राष्ट्रका कल्याण नहीं हो सकता। राजुलने ऐसा ही आदर्श प्रस्तुत किया है। भोग जीवनका जघन्य लक्ष्य है, व्यक्ति जब भोगवादसे ऊपर उठ जाता है, तभी वह सेवा-कार्यमें प्रवृत्त हो जाता है। जब माता-पिता राजुलको पुनः वरान्वेषणकी बात कहकर सन्तुष्ट करते हैं, तब क्या ही सुन्दर उत्तर देती है—

काहे न बात सम्हाल कहौ तुम जानत हो यह बात भली है।
गालियाँ काढ़त हो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है ॥
मैं सबको तुम तुल्य गिनौ तुम जानत ना यह बात रली है।
या भवमें पति नेमप्रभू वह लाल विनोदीको नाथ बली है ॥

जैन कवियोंने वारहमासोंकी रचना कर वीरता और राष्ट्रीयताकी भावनाओंका सुन्दर अंकन किया है। यद्यपि वारह-
वारहमासा
नेमिराजुल
मासोंमें सवाद रूपमें सेवा और वैराग्यकी भावना ही अन्तमें दिखलाई गई है, परन्तु संवादोंके मध्यमें

विभिन्न मानवीय भावनाओंका अंकन भी सुन्दर हुआ है। प्रस्तुत वारह-मासा कवि विनोदीलाल-द्वारा विरचित है। इसमें राजुल अपने संकल्पित पति नेमिनाथसे अनुरोध करती है कि “स्वामिन् ! आप इस युवावस्थामें क्यों विरक्त होकर तपस्या करने जाते हैं ? यदि आपको तपस्या करना ही अभीष्ट था और आप देशमें अहिंसा सस्कृतिका प्रचार करना चाहते थे तो आपने आपाढ़ महीनेमें यह व्रत क्यों नहीं लिया ? जब आप श्रावणमें विवाहकी तैयारी कर आ गये, तब क्यों आप इस प्रकार मुझे दुकराकर जा रहे हैं। मैं मानती हूँ कि राष्ट्रोत्थानमें भाग लेना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। स्वर्णिम अतीत प्रत्येक सहृदयको प्रभावित करता है। राष्ट्रकी सम्पत्ति

युवक और युवतियाँ हैं, इन्हींके ऊपर राष्ट्रका समस्त भार है, अतः आपका महत्त्वपूर्ण त्याग वैयक्तिक साधना न बनकर राष्ट्रहित-साधक होगा; फिर भी मैं आपके कोमल शरीर और ललित कामनाओंका अनुभव कर कहती हूँ कि यह व्रत आपके लिए उचित नहीं है। श्रावण मासमें व्रत लेनेसे धन-घोर वादलोंका गर्जन, विद्युत्की चकाचौध, कोयलकी कुहुक, तिमिरयुक्ता यामिनी, पूर्वी हवाके मधुर और शीतल झोंके आपको वासनासक्त किये बिना न रहेंगे। इस महीनेमें दीक्षा लेना खतरेसे खाली नहीं है, अतएव तप साधन करना ठीक नहीं है।”

राजुलकी उक्त बातोंका उत्तर नेमिनाथने बड़े ही ओजस्वी वचनोंमें दिया है। वह कहते हैं कि “जब तक व्यक्ति अपना शोधन नहीं करता, राष्ट्रका हित नहीं कर सकता है। आत्मशोधनके लिए समयविशेषकी आवश्यकता होती है। भय और त्रास उन्हीं व्यक्तियोंको विचलित कर सकते हैं, जिनके मनमें किसी भी प्रकारका प्रलोभन शेष रहता है। प्रकृति-के मनोहर रूपमें जहाँ रमणीय भावनाओंको जाग्रत करनेकी क्षमता है। वहाँ उसमें वीरता, धीरता और कर्त्तव्यपरायणताकी भी भावना उत्पन्न करनेकी योग्यता विद्यमान है। अतः श्रावण मासकी झड़ी वासनाके स्थान-पर विरक्ति ही उत्पन्न कर सकेगी।”

नेमिनाथके इस उत्तरको सुनकर राजुल भाद्रपद मासकी कठिना-इयोका वर्णन करती है। वह मोहवश उनसे प्रार्थना करती हुई कहती है कि “हे प्राणनाथ ! आप जैसे सुकुमार व्यक्ति भाद्रपद मासकी अनवरत होनेवाली वर्षा ऋतुमें मुक्त प्रकृतिमें, जहाँ न भव्य प्रासाद होगा और न वज्रवेष्म होगा, आप किस प्रकार रह सकेंगे ? झझावात नन्हीं नन्हीं पानीकी बूंदोंसे युक्त होकर शरीरमें अपूर्व वेदना उत्पन्न करेगा। यदि आप योगधारण करना चाहते हैं तो घर ही चलकर योगधारण कीजिये। सेवकको वन जाना आवश्यक नहीं, वह घरमें रहकर भी सेवा-कार्य कर सकता है। प्राणनाथ ! मैं यह मानती हूँ कि इस समय देशमें हिंसाका बोलबाला है,

इसे दूर करनेके लिए पहले अपनेको पूर्ण अहिंसक बनाना पड़ेगा, तब देशका कल्याण हो सकेगा। परन्तु आपका मोह मुझे इस बातकी प्रेरणा दे रहा है कि मैं इस कठिनाईसे आपकी रक्षा करूँ।”

राजुल्लकी इन बातोंको सुनकर नेमिनाथ हैंस पड़ते हैं और कहने हैं कि कष्टसहिष्णु बनना प्रत्येक व्यक्तिको आवश्यक है। ये थोड़ेसे कष्ट किस गिनतीमें हैं, जब नरक, निगोदक भयंकर कष्ट सहें हैं तथा इस समय जहाँ हमारा राष्ट्र-सन्तान है, प्रत्येक प्राणी हिंसासे छटपटा रहा है, उस समय तुम्हारी ये मोहभरी बातें कुछ भी महत्त्व नहीं रखती। मैंने अच्छी तरह निश्चय करनेके उपरान्त ही इस मार्गका अवलम्बन लिया है।

इसी प्रकार राजुल्लने बारह महीनोंकी मीपणताका चित्राकन किया है। नेमिनाथ इन विभीषिकाओंसे भयभीत नहीं होते हैं और वह अपने व्रतमें दृढ़ रहते हैं। इस प्रसंगके सभी पद्य सरल और मधुर हैं। कात्तिक मासका चित्रण करती हुई राजुल्ल कहती है—

पिय कात्तिक में मन कैसे रहूँ जब भामिनि भौन सजावेंगी ।
रवि चित्र-विचित्र सुरंग सब, घर ही घर मंगल-नारिणी ॥
पिय नूतन-नारि सिंगार किये, अपनो पिय टेर बुलावेंगी ।
पिय बारहिवार धरै द्वियरा, लियरा तरसावेंगी ॥

नेमिनाथका प्रत्युत्तर—

तो लियरा तरसै सुन राजुल, जां तनको अपनो कर जानै ।
पुद्गल भिन्न है भिन्न मयै, तन छाँड़ि मनोरथ आन सयानै ॥
वृद्धगो भाई कलिघार मैं, जड़ चेतनजों को एक प्रमानै ।
हंस पिवै पय भिन्न करै जल, सो परमात्म आत्म जानै ॥

वसन्त ऋतुके आगमनकी विभीषिका दिव्यलाती हुई राजुल्ल कहती है—
पिय लागैगो चैत यमंत सुहावनों, फूलैगी बेल सबै बनमाहीं ।
फूलैगी कामिनी जाको पिया घर, फूलैगी फूल सबै बनराई ॥

खेलहिंगे ब्रजके बन मैं सब, बालगुपाल रु कुँवर कन्हौई ।
नेमि पिया उठ आवो धरै तुम, काहेको करहो लोग हँसाई ॥

यह पं० दौलतरामकी एक सरस आध्यात्मिक कृति है । कविने जैन-
तत्त्वोंके निचोड़को इस रचनामें सकलित किया है । सस्कृतके अनेक ग्रन्थों-

को पढ़कर जो भाव कविके हृदयमें उठे, उन्हें जैसेके
छहढाला तैसे रूपमें छहढालामे रख दिया है । इस रचनाकी

मापा गॅंठी हुई और परिमार्जित है । कविने जीवनमें चिरन्तन सत्य-
को और सत्यकी क्रियाको जैसा देखा, जन-कल्याणके लिए वही लिखा ।
मानवताका चरमविकास ही कविका अन्तिम लक्ष्य है । अतः वह समस्त
वन्धनोंसे मानवको मुक्तकर शाश्वतिक आनन्द-प्राप्तिके लिए अग्रसर
करता है । कविकी चिन्तनशीलता चन्द्रमाकी चोंदनीके समान चमकती
है । प्रथम ढालमें चारो गतियोंका दुःख, द्वितीयमें मिथ्याबुद्धिके कारण
प्राप्त होनेवाले कष्ट, तृतीयमें सात तत्त्वके सामान्य विवेचनके पश्चात्
सम्यक्त्वका विवेचन, चतुर्थमें सम्यग्ज्ञानकी विशेषता, पञ्चममें विश्वके
रहस्योंको अवगत करनेके लिए विभिन्न प्रकारके चिन्तन एवं पष्ठमें आचार-
का विधान है । प्रथम ढालमें कविने नारक, पशु, मनुष्य और देवोंके भव-
भ्रमणोंका कथन करते हुए बताया है कि अनादिकालसे यह प्राणी मोह-
मदिराको पीकर अपने आत्मस्वरूपको भूल ससार-परिभ्रमण कर रहा है ।
कविने कितनी गहराईके साथ इस भव-पर्यटनका अनुभव किया है—

मोह महामद पियौ अनादि, भूल आपको भरमत वादि ।

×

×

×

काल अनन्त निगोद मंझार, वीत्यौ एकेन्द्री तन धार ॥
एक स्वासमें अठदस बार, जन्मौ मर्यौ मर्यौ दुःखमार ।
निकसि भूमिजल पावक भयौ, पवन प्रत्येक वनस्पति थयौ ॥
दुर्लभ लहि ज्यौ चिंतामणी, त्यौ पर्याय लही त्रसतणी ।

तीसरी ढालमे जीव, अजीव, आस्रव, वन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्षका तारिखक विवेचन है। कल्याणका मार्ग बतलाता हुआ कवि कहता है—

यों अजीव अव आस्रव सुनिये, मन-वच-काम त्रियोगा ।
मिथ्या अधिरत अरु कपाय, परमाद सहित उपयोगा ॥

X

X

X

ये ही आत्मको दुःख कारण, तातैं इनको तनिये ।
जीव प्रदेश धंधे विधि सौं, सो बंधन कबहुँ न सनिये ॥
शम दम तैं जो कर्म न आवै, सो संवर आदरिये ।
तपबल तैं विधि-क्षरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये ॥

आध्यात्मिक कृति होनेके कारण पारिभाषिक जैन शब्दोंकी बहुलता है; फिर भी मानव जीवनको उन्नत बनानेवाले सदेशकी कमी नहीं है। कवि कहता है कि अपने गुण और परके दोषोंको छिपानेसे मानवका विकास होता है। परछिद्रान्वेषणकी प्रवृत्ति समाज और व्यक्तिके विकासमे नितान्त बाधक है। अतएव किसी व्यक्तिके दोषोंको देखकर भी उसे पुनः सन्मार्गमे लगा देना मानवता है। जो व्यक्ति इस मानवधर्मका अनुसरण करता है, वह महान् है

रिजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, धानिज धर्म बढावै ।
कामादिक कर बृपतैं त्रिगतैं, निज परको सु दढावै ॥

चौथी ढालमें वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके विकासकी अनेक भावनाएँ अंकित हैं। कवि आत्मविकासका साधन बतलाता हुआ कहता है—‘राग-द्वेष करतार कथा कबहुँ न सुनीजै’ आगे पुनः कहता है—‘धर डर समताभाव, सदा सामायिक करिये’ इन पद्योंमे जीवनको उन्नत बनानेवाले सिद्धान्तोंका कथन है।

पाँचवीं ढालमें संसारकी वास्तविकताका निरूपण करता हुआ कवि कहता है—

“जीवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।

इन्द्रिय-भोग छिन याई, सुरधनु चपला चपलाई ॥”

छठवीं ढालमें जीवनके आदर्शोंको निरूपण करते हुए कहा है—

‘यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये’

इस प्रकार इस छोटी-सी कृतिमें जीवनकी यथार्थताका चित्रण किया गया है ।

छहढालाकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें समूचे जैन दर्शनको, पारिभाषिक शब्दावलिके आधारपर सरस और सरल रूपमें गुम्फित कर दिया गया है ।

छठवाँ अध्याय

आत्मकथा-काव्य

आत्मकथा लिखना अन्य काव्योकी अपेक्षा कठिन है। लेखक निर्भीक होकर सामान्य जगत्के घरातलसे ऊपर उठकर ही आत्मकथा काव्य लिख सकता है। सत्यका प्रयोग करनेमें जो जितना सक्षम है, वह उतना ही श्रेष्ठ आत्मकथा-काव्य लिखनेकी क्षमता रखता है। जैनकवि बनारसीदासका सर्वप्रथम आत्मकथा-काव्य हिन्दी साहित्यमें उपलब्ध है। आजसे लगभग चार सौ वर्ष पूर्व कविने पद्यात्मक यह आत्मचरित लिखा है। इसमें अपने समयकी अनेक ऐतिहासिक बातोंके साथ मुसलमानी राज्यकी अन्धाधुन्धीका जीता-जागता चित्र भी खींचा है। कविने सत्य-प्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकताका ऐसा अकन किया है जिससे यह आत्मकथा आधुनिक आत्मकथाओंसे किसी भी बातमें कम नहीं है। कविने अपने दोष और त्रुटियोंको भी सत्य और ईमानदारीके साथ ज्योका-त्यो रख दिया है। अपने चारित्रिक दोषोंपर पर्दा डालनेका प्रयास नहीं किया है, बल्कि एक वैज्ञानिकके समान तटस्थ होकर यथार्थताका विश्लेषण किया गया है।

यह आत्मकथा-काव्य 'मध्यदेशकी बोली'में लिखा गया है। भाषामें किसी भी प्रकारका आढम्बर नहीं है। जो भाषा सुगमतापूर्वक सर्व-साधारणकी समझमें आ सके, उसीमें यह आत्मचरित लिखा गया है। आत्मकथाके आदिमें स्वयं कविने लिखा है—

जैनधर्म श्रीमाल सुवंस । बनारसी नाम नरहंस ॥

तिन मनमाहिं विचारी बात । कहौ आपनी कथा विख्यात ॥

जैसी सुनी विलोकी नैन । तैसी कछु कहौं मुख बैन ॥
 कहौं अतीत-दोष-गुणवाद । बरतमानताईं मरजाद ॥
 भाषी दसा होइगी जथा । ग्यानी जानै तिसकी कथा ॥
 तातै भई बात मन आनि । थूलरूप कछु कहौ बखानि ॥
 मध्य देसकी बोली बोलि । गर्भित बात कहौ हिअ खोलि ॥
 भाखौ पूरव-दसा-चरित्र । सुनइ कान धरि मेरे मित्र ॥

समूची आत्मकथा इतनी रोचक है और ऐतिहासिक निबन्धनकी दृष्टिसे इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इसका कुछ विस्तारसे वर्णन करनेका लोभ सवरण नहीं किया जा सकता । कवि बनारसीदास एक धनी-मानी सम्भ्रान्त वंशमे उत्पन्न हुए थे । इनके प्रपितामह जिनदासका साका चलता था, पितामह मूलदास हिन्दी और फारसीके पंडित थे; और ये नरवर (मालवा) मे वहाँके मुसलमान नवाबके मोदी होकर गये थे । इनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके नामी जौहरी थे और पिता खड्गसेन कुछ दिनोतक बगालके सुल्तान मोदीखोंके पोतदार थे और कुछ दिनोके उपरान्त जौनपुरमे जवाहरातका व्यापार करने लगे थे । इस प्रकार कविका वंश सम्पन्न था तथा अन्य सम्बन्धी भी धनिक थे । पर आत्मकथा-लेखकको सुख-शान्ति जीवनमे नहीं मिली । अतः घना-र्जनके लिए जीवन भर इन्हें दौड-धूप करनी पड़ी और तरह-तरहके कष्ट सहने पड़े । इस दौडधूप और कष्टोंका निरूपण कविने अत्यन्त विशुद्ध हृदय से किया है ।

कविने यद्यपि सामान्यशिक्षा प्राप्त की थी, पर कविता करनेकी प्रतिभा जन्मजात थी । १४ वर्षकी अवस्थामे ५० देवदत्तके पास पढना आरम्भ किया था और धनञ्जयनाममालादि कई ग्रन्थोको पढ़ा था—

पढ़ी नाममाला शत दोय । और अनेकारथ अवलोक्य ॥
 ज्योतिष अलंकार लघु कोक । खंडस्फुट शत चार श्लोक ॥

कविके ऊपर माता-पिता और दादीका अतिशय स्नेह था । अतः यौवनारम्भमें यह इश्कवाज हो गये । कवि लिखता है—

तजि कुलकान लोककी लाज । भयो बनारसि आसिखवाज ॥
करै आसिखी धरित न धीर । दरदबन्द ज्यों शेर फकीर ॥
इकटक देख ध्यानसों धरै । पिता आपुनेको धन हरै ॥

कविका कार्य इस अवस्थामे पढ़ना और इश्कवाजी करना था । इन्होने चौदह वर्षकी आयुमे एक सुन्दर 'नवरस' नामक रचना भी एक सहस्र प्रमाण दोहे-चौपाईमे लिखी थी । बोध जाग्रत होनेपर कविने इस ग्रन्थको गोमतीमें प्रवाहित कर दिया ।

कवहूँ आइ शब्द उर धरै । कवहूँ जाइ आसिखी करै ।
पोथी एक बनाई नई । मित हजार दोहा चौपाई ॥
तामें नवरस रचना लिखी । है विशेष धरनन आसिखी ॥
ऐसे कृकवि बनारसि भये । मिथ्याग्रन्थ बनाये नये ॥

कै पढ़ना कै आसिखी, भगन दुहूँ रस माहिं ।
खानपानकी सुधि नहीं, रोजगार कछु नाहिं ॥

१५ वर्ष १० महीनेकी अवस्थामे कवि सज्जधजकर अपनी ससुराल खैराबादसे द्विरागमन कराने गया । ससुरालमे एक माह रहनेके उपरान्त कविको पूर्वोपार्जित अशुभोदयके कारण कुछ रोग हो गया, विवाहिता भार्या और सासुके अतिरिक्त सबने साथ छोड़ दिया । कविने इस अवस्थाका निरूपण करते हुए बताया है कि खैराबादके एक नाईने, जो कुछ रोगका वैद्य था, दो महीने अनवरत श्रम और चिकित्साकर उन्हे अच्छा किया ।

भयो बनारसिदास तन, कुष्ठरूप सरवंग ।

हाड़ हाड़ उपजी व्यथा, केश रोम भ्रुवभंग ॥

चिस्फोटक अगनित भये, हस्त चरण चौरंग ।
 कौक नर साछे ससुर, भोजन करहिं न संग ॥
 ऐसी अशुभ दशा भई, निकट न आवै कोइ ।
 सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥

स्वस्थ होकर कवि पत्नीको बिना ही लिवाये घर आया और पूर्ववत् पढ़ना-लिखना तथा इष्कवाजी करना आरम्भ कर दिया । चार महीनेके के पश्चात् कवि पुनः भार्याको लिवाने गया और विदा कराकर घर रहने लगा । अतः गुरुजन उपदेश देने लगे—

गुरुजन लोग वेहिं उपदेश । आसिखबाज सुनै दरवेश ॥
 बहुत पढे बाभन और भाद । वनिक पुत्र तो बैठे हाद ॥
 बहुत पढ़ै सो माँगे भीख । मानहु पूत बढ़ोकी सीख ॥

सवत् १६६० में कविने अध्ययन समाप्त किया तथा कविकी बहन का विवाह भी इसी सवत्मे हुआ और कविको एक पुत्रीकी प्राप्ति भी इसी संवत्में हुई । सवत् १६६१ में एक धूर्त संन्यासी आया और उसने बड़े आदमीका पुत्र समझकर इनको अपने जालमें फँसा लिया । संन्यासीने कहा—“मेरे पास ऐसा मन्त्र है कि यदि कोई एक वर्ष तक नियमपूर्वक जपे तथा इस भेदको किसीसे न कहे तो एक वर्ष वीतनेपर मन्त्र सिद्ध हो जाता है, जिससे घरके द्वारपर एक स्वर्णमुद्रा प्रतिदिन पड़ी मिला करेगी ।” इष्कवाजीके लिए धनकी आवश्यकता रहनेके कारण लोमबश कविने मन्त्रकी साधना आरम्भ की । मन्त्र जपते-जपते बड़ी कठिनाईसे समय बिताया और प्रातःकाल ही स्नान-ध्यान करके बड़ी उत्कंठासे कवि घरके दरवाजे पर आया और स्वर्णमुद्राका अन्वेषण करने लगा, पर वहाँ सोनेकी तो बात ही क्या, मिट्टीकी भी मुद्रा न मिली । आश्चर्य कविने यह समझकर कि कहीं दिन गिननेमें तो गलती न हो गई है अतः उसने कुछ दिनों तक पुनः मन्त्रका जप किया पर कुछ मिला-जुला नहीं ।

कुछ दिनोंके उपरान्त एक योगीने आकर अपना दूसरा रंग जमाया। भोले कविको इस रंगमें रंगते विलम्ब न हुआ और योगी-द्वारा प्रदत्त शस्त्ररूप सदाशिवकी मूर्तिकी छुपकर पूजा करने लगा। योगी तो अपनी भेंट लेकर चला गया, पर कवि शस्त्र बजा-बजाकर सदाशिवके अर्चनमें अनुरक्त रहने लगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि यह पूजा वह अपने परिवारसे छिपकर करता था, उसकी इस प्रवृत्तिके सम्बन्धमें किसीको कुछ भी पता नहीं था। संवत् १६६१ में जब इनके पिता खड्गसेन हीरानन्दजी द्वारा चलाये गये शिखरजी यात्रा सधमें यात्रार्थ चले गये तो इन्होंने कुछ दिनोंतक चैनकी बग्गी बजानेके पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथकी यात्रा करनेकी आज्ञा अपनी मौसे माँगी। आज्ञा न मिलनेपर कवि चुपचाप बनारसके भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करनेके लिए चल दिया। वहाँ पहुँचकर गंगास्नानपूर्वक दस दिनो तक भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा करता रहा; किन्तु इस समय भी सदाशिवकी पूजा ज्योंकी त्यो होती रही। कविने आत्मकथामें सदाशिव पूजनको उत्प्रेक्षा और आक्षेपालकारमें निम्न प्रकार कहा है—

शस्त्ररूप शिव देव, महाशस्त्र बनारसी।

दोऊ मिले अबेन, साहित्य सेवक एकसे ॥

संवत् १६६२ में कार्तिक मासमें अकबरकी मृत्यु हो जानेपर नगरमें किस प्रकारकी व्याकुलता छा गई, कविने आत्मकथामें सजीव चित्रण किया है—

घर घर दर दर दिये कपाट, हटवानी नहीं बैठे हाट।

हँडवाइँ गाढ़ी कहुँ और, नकदमाल निरभरमी ठौर ॥

भले वस्त्र अरु भूषन भले, ते सब गाढ़े धरती तले।

घर घर सबनि बिसाहे शस्त्र, लोगन पहिरे मोटे वस्त्र ॥

गाढ़ो कंबल अथवा खेस, नारिन पहिरे मोटे वेस।

ऊँच नीच कोठ न पहिचान, धनी दरिद्री भये समान ॥

सदाशिवका बहुत दिनों तक पूजन करनेके उपरान्त एक दिन कवि एकान्तमे बैठा-बैठा सोचने लगा—

जब मैं गिर्यो पर्यो मुरझाय । तब शिव कछु नहीं करी सहाय ॥

इस विकट शकाका समाधान उसके मनमे न हो सका और उसने सदाशिवकी पूजा करना छोड़ दिया । कुछ दिनोंके पश्चात् एक दिन कवि सन्ध्या समय गोमतीकी ओर पर्यटन करने गया और प्राकृतिक रमणीय दृश्यने कविके अन्तस्तलको आलोकित किया, फलतः कविको विरक्ति हुई और उसने अपनी श्रृ गार रसकी रचना नवरसको उसमे प्रवाहित कर दिया तथा स्वयं पापकर्मोंको छोड़ सम्यत्त्वकी ओर आकृष्ट हुआ—

तिस दिन सों बनारसी, करी धर्म की चाह ।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुल की राह ॥

× × ×

उदय होत शुभ कर्म के, भई अशुभकी हानि ।
तार्ते मुरत बनारसी, गहरी धर्म की बानि ॥

संवत् १६६७ में एक दिन पिताने पुत्रसे कहा—“वत्स ! अब तुम सयाने हो गये, अतः घरका सब काम-काज समालो और हमको धर्म-ध्यान करने दो ।” पिताके इच्छानुसार कवि घरका कामकाज करने लगा । कुछ दिन उपरान्त दो हीरेकी अँगूठी, चौबीस माणिक, चौतीस मणि, नौ नीलम, बीस पन्ना, चार गोंठ फुटकर चुन्नी इस प्रकार जवाहरात; बीस मन घी, दो कुप्पे तेल, दो सौ रुपयेका कपड़ा और कुछ नकद रुपये लेकर आगराको व्यापार करने चला । प्रतिदिन पाँच कोसके हिसाबसे चलकर गाड़ियों इटावाके निकट आईं, वहाँ मजिल पूरी हो जानेसे एक बीहड़ स्थानपर डेरा डाला । थोड़े समय विश्राम कर पाये थे कि मूसलाधार पानी बरसने लगा । तूफान और पानी इतनी

तेजीसे वह रहे थे, जिससे खुले मैदानमें रहना, अत्यन्त कठिन था। गाड़ियाँ जहाँकी तहाँ छोड़ सार्थी इधर-उधर भागने लगे। शहरमें भी कहीं शरण नहीं मिली। सरायमें एक उमराव ठहरे हुए थे, अतः स्थान रिक्त न होनेसे वहाँसे भी उल्टे पाँव लौटना पड़ा। कविने इस परिस्थितिका यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है—

फिरत फिरत फावा भये, बैठन कहे न कोय ।
तलै कीचसों पग भरें, ऊपर वरसत तोय ॥
अँधकार रजनी विपै, हिमरितु अगहनमास ।
नारि एक बैठन कह्यो, पुरुष उठा लै बाँस ॥

किसी प्रकार चौकीदारोंकी झोपड़ीमें शरण मिली और कष्टपूर्वक वहीं रात बिताई। प्रातःकाल गाड़ियाँ लेकर आगरेको चले, आगरा पहुँचकर मोती कटरमें एक मकान लेकर उसमें सारा सामान रखकर रहने लगे। व्यापारसे अनभिज्ञ होनेके कारण कविको घी, तैल और कपड़े-में घाटा ही रहा। इस विक्रीके रुपयोंको हुण्डी-द्वारा जौनपुर भेज दिया। जवाहरात भी जिस किसीके हाथ बेचते रहे, जिससे पूरा मूल्य नहीं मिला। इजहारबन्दके नारेमें कुछ छूटा जवाहरात बाँध लिया था, वह न मालूम कहाँ खिसककर गिर गया। माल बहुत था, इससे हानि अत्यधिक हुई, पर किसीसे कुछ कहा नहीं, आपत्तियों अकेले नहीं आती, इस कहावतके अनुसार डेरेमें रखे कपड़ेमें बँधे हुए जवाहिरातोंको चूहे कपड़े समेत न मालूम कहाँ ले गये। दो जड़ाऊ पहुँची किसी सेठको बेची थी, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया। एक जड़ाऊ सुद्रिका थी, वह सड़कपर गोंठ लगाते हुए नीचे गिर पड़ी। इस प्रकार धन नष्ट हो जानेसे बनारसीदासके हृदयको बहुत बड़ा धक्का लगा, जिससे सन्ध्या समय जोरसे ज्वर चढ़ आया और दस लघनोंके पश्चात् पथ्य दिया गया। इसी बीच पिताके कई पत्र आये, पर इन्होंने लज्जावश उत्तर नहीं दिया। सत्य छिपाये

छिपता नहीं, अतः इनके बड़े बहनोई उत्तमचन्द जौहरीने सारी घटनाएँ जौनपुर इनके पिताके पास लिख भेजी । खड्गसेन इस समाचारको पाकर किङ्कर्तव्य विमूढ़ हो गये और पत्नीको बुरा-भला कहने लगे ।

जब बनारसीदासके पास कुछ न बचा तो गृहस्थीकी चीजोंको बेच-बेचकर खाने लगे । समय काटनेके लिए मृगावती और मनुमालती नामक पुस्तकोंको बैठे पढ़ा करते थे । दो-चार रसिक श्रोता भी आकर सुनते थे । एक कचौड़ीवाला भी इन श्रोताओंमें था, जिसके यहसे कई महीनो तक दोनों ग्राम उधार लेकर कचौड़ियों खाते रहे । फिर एक दिन एकान्तमें इन्होंने उससे कहा—

तुम उधार कौनों बहुत, अब आगे जनि देहु ।

मेरे पास कुछ नहीं, दाम कहाँसौं लेहु ॥

कचौड़ीवाला सजन था, उसने उत्तर दिया—

कहै कचौड़ीवाला नर, बीस सबैया खाहु ।

तुमसौं कोठ न कुछ कहै, जहँ भावै तहँ जाहु ॥

कवि निश्चिन्त होकर छः-सात महीने तक दोनों ग्राम भरपेट कचौड़ियाँ खाता रहा, और जब पासमें पैसे हुए तो चौदह रुपये देकर हिसाब साफ कर दिया । कुछ समयकेपश्चात् कवि अपनी ससुराल खैराबाद पहुँचा । एकान्तमें भार्यासे समागम हुआ; पतिव्रता चतुर भार्याने पतिकी आन्तरिक वेदनाको जात कर अपने अर्जित बीस रुपयोंको भेंट किया और हाथ जोड़कर कहा—“नाथ ! चिन्ता न करे, आप जीवित रहेंगे तो बहुत धन हो जायगा ।” इसके पश्चात् एकान्तमें उसने अपनी मातासे कहा—

माता काहु सौं जिनि कहौ । निज पुत्रीकी लजा बहौ ॥

थोरे दिन मैं लेहु सुधि, तो तुम मा मैं धीय ।

नाहीं तौ दिन कैकुमै, निकसि जाइगौ पीय ॥ .

ऐसा पुरुष लजालू, बड़ा । बात न कहै जात है गढ़ा ॥
 कहै माइ जिन होहि उदास । द्वैसे मुद्रा मेरे पास ॥
 गुप्त देहुँ तेरे कर माहि । जो वै बहुरि आगरे जाहि ॥
 पुत्री कहै धन्य तू माइ । मैं उनकोँ निसि वृझौं जाइ ॥

रातको जब पुनः दम्पति मिले तो उस सती-साध्वीने अपनी माँसे प्राप्त २००) रुपये भी उन्हें दे दिये और आगरे जाकर व्यापार करनेका अनुरोध किया । कविने दूसरे दिनसे ही व्यापारकी तैयारी कर दी तथा माल खरीदने लगा । इसी बीच अवकाश पर्याप्त मिला, अतः कविने नाममाला और अजितनाथ स्तुतिकी रचना यहाँ की ।

दुर्भाग्यने कविका साथ सदा दिया, अतः इस व्यापारमें भी कविको घाटा ही रहा । इसके पश्चात् कवि अपने मित्र नरोत्तमदासके यहाँ रहने लगा । कुछ दिनके पश्चात् नरोत्तम, उसके श्वसुर और बनारसीदास तीनों पटनेकी ओर चले । रातमें रास्ता भूल जानेसे एक चौरोंके ग्राममें पहुँचे । जब चौरोंके चौधरीने इन्हें देखा तो नाम-ग्राम पूछा । इस अवसरपर बनारसीदासकी बुद्धि काम कर गई और एक श्लोकमें चौधरीको आशीर्वाद दिया । श्लोकयुक्त आशीर्वाद सुनकर चौधरी कुछ मुग्ध हुआ और इन्हें ब्राह्मण समझ टण्डवत् किया तथा हाथ जोड़कर बोला—“महाराज, आप लोग रास्ता भूलकर यहाँ आ गये हैं । रातमें यहीं रहें, सबेरे आपको रास्ता बतला दिया जायगा । जब चौधरी इनको वहाँ छोड़ शयन करने चला गया तो तीनोंने सूत बटकर यज्ञोपवीत धारण किया तथा मिट्टी घिसकर त्रिपुण्ड्र लगाया—

माटी लीन्हों भूमिसों, पानी लीन्हों ताल ।
 विप्र वेप तीनों घसों, शीका कीन्हों माल ॥

इस प्रकार कविने बनारस, जैनपुर, आगरा आदि स्थानोंमें १

व्यापार किया। दो चार जगह लाम मी हुआ, पर जीवनमें धनोपार्जन कमी नहीं कर सका।

एकवार आगरा लौटते समय कुरी नामक ग्राममें कवि और कविके साथियोपर झूठे सिक्के चलानेका भयकर अपराध लगाया गया था तथा इनको और इनके साथी अन्य अठारह यात्रियोंके लिए मृत्युदण्ड देनेकी शूली भी तैय्यार कर ली गयी थी। आत्मकथामें इस संकटका विवरण रोमांचकारक है—

सिरीमाल वानारसी, अह महेशरी जाति।

करहिं मझ दोऊ जने, भई छमासी राति ॥

पहर राति जब पिछली रही। तब महेशरी ऐसी कह्यी ॥

मेरा छिहुरा भाई हरी। नाउ सुतौ ब्याहा है वरी ॥

हम आए थे यहाँ बरात। मली थाद आई यह बात ॥

वानारसी कहै रे मूढ। ऐसी बात करी क्यों गूढ ॥

तब महेशुरी यौं कहै, भयसों भूली मोहि।

अब मोकों सुमिरन भई, तू निश्चित मन होहि ॥

तब वानारसी हरपित भयो। कलूक सोच रख्यौ कह्यु गयो।

कबहुँ चित की चिन्ता भगै। कबहुँ बात झूठी लगै ॥

यो चिन्तवत भयो परभात। आइ पियादे लागे घात।

सूली है मजूरके सीस। कोतवाल भेजी उनईस ॥

ते सराह मैं डारी आनि। प्रगट पयादा कहै बखानि।

तुम उनीस प्राणी ठग लोग। ए उनीस सूली तुम भोग ॥

घरी एक बीते बहुरि, कोतवाल दीवान।

आए पुरजन साथ सब, लागे करन निदान ॥

कवि गार्हस्थिक दुर्घटनाओंका निरन्तर शिकार रहा। एकके बाद एक इनकी दो पत्नियोंकी एवं उनके नौ बच्चोंकी मृत्यु हो जानेपर कविने

अशुमोदयको ही अपनी क्षतिका कारण समझा । संवत् १६९८ में अपनी तीसरी पत्नीके साथ बैठे हुए कवि कहता है—

नौ बालक हुए मुए, रहे नारिनर दोइ ।

ज्यों तरवर पतझार हैं, रहैं मूँठसे होइ ॥

दूसरी स्त्रीकी मृत्युके उपरान्त कविने तीसरी शादी की तथा इसी बीच कविने अनेक रचनाएँ लिखीं—

चले बरात बनारसी, गये चाहँ गाय ।

वच्छा सुतकौ व्याह करि, फिर आये निजघाम ॥

अरु इस बीच कबीसुरी, कीनी बहुरि अनेक ।

नाम 'सूक्तिमुक्तावली', किए कवित सौ एक ॥

'अध्यात्म वक्तीसिका' 'पपढी' 'फाग धमाल' ।

कीनी 'सिन्धुचतुर्दशी' फूटक कवित रसाल ॥

'शिवपद्मीसी भावना' 'सहस्र अठोत्तर नाम' ।

'करम छत्तीसी' 'झूलना' अन्तर रावन राम ॥

वरनी आँखें दोइ विधि, करी 'वचनिका' दोइ ।

'अष्टक' 'गीत' बहुत किए, कहौ कहालौ सोइ ॥

इस आत्मकथामें कविने अपना ५५ वर्षोंका चरित स्पष्टता और सत्यतापूर्वक लिखा है । कविने सत्यताके साथ जीवनकी घटनाओंका यथार्थ चित्रण करनेमें तनिक भी कोर-कसर नहीं की है । वस्तुतः कविके जीवनकी घटनाएँ इतनी विचित्र हैं, जिससे पाठकोंका सहजमें मनोरंजन हो सकता है । कविमें हास्यरसकी प्रवृत्ति अच्छी मात्रामें विद्यमान है, जिससे हँसी-भजाकके अवसरोंको खाली नहीं जाने दिया है । सिनेमाके चलचित्रोंके समान मनमोहक घटनाएँ प्रत्येक पाठकके मनमें गुदगुदी उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकती । ६७५ दोहा और चौपाइयोंमें लिखी गयी इस आत्मकथामें कविको अपना चरित्र चित्रित करनेमें पर्याप्त

सफलता प्राप्त हुई है। अपनेको तटस्थ रखकर सत्कर्म और दुष्कर्मोंपर दृष्टि डालना तथा इन्हे जनताके समक्ष खोलकर कच्चे चिट्ठीके रूपमें रखना, कविका बहुत बड़ा साहस है। इसी साहसके कारण उनका यह आत्म-कथा-काव्य आजके पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानोंके लिए अनुकरणीय है। आत्मकथाकी सफलताके लिए जिन उपादानोंकी आवश्यकता है, वे सभी उपादान इसमें विद्यमान हैं। अतः यह हिन्दी साहित्यमें सबसे पुराना आत्मकथा-काव्य है। भाषाकी सरलता और शैलीका सुस्पष्ट विधान इसका प्राण है। हिन्दी ससारको इसका वास्तविक रूपमें अनुसरण करना चाहिए।

.

सातवाँ अध्याय

रीति-साहित्य

हिन्दीमें रीतिका प्रयोग लक्षण ग्रन्थोंके लिए होता है, जिस साहित्यमें काव्यके विभिन्न अगोत्रा लक्षण सोदाहरण प्रतिपादित होता है, उसे रीति साहित्य और जिस वैज्ञानिक पद्धतिपर—विधानके अनुसार यह प्रतिपादन किया जाता है, उसे रीति-शास्त्र कहते हैं। संस्कृत साहित्यमें इसे काव्य-शास्त्र कहा गया है। जैन लेखक और कवियोंने काव्य और साहित्यके विधानको रीतिके अन्तर्गत रखा है। जिस युगमें जैन साहित्यकारोंने रीति-साहित्यका विवेचन किया था, उस युगमें देशका राजनीतिक और आर्थिक परामव अपनी चरम सीमातक पहुँच गया था। भारतकी कला उत्कर्षके चरम बिन्दुपर पहुँचनेके उपरान्त अगतिकी ओर अग्रसर हो रही थी। अप्रतिहत मुगलवाहिनी पश्चिमोत्तर प्रान्तोंमें लगातार तीनबार असफल रही, जिससे धन-जनकी हानिके साथ मुगल साम्राज्यको भी भारी धक्का लगा। यद्यपि बाहरसे भारत सम्पन्न और शक्तिशाली दिखाई देता था, पर उसके भीतर क्षयका बीज अकुरित होने लग गया था। जहाँगीरकी मस्ती और शाहजहाँके अपव्यय दोनोंका परिणाम देशके लिए अहित-कर हुआ।

मुगल सम्राटोंके समान ही हिन्दू राजाओंकी स्थिति थी। बहु-पत्नीत्वकी प्रथा रहनेके कारण राजपूत राजाओंके निवासमें आन्तरिक कलह और ईर्ष्याका नग्न नृत्य होता था। अहंकारकी भावना इन राज-पूत राजाओंमें इतनी अधिक थी, जिससे पुत्र भी पिताकी हत्या करनेको तैयार था। फलतः इस विषम राजनीतिक परिस्थितिमें हिन्दू और मुसलमान

दोनों ही अपना नैतिक बल खो बैठे थे। दोनों ही निर्बाध इन्द्रियलिप्सामे रत थे। कवि और कलाकार अमीर, रईस और राजाओंके आश्रममें पहुँचकर इन्हीं उच्चवर्गके व्यक्तियोंकी कामपिपासाको उत्तेजित करनेमें संलग्न थे। उस शृंगारिक और विलासिताके युगमें बाह्य और आन्तरिक जीवनकी स्वस्थ अभिव्यक्तिका मार्ग अवरुद्ध हो चुका था। जन-साधारणकी वृत्तियों बहिर्मुखी होकर अस्वस्थ कामविलासमें ही अपनेको व्यक्त करती थीं। राजा, महाराजा और रईस बाह्य जीवनसे व्रत होकर अन्तःपुरकी रमणियोंकी गोदमें शान्तिका अनुभव करते थे। नैराश्रयने अतिशय विलासिताका रूप ग्रहण कर लिया था।

इस युगमें हिन्दू धर्मकी स्थिति और भी दयनीय थी। जीवनमें विलासिता आ जानेके कारण साधना और तत्त्वचिन्तनमें शैथिल्य आ गया था। धर्मका तात्त्विक विकास विलकुल अवरुद्ध हो गया था, भक्ति और सेवा-अर्चनोंमें ऐश्वर्य और विलासने स्थान पा लिया था। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंमें अन्धविश्वास और रूढ़ियोंने घर कर लिया था। जिससे धर्म भी शृंगार और विलासके पोषणका साधन बन गया था। भक्तिकालके राधा-कृष्ण एक साधारण नायक-नायिकाके पदपर आसीन हो गये थे। मठ और मन्दिर देवदासियोंके चरणोंकी छम-छमसे गूँजते रहते थे। जनताका बौद्धिक ह्रास हो जानेके कारण साहित्यसृष्टि और कलाकारोंको भी विलास और शृङ्गारको उत्तेजित करना आवश्यक-सा हो गया था। फलतः हिन्दी साहित्यमें नायक-नायिका-भेदपर सैकड़ों काव्य लिखे गये तथा हिन्दी कवियोंने लक्षण ग्रन्थोंके साथ शृङ्गारका खुला निरूपण किया। जीवनके मूलगत गम्भीर प्रश्नोंके समाधानकी ओर कवियोंका विलकुल ध्यान ही नहीं गया। अतएव हिन्दी रीति-साहित्यमें आध्यात्मिकताका तो पूर्ण अभाव है ही, पर प्रकृतिकी दृढ़ कठोरता भी नहीं है। जीवनकी अनेकरूपता, जो कि किसी भी भाषाके साहित्यके लिए स्थायी सम्पत्ति है इस युगके साहित्यमें उसका प्रायः अभाव है।

रीतिकालकी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने भाषा और कविता दोनोंको अलङ्कृत किया है। समयकी रचि और तदाश्रित काव्य-प्रेरणा अलङ्करणके अनुकूल थी, अतः काव्यके रूप-आकारको सजानेका पूरा प्रयत्न किया है।

हिन्दीके रीतिग्रन्थ प्रायः काव्यप्रकाश, शृङ्गार-तिलक, रसमञ्जरी, चन्द्रालोककी विषय-निरूपण-शैलीपर रचे गये हैं। विषयका पिष्ट-पेषण होनेके कारण कोई नयी उन्नावना रस, अलङ्कार या शब्द शक्तिके सम्बन्धमें नहीं हुई। संस्कृत साहित्यके समान शृङ्गारको ही रसरस मानते हुए नायक-नायिकाओंके भेद-प्रभेदोंमें ही बालकी खाल निकालकर कलाकार कवि-कर्मकी इतिश्री समझते रहे।

परन्तु जैन कलाकारोंने इस विलासिताके युगमें भी वहिर्मुखी वृत्तियोंका सकोच और अन्तर्मुखी वृत्तियोंके प्रसार-द्वारा अन्तस्के प्रकाशको प्राप्त कर चिर-सत्य एवं चिर-सुन्दरकी आधारभूमिपर आरुढ़ हो शान्तरसमें निमज्जन किया है। महाकवि बनारसीदासने शृंगारी कवियोंकी भर्त्सना करते हुए कहा है—

ऐसे मूढ कु-कवि कुधी, गहँ मृषा पथ दौर ।
रहे मगन अभिमान में, कहँ औरकी और ॥
वस्तु सरूप लखँ नहीं, चाहिज दृष्टि प्रमान ।
मृषा विलास विलोकके, करें मृषा गुनगान ॥

कविने शृंगारी कवियोंके मृषा गुनगानका विश्लेषण करते हुए बताया है—

माँस की ग्रन्थि कुछ कंचन कलस कहँ,
कहँ मुखचन्द जो सलेपमा को घर है ।
हाड के दशन आहि हीरा मोती कहे ताहि,
माँस के अधर ओठ कहे बिंबफर है ॥

हाड दम्भ भुजा कहे कौलनाल काम जुधा,
हाड ही के थंभा जंघा कहे रंभा तरु है ।
यो ही झूठी जुगति बनावैं औ कहावैं कवि,
एते पै कहैं हमें शारदाको वरु है ॥

जैन काव्यकी वैराग्योन्मुख प्रवृत्तिका विश्लेषण करनेपर निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) इसका मूलाधार आत्मानुभूति या प्रथम गुण है । इसमें पार्थिव एव ऐन्द्रिय सौन्दर्यके प्रति आकर्षण नहीं है । अपार्थिव और अतीन्द्रिय सौन्दर्यके रहस्य सकेत सर्वत्र विद्यमान है ।

(२) रागात्मिका प्रवृत्तिको उदात्त और परिष्कृत करना तथा जीवनोन्नयनके लिए तत्त्वज्ञानका आश्रय लेना । जीवन-साधना स्वानुभव या तत्त्वज्ञानके अनुभव-द्वारा ही होती है, अतः तत्त्वज्ञानको जीवनमें उतारना तथा जीवनकी वास्तविकताओसे आमने-सामने खड़े होकर टक्कर लेने में सम्पूर्ण चेतनाका उपयोग करना ।

(३) वासनाके स्थानपर विशुद्ध प्रेमको अपनाना और आदर्शवादी बलिदानकी भावनाको जीवनमें उतारना ।

(४) तरलता और छटाके स्थानपर आत्माकी पुकार एव स्वस्थ जीवन-दर्शनको उपस्थित करना ।

(५) जीवनके मूलगत प्रश्नोका समाधान करते हुए उद्बुद्ध जीवनकी गहन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओसे अभिज्ञ करना ।

(६) घोर अव्यवस्थासे क्षत-विक्षत सामन्तवादके भग्नावशेषकी छाया-में त्रस्त और पीड़ित मानवको वैयक्तिक स्फूर्ति और उत्साह प्रदान करना ।

(७) जीवन पथको, नैराश्यके अन्धकारको दूरकर आशाके संचार-द्वारा आलोकित करना एव विलास जर्जर मानवमें नैतिक बलका संचार करना ।

कविवर भूधरदासने कवियोंको बोध देते हुए बताया है कि बिना सिखाये ही लोग विषयसुख सेवनकी चतुरता सीख रहे हैं, तब रसकाव्य

रचनेकी क्या आवश्यकता ? जो कवि विषय-काव्य रचकर जनता-जनार्दनको विषयोकी ओर प्रेरित करते हैं, वे मानव-समाजके शत्रु हैं। ऐसे कुकवियोसे सत्साहित्यके 'जीवनका निर्माण और उत्थान' कभी सिद्ध नहीं हो सकता है। कामुकताकी वृद्धि करना कविकर्मके विपरीत है, अतएव कोरी शृंगारिकताको प्रश्रय देना उचित नहीं है।

राग उदय जग अन्ध भयो, सहजे सब लोगन लाज गँवाई ।
सीख विना नर सीखत है, विषयानिके सेवनकी सुघराई ॥
तापर और रचें रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निदुराई ।
अन्ध असूझनिकी अँखियान में झोंकत हैं रज रामदुहाई ॥

जहाँ शृंगारी कविरोंने स्तनोको स्वर्णकलशोकी और उनके व्यामल अग्रभागको नीलमणिकी ढँकनीकी उपमा दी है, वहाँ कवि भूधरदासने क्या ही सुन्दर कल्पना-द्वारा भावाभिव्यञ्जन किया है—

कंचन कुम्भनकी उपमा, कहि देत उरोजनको कवि वारे ।
ऊपर श्याम विलोकतके मनिनीलम ढँकनी ढँक धारे ॥
यो सत बैन कहे न कुपण्डित, ये युग आमिष पिण्ड उघारे ।
साधन झार दई मुँह छार, भये इहि हेत किधौं कुच कारे ॥

जैन साहित्यमे अन्तर्मुखी प्रवृत्तियोंको अथवा आत्मोन्मुख पुरुषार्थको रस बताया है। जबतक आत्मानुभूतिका रस नहीं छलकता रसमयता नहीं आ सकती। विभाव, अनुभाव और संचारीभाव रस-सिद्धान्त जीवके मानसिक, वाचिक और कायिक विकार हैं, स्वभाव नहीं है। रसोका वास्तविक उद्भव इन विकारोंके दूर होनेपर ही हो सकता है। जबतक कपाय—विकारोंके कारण योगकी प्रवृत्ति शुभा-शुभ रूपमें अनुरंजित रहती है, आत्मानुभूति नहीं हो सकती। शुभाशुभ परिणतियोंके नाश होनेपर ही शुद्धानुभूतिजन्य आत्मरस छलकता है, इसी

कारण लौकिक रूपमें रस-विरस है। महाकवि बनारसीदासने रसकी अलौकिकताका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—

जब सुबोध घटमें परगालै । नवरस विरस विषमता नासै ॥

नवरस लखै एक रस माहीं । तातें विरसभाव मिटि जाहीं ॥

अर्थात् जब हृदयमें विवेक—यथार्थ ज्ञानका प्रकाश होता है, तब रसोकी विरसता और विषमताका नाश हो जाता है, और निरन्तर आत्मानुभूति होने लगती है।

तीव्र राग ही क्लान्त होकर जब वैराग्यमें परिणत हो जाता है, तब आत्मचिन्तन उत्पन्न होता है और इच्छा-सुन्दर रमणियोंमें प्रीति, मूर्छा—वाद्य वस्तुओंके साथ एकमेक रूप होनेके परिणाम, काम-इष्ट वस्तु अभिलाषा, स्नेह-विशिष्ट प्रेम, गार्ह्य-अप्राप्त वस्तुकी इच्छा, अभिनन्द-इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होनेपर सन्तोष, अभिलाषा-इष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए मनोरथ, एव ममत्व—यह वस्तु मेरी है का परिष्कार होता है। रसानुभूति अलौकिक रूपसे प्रशम-रागादिकका उत्कृष्ट शम, गुणके आविर्भूत होनेपर ही होती है। जैन कवियोंकी अनुभूतिका धरातल बहुत गहरा है। इन कलाकारोंने अपनी पैनी दृष्टि ढालकर सूक्ष्म-तरल भावनाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए आत्म-सौन्दर्यको ग्रहण किया और इन्द्रिय-विलाससे दूर रहकर आत्मलोकमें विचरण करनेका प्रयास किया है।

जैन साहित्य-निर्माताओंने इसका प्रयोग आत्मानन्दके अर्थमें किया है। रसको महाकवि बनारसीदासने चिदानन्दस्वरूप माना है। समाधि या ध्यान-द्वारा जिस आनन्दकी अनुभूति होती है, वही आनन्द तत्कालके सहज साक्षात्कार-द्वारा उपलब्ध होता है। यों तो जैन साहित्यमें पुद्गलके रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चार प्रधान गुणोंमें रसको युगके रूपमें परिगणित किया है।

लौकिकरूपमें रसका प्रयोग जैनसाहित्यमें अनेक स्थलोपर हुआ है।

“रस्यन्ते अन्तरात्मनाऽनुभूयन्ते इति रसास्तत्सहकारिकारणसन्निधानेषु चेतोविकारविशेषेषु रसाः शृंगारादयः” । अर्थात् अन्तरात्मकी अनुभूति-को रस कहते हैं तथा इसमें सहकारी कारण मिलनेपर जो मनमें विकार उत्पन्न होता है, वह शृङ्गारादिरूप रस कहलाता है । इसीको स्पष्ट करते हुए कहा है—

वाह्यायांलम्बनो वस्तुविकारो मानसो नवेत् ।

स भावः कथ्यते सङ्गिः तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः ॥

अर्थात्—वाह्य वस्तुके आलम्बनसे जो मानसिक विकार उत्पन्न होता है, वह भाव कहलाता है और इसी भावके उत्कर्षको रस कहा जाता है । भगवद्भिन्नसेनने अलंकार-चिन्तामणिमें रसका स्पर्शकरण करने हुए बताया है—

अयोपशमने ज्ञानाऽऽवृत्तिर्वीर्यान्तराययोः ।

इन्द्रियानिन्द्रियैर्जावे त्विन्द्रियज्ञानमुद्भवेत् ॥

तेन संवेद्यमानो यो मोहनीयसमुद्भवः ।

रसामिव्यञ्जकः स्थायिभावश्चिद्बृत्तिपर्ययः ॥

अर्थ—ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके अयोपशम होनेपर इन्द्रिय और मनके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियज्ञान है । इस इन्द्रिय ज्ञानके संवेदनके साथ मोहनीय कर्मका उदय होनेपर विवृत चेतन्य पर्याय, जो कि स्थायी भावरूप है, रसकी अभिव्यक्ति करती है ।

स्थायी भावोंके स्वरूपका निरूपण करते हुए बताया है—

सम्मोगागोचरो बान्छाविशेषो रसिः । विकारदर्शनादिजन्यो मनोरथो हासः । स्वस्येष्टजनवियोगादिना स्वस्मिन्दुःखोत्कर्षः शोकः । गिपुकृताप-कारिणद्वेनेनसि प्रवृत्तलनं क्रोधः । कार्येषु लोकोत्कृष्टेषु स्थिरतरप्रयत्नः उत्साहः । रौद्रविलोभनादिना अनयांशद्वर्जनं भयम् । अयानां दोषविलो-

कनादिभिर्गर्हां जुगुप्सा । अपूर्ववस्तुदर्शनादिना चित्तविस्तारो विस्मयः ।
विरागत्वादिना निर्विकारमनस्त्वं शमः ।

अर्थात्—सम्भोगसम्बन्धी इच्छा विशेषको रति; विकृत वस्तुके देखने पर जो मनोविनोदकी वाञ्छा उत्पन्न होती है, उसे हास; इष्ट व्यक्तिके वियुक्त होनेपर जो शोक उत्पन्न होता है, उसे शोक; शत्रु या अन्य उप-कारीके प्रति मनमे जलन—सन्ताप उत्पन्न होना क्रोध, लोकके उत्कृष्ट कार्योंमे दृढ़ प्रयत्न करना उत्साह, भयानक वस्तुको देखकर उससे अनर्थ-की आशका करना भय; पदार्थोंके दोष देखनेसे उत्पन्न होनेवाली घृणा जुगुप्सा; अद्वितीय वस्तुके देखनेसे मनको विस्तृत करना विस्मय एवं विरक्ति आदिके द्वारा मनका निर्विकारी होना शम है ।

इन स्थायी भावोंकी अभिव्यक्त दशाका नाम रस है । वाग्भटालंकार-मे जैनाचार्यने इसी तथ्यका प्रकटीकरण करते हुए कहा है—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ।

आरोप्यमाण उत्कर्षं स्थायीभावः स्मृतो रसः ॥

अर्थात्—हमारे हृदयस्थित रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शमभाव स्थायी रूपसे निरन्तर विद्यमान रहते हैं । जब ये ही भाव अवसर पाकर—विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावोंके द्वारा उत्कर्षको प्राप्त होते हैं—जाग उठते हैं, तो रसकी अनुभूति होती है । तात्पर्य यह है कि मानव-हृदयमे सदैव प्रसुप्तावस्थामे विद्यमान रहनेवाले मनोविकारोंसे रसकी सिद्धि होती है ।

जैन साहित्य-निर्माताओंने लौकिक और अलौकिक दोनों ही अव-स्थाओंमें अनिर्वचनीय आनन्दको रस कहा है । कविता पढ़ने या सुनने और नाटक देखनेसे पाठक, श्रोता या दर्शकको अद्वितीय, सासारिक वस्तुओंमे अप्राप्य आनन्द उपलब्ध होता है, जो शब्दोंके द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है, वही काव्यमे रस कहलाता है । वस्तुतः काव्य

या साहित्यमें असाधारण आनन्दको संचारित करनेवाला रस अवश्य रहता है। निश्चय नयकी शैलीके अनुसार आत्मानुभूति ही रस है तथा साहित्यमें यही आत्मानुभूति-विद्यमान रहती है। यद्यपि मानसिक विकार और भाव जो काव्य-द्वारा उद्बुद्ध होते हैं, विरस हैं; परन्तु लौकिक दृष्टिसे ये भी आनन्दानुभूतिको ही उत्पन्न करते हैं।

जैन हिन्दी रीति साहित्यमें महाकवि बनारसीदासने अपने मौलिक चिन्तन-द्वारा रसोंके स्थायी भावोंके सम्बन्धमें नवीन प्रकाश डाला है। प्राचीन परम्परासे प्राप्त स्थायी भावोंकी अपेक्षा बनारसीदासकी कल्पना कितनी वैज्ञानिक और तथ्यपूर्ण है, यह निम्न विवेचनसे स्पष्ट है। महाकविने शृंगार रसका स्थायी भाव शोभा, हास्य रसका आनन्द, करुण रसका कोमलता, रौद्र रसका क्रोध, वीर रसका पुरुषार्थ, भयानक रसका चिन्ता, वीभत्स रसका ग्लानि, अद्भुतका आश्चर्य और शान्त रसका स्थायी भाव वैराग्य माना है। यद्यपि रौद्र, अद्भुत, वीभत्स और शान्त रसके स्थायी भाव प्राचीन परम्परासे साम्य रखते हैं, पर शेष रसोंके स्थायी भावोंकी उद्भावना बिल्कुल नवीन है।

शृंगार रसका स्थायी भाव शोभा रति स्थायी भावकी अपेक्षा

१. शोभा में शृंगार वसे वीर पुरुषारथमें,
कोमल हिये में करुणा बखानिये।
आनन्द में हास्य रुण्ड मुण्ड में विराजे रुद्र,
वीभत्स तहाँ जहाँ गिलानि मन आनिये ॥
चिन्ता में भयानक अथाहता में अद्भुत,
मायाकी अरुचि तामें शान्त रस मानिये।
ये ई नव रस भव रूप ये ई भावरूप
इनको बिलक्षण सुदृष्टि जगे जानिये ॥

२. देखें जैनसिद्धान्त भास्कर, भाग १६ किरण १।

अधिक तर्कसंगत है। क्योंकि शोभा शब्दमें जो गूढ़ अर्थ और व्यापक दृष्टिकोण निहित है, वह रतिमें नहीं। रतिको स्थायी भाव मान लेनेसे सबसे बड़ी आपत्ति यह आती है कि एक ही विषय-भोगसम्बन्धी चित्रके देखनेसे मुनि, कामुक और चित्रकारके हृदयमें एक ही प्रकारकी भावनाएँ उद्बुद्ध नहीं हो सकती। अतएव एकमात्र रतिको शृंगार रसका स्थायी भाव नहीं माना जा सकता। शोभाका सम्बन्ध मानसिक वृत्तिसे होनेके कारण इसका विशाल और व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाता है। शोभा—सौन्दर्य की ओर मन, वचन और कायकी एकनिष्ठता होनेपर ही शृंगार रसकी अनुभूति होती है। अतएव सौन्दर्यमें ही चित्तवृत्ति तल्लीन होती है, जिससे शृंगारका अनुभव होता है।

हास्य रसका स्थायी भाव आनन्द मान लेनेसे इस रसकी उत्पत्ति अधिक वैज्ञानिक मालूम पड़ती है। हँसी तो कभी-कभी ऊँचकर या खीझकर भी आती है, पर इस हँसीसे हास्यरसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। हँसना कई प्रकारका होता है, दूसरोको अवाञ्छनीय मार्गपर जाते देखकर दुःखकी स्थितिमें हँसी आ जाती है, पर यहाँ हास्य रसकी अनुभूति नहीं है। क्योंकि इस प्रकारकी हँसीमें एक वेदना छिपी रहती है। कभी-कभी कौतूहल होनेपर भी किसी ऊटपटाग कार्यको देखकर यों ही हँसी आ जाती है, परन्तु हास्य रसकी अनुभूति नहीं होती। इस प्रकारके स्थलोंमें प्रायः करुणावृत्ति हमारे हृदयमें उद्बुद्ध होती है तथा करुण रसकी ही अनुभूति होती है।

आनन्द स्थायी भाव स्वीकार कर लेनेपर उक्त दोष नहीं आता। जिन मनोरंजन और भोलेपनसे परिपूर्ण शुभ सवादोंको सुनते हैं और जिन प्रवृत्तियोंके द्वारा किसीकी हानि नहीं होती तथा मनयह्लावका वातावरण तैयार हो जाता है, उस समय आनन्दकी अवस्थामें हास्य रसकी उत्पत्ति होती है। अभिप्राय यह कि हास्यरसका सम्बन्ध वस्तुतः आनन्दसे है, केवल हाससे नहीं। जबतक अन्तस्में आनन्दका संचार नहीं होगा,

तबतक हास्य रसानुभूतिका होना सम्भव नहीं। आन्तरिक आह्लादके होनेपर ही हास्य रसानुभूति होती है, अतएव आनन्दको इस रसका स्थायी भाव मानना तर्कसंगत और वैज्ञानिक है।

प्राचीन परम्परामें करुण रसका स्थायी भाव शोक माना गया है, परन्तु महाकविने कोमलताको इसका स्थायी भाव माना है। कारण स्पष्ट है कि शोकके मूलमें चिन्ता रहती है तथा चिन्तामें भयकी उत्पत्ति होती है, अतएव केवल शोक करुण रसका संचार नहीं कर सकता है। करुणा-का शब्दार्थ दया है और दया उसी व्यक्तिके हृदयमें उत्पन्न होगी, जिसके अन्तःकरणमें कोमलता रहेगी। कोमलताके अभावमें करुणा बुद्धिका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है, अतएव करुण रसका स्थायी भाव कोमलता-को मानना अधिक तर्कसंगत है।

कोमलतामें उदारता और समरसताका समन्वय या संतुलन है। यह स्वयं अपने आपमें सरल, निर्मल और निष्कलुष है। आधुनिक मनोविज्ञान-वेत्ताओंने शोकमें अन्तर्द्वन्द्वजन्य चिन्ताका मिश्रण स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि आन्तरिक कठिनाइयोंके कारण शोकका प्रादुर्भाव होता है, जिससे करुण रसकी अनुभूति नहीं हो सकती। हाँ, कोमलतामें करुणा-वृत्तिका रहना अवश्यमावी है, अतएव शोककी अपेक्षा कोमलता ही करुण-रसका विज्ञान-सम्मत स्थायीभाव है। इस वृत्तिमें चित्तका लचीलापन विशेषरूपसे विद्यमान है।

वीररसका पुरुषार्थ स्थायी भाव मानना अधिक वैज्ञानिक है, क्योंकि उत्साह किसी कारण ठढा भी हो सकता है, किन्तु पुरुषार्थमें आगेकी ओर बढ़नेकी भावना अन्तर्निहित है। किसीके वीररस सम्बन्धी काव्यको पढ़कर उत्साहका आना न आना निश्चित नहीं है, किन्तु पुरुषार्थ—कार्य-साधनकी तीव्र लगनका उत्पन्न होना परम आवश्यक है। पुरुषार्थ एक सजीव प्रवृत्ति है, पर उत्साह अन्यपर अवलम्बित रहनेवाली भावना है।

महाकविने भयानक रसका स्थायीभाव चिन्ताको माना है; क्योंकि

किसी भयानक दृश्यको देखकर भय उत्पन्न हो ही अथवा किसीके द्वारा डराये जानेपर भयकी भावना जाग्रत हो, इसका कोई निश्चय नहीं। जब-तक चिन्ता उत्पन्न नहीं होती तबतक भय उत्पन्न नहीं हो सकता। चिन्ता शब्द भयकी अपेक्षा अधिक व्यापक है। यद्यपि चिन्ता और भय एक दूसरेके पृष्ठपोषक हैं, किन्तु चिन्ताके उत्पन्न होनेपर भयकी भावनाका जाग्रत होना आवश्यक-सा है। इस प्रकार स्थायीभावों और रसोंके विवेचनमें जैनसाहित्यकारोंने मौलिक चिन्तन उपस्थित किया है।

रसराज जैन साहित्यमें शान्तरसको स्वीकार किया है। इस रसका स्थायीभाव वैराग्य या शमको माना है; तत्त्वज्ञान, तप, ध्यान, चिन्तन, समाधि आदि विभाव हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोहके अभाव अनुभाव हैं; प्रीति, मति आदि व्यभिचारी भाव हैं। वस्तुतः न जहाँ राग-द्वेष हैं, न सुख-दुःख हैं, न उद्वेग-क्षोभ हैं और सब प्राणियोंमें समान भाव है, वहाँ शान्त रसकी स्थिति रहती है। मानव अहर्निश शान्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, उसका प्रत्येक प्रयत्न शान्तिके लिए होता है। भौतिकवाद और देहात्मवादसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती, अतएव शान्तरसको रसराज मानना समीचीन है। जिस प्रकार छोटे-छोटे निर्झर किसी समुद्रमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार सभी रसोंका समावेश शान्तरसमें हो जाता है। जैसे नदियों और झरनोंका समुद्रमें मिलना स्वभावसिद्ध है, प्रकारान्तरसे नदियोंका उद्गम स्रोत भी समुद्रका जल ही है, इसी प्रकार मानव-जीवनकी समस्त प्रवृत्तियोंका उद्गम शान्तिसे तथा समस्त प्रवृत्तियोंका विलयन भी शान्तिमें ही होता है। शान्तिका अक्षय भण्डार आत्मा है, जब यह देह आदि परपदार्थोंसे अपनेको भिन्न अनुभव करने लगती है, उस समय शान्त रसकी उत्पत्ति होती है। यह अहंकार, राग-द्वेषसे हीन, शुद्ध ज्ञान और आनन्दसे ओत-प्रोत आत्मस्थिति है। यह स्थिति चिरस्थायी है, रति, उत्साह आदि अन्य मनोदशाओंका आविर्भाव इसीमें होता है।

जैन साहित्यकारोंने वैराग्योत्पत्तिके दो साधन बतलाये हैं—तत्त्वज्ञान

और इष्टविद्योग तथा अनिष्टसंयोग । इनमें पहला स्थायी भाव है और दूसरा संचारी । आजका मनोविज्ञान भी उक्त जैन कथनका समर्थन करता है, क्योंकि इसके अनुसार रागकी क्लान्त अवस्था ही वैराग्य है । महाकवि देवने भी वैराग्यको रागकी अतिशय प्रतिक्रिया माना है । इनके मतानुसार तीव्र राग ही क्लान्त होकर वैराग्यमें परिणत हो जाता है । अतएव शान्त रसमें मनकी विभिन्न दशाओंका रहना आवश्यक है ।

डा० श्री भगवानदासने अपने रस-मीमांसा निबन्धमें शान्त रसका रसराजत्व अत्यन्त सुचारु ढंगसे सिद्ध किया है । उनका कथन है कि “इस महारसमें अन्य सब रस देख पड़ते हैं, यह सबका समुच्चय है । श्रेष्ठ और प्रेष्ठ अन्तरात्मा परमात्माका (अपने पर) परमप्रेम, महाकाम, महाशृंगार, (अकामः सर्वकामो वा...), संसारकी विदम्बनाओंका उपहास, संसारके महातमस् अन्धकारमें भटकते हुए दीन जनोंके लिए कृष्णा (संसारिणां कृष्णयाऽऽह पुराणगुह्यम्), पद्मरिपुओंपर क्रोध (क्रोधे क्रोधः कथञ्च ते), इनको परास्त करने, इन्द्रियोकी वासनाओंको जीतने, ज्ञान-दानसे दीनजनोंकी सहायता करनेके लिए उत्साह (युयोध्यस्मज्जुहराणमेन), अन्तरारि पद्मरिपु कहीं असावधान पाकर विचश न कर दें इसका भय (नरः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च), इन्द्रियोंके विषयोपर और हाड-मांसके शरीरपर जुगुप्सा (मुखं लालाक्लिन्नं पिवति चपकं सासवमिव...अहो मोहान्धानां किमिव रमणीयं न भवति), और क्रीडात्मक लीला-स्वरूप अगाध, अनन्त जगत्का निर्माणविधान करानेवाली परमात्माकी (अपनी ही) शक्तिपर महाविस्मय (त्वमेवैकोऽस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुव) ।—सभी तो इस रसके अन्तर्भूत हैं ।”

महाकवि बनारसीदासने शान्त रसका रसराजत्व सिद्ध करते हुए आत्मामें ही नचो रसोकी स्थिति स्वीकार की है । डा० भगवानदासजीने जिस प्रकार ऊपर शान्तरसको संस्कृत साहित्यके उद्धरणोंके साथ रसराज

सिद्ध किया है, उसी प्रकार जैन कविने आत्मानुभूति और मौलिक चिन्तन-द्वारा आत्मस्वरूप शान्त रसमें सभी रसोका अन्तर्भाव किया है—

गुन विचार सिंगार, वीर उद्यम उदार रख ।
करुना समरस रीति, हास हिरदै उछाह सुख ॥
अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरतै तिहि थानक ।
तन विलेच्छ बीमच्छ, दुन्द मुख दसा भयानक ॥
अद्भुत अनन्त बल चिन्तवन, सान्त सहज वैराग्य ध्रुव ।
नव-रस विलास परगास तब, सुबोध घट प्रगट हुव ॥

अर्थात्—आत्माको जान गुणसे विभूषित करनेका विचार शृंगार, कर्म निर्जराका उद्यम वीररस, सब जीवोंको अपने समान समझना करुण-रस, हृदयमें उत्साह और सुखका अनुभव करना हास्यरस, अष्ट कर्मोंको नष्ट करना रौद्ररस, शरीरकी अशुचिताका विचार करना बीमत्स रस, जन्म-मरणादिका दुःख चिन्तन करना भयानक रस, आत्माकी अनन्त शक्तिको प्राप्त कर विस्मय करना अद्भुत रस और हठ वैराग्य धारण करना तथा आत्मानुभवमें लीन होना शान्त रस है ।

वैराग्यके साधन तत्त्वज्ञान-प्राप्तिके गुणस्थानरूप चौदह सोपान बतलाये गये हैं । पर रस विश्लेषणमें चार ही सोपान प्रधान हैं । सबसे प्रथम जगत्की वास्तविकताका ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है । विभिन्न नामरूपात्मक यह जगत् मानव मनको नाना प्रलोभनों-द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है; जिससे अहंकार और ममकारका संयोग होनेसे विभिन्न मानसिक विकारोंकी उत्पत्ति होती है । जब पड़द्वयो—जड, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालका वास्तविक परिज्ञान होता है और आत्माकी (जीवकी) इन सब द्रव्योंसे भिन्नत्व प्रतीति होने लगती है, उस समय प्रथम अवस्था—चतुर्थ गुणस्थान—आत्मानुभूति रूप सम्प-ददर्शनकी स्थिति आती है । यह रस अवस्था व्यापक है, इसमें आत्म-

शोधनकी प्रवृत्ति होती है, विभावसे हटकर स्वभाव रूप प्रवृत्ति होने लगती है। ऐन्द्रियिक सुख, उसका राशि-राशि सौन्दर्य सभी क्षणिक प्रतीत होने लगते हैं। मनुष्यका रूप, गौरव, वैभव, शक्ति, अहंकार कितने क्षणभंगुर है और इनकी क्षणभंगुरतामें कितना कारुण्य विद्यमान है। अतः आत्म-दर्शनकी उत्पत्ति होना प्रथम अवस्था है।

प्रमादका, जिसके कारण सासारिक सुख-दुःख, उत्थान-पतन व्यापते हैं तथा स्वोत्थानकी प्रवृत्तिमें अनुत्साहकी भावना रहती है और आत्मोन्मुखरूप होनेवाला पुरुषार्थ ठढा पड़ जाता है, परित्कार करना और इसे दूर करनेके लिए कटिबद्ध हो जाना वैराग्यकी द्वितीयावस्था है। तत्त्वचिन्तन द्वारा ही प्रमादको दूर किया जा सकता है, अतएव आत्मानुभवी अपने पुरुषार्थ-द्वारा शान्तरसकी उपलब्धिके लिए इस द्वितीय अवस्था को प्राप्त करता है। इस अवस्थामें भी नवो रसोंकी अनुभूति होती है।

तृतीय अवस्था उस स्थलपर उत्पन्न होती है, जब कपाय वासनाओ का पूर्ण अभाव हो जाता है। पूर्ण शान्तिमें वाधक कपाये ही हैं, अतएव इनके दूर होते ही आत्मा निर्मल हो जाती है। तत्त्वज्ञानकी चौथी अवस्था केवलज्ञानके उत्पन्न हो जानेपर पूर्ण आत्मानुभूति होती है। इस अवस्थामें पूर्णगान्तरस छलकने लगता है, आत्मा ही परमात्मा बन जाती है। आनन्दसागर लहराने लगता है।

महाकवि बनारसीदासने शान्तरसकी इन चारो अवस्थाओका सुन्दर विस्लेषण किया है। कविने अखण्ड-शान्तिको ही सर्वोत्कृष्ट शान्तरस माना है।

वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावै विसराम।

रस स्वादत सुख रूपजै, अनुभव याको नाम ॥

अर्थात्—अखण्ड शान्तिका अनुभव ही सबसे बड़ा सुख है, यही रस है और इसीके द्वारा मानव अपना अमीष्ट साधन कर सकता है। सर्व-

प्राणी समभाव भी इसीसे हो सकता है। अतएव “नवमो सान्त रसनिकौ नायक” मानना युक्ति सगत है।

रस-सिद्धान्तके निरूपणमें कवि बनारसीदासने जितनी मौलिकता दिखाई, उतनी अन्य जैन कवियोंने नहीं। इन्होंने स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव इन चारों ही रसाङ्गोंका नवीन दृष्टिकोणसे विवेचन किया।

रस-सिद्धान्तपर सवत् १६७० में मानगिव कविने ‘भाषा-कवि-रस मञ्जरी’ शृङ्गाररस विषयक रचना लिखी है। इसमें रीति कालके अन्य कवियोंके समान नायिका-भेदपर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि विभाव, अनुभावोंका विच्छेपण कपाय और वासनाओंके अनेक भेद-प्रमेदोंके विवेचन-द्वारा किया है, परन्तु नवीनता कुछ भी नहीं है। शृङ्गाररस और नायिका-भेदपर मानकविकी सयोग द्वात्रिंशिका (१७३१), उदय-चन्दका अल्प रसाल (१७२८) और उदैराजका वैद्यविरहण प्रबन्ध (१७७२) भी उपलब्ध हैं।

इन जैन साहित्यकृष्णोंने रस-विच्छेपणमें मूलतः स्थायी भावोंकी स्थिति राग-द्वेष मनोविकारमें मानी है। क्योंकि समस्त मनोवेगोंका सीधा सम्यग्ध इन्हीं दोनों भावोंसे है। मानवका अहभाव इन्हीं दोनोंके रूपमें अभिव्यजित होता है। अतएव रति, हास, उत्साह और विस्मय साधारणतः अहभावके उपकारक होनेके कारण रागके अन्तर्गत और शोक, क्रोध, भय और जुगुप्सा अहभावके उपकारक होनेके कारण द्वेषके अन्तर्गत आते हैं। जब राग और द्वेष दोनोंका परिमार्जन हो जाता है, तब वैराग्य—निर्वेदभावकी उत्पत्ति होती है। यह अहभावकी समरसता की अवस्था है, आत्मा इसमें स्वोन्मुख रूपसे प्रतिभासित होने लगती है। लौकिक दृष्टिसे प्रथम चार भाव मधुर होनेके कारण सुखकी अभिव्यक्ति और दूसरे चार भाव कटु होनेके कारण दुःखकी अभिव्यक्ति करते हैं। इसप्रकार जैन लेखकोंने भावोंकी स्थिति राग और द्वेषके अन्तर्गत मान-

कर रसका विच्छेपण किया है। रससंख्या और भावोंकी संख्या रीति-कालके अन्य कवियोंके समान ही मानी है।

संस्कृत साहित्यके जैन कवियोंके समान हिन्दी भाषामे भी जैन कवियोंने अलंकारपर ग्रन्थ-रचना की है। जिस प्रकार भारतीय साहित्यमें

अलंकार अलंकार-परम्पराका भी क्रमिक विकास हुआ है

उसी प्रकार जैन साहित्यमें भी अलंकारोंका क्रमिक विकास विद्यमान है। अलंकार-चिन्तामणिमें मगधजिनसेनाचार्यने चित्रालंकार और यमकालंकारके भेद-प्रभेदोंकी संख्या पचाससे भी अधिक बताई है। हिन्दीभाषामे कुँवर-कुशालका लखपतजयसिन्धु और उत्तमचन्द्रका अलंकारआश्रय मञ्जरी प्रसिद्ध है। इन दोनों ग्रन्थोंमें अलंकार और अलंकार्यका भेद स्पष्ट किया गया है। रस (भाव), वस्तु और अलंकार तीनोंकी पृथक् स्थिति मानी गयी है। अलंकार रसका उपकार करता है—तीव्रतर बनाता है तथा वस्तुके चित्रणमें रमणीयता या आकर्षण उत्पन्न करता है। अतएव रस (भाव) और वस्तु दोनों अलंकार हैं और अलंकार उनके अलंकरणका साधन है।

रस काव्यकी आत्मा है, पर इसकी वास्तविक स्थिति अलंकारके बिना बन नहीं सकती। क्योंकि भावमें रमणीयता, कोमलता, सूक्ष्मता और तीव्रता साधारण शब्दोंके द्वारा नहीं आ सकती है। उक्तिकी चमकके द्वारा ही भावमें सौन्दर्य या रमणीयता उत्पन्न होती है। अतएव सुन्दर भावोंकी अभिव्यञ्जनाके लिए सुन्दर उक्तियोंका होना भी आवश्यक है। जैन साहित्यमें ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय साहित्यमें शब्द और अर्थको विल्कुल भिन्न नहीं माना है। अतएव अनुभूति और अभिव्यक्तिमें भी पार्थक्य नहीं है। अतः शब्दोंमें रमणीयता उत्पन्न करनेवाला साधन अलंकार काव्यकी आत्मा न होकर भी काव्यके रूप-प्रसाधनके लिए अनिवार्य है। जिस प्रकार आत्माकी रमणीयताके लिए शरीरका रमणीय होना भी आवश्यक है, उसी प्रकार भावोंकी रमणीयताके लिए शब्दोंका रमणीय

होना भी अनिवार्य है। शब्द और अर्थ दोनों सापेक्ष हैं, शब्द द्रव्य हैं तो अर्थ भाव; अतः भावके बिना द्रव्यकी स्थिति और द्रव्यके बिना भावकी स्थिति नहीं बन सकती है। दोनों ही परस्परपेक्षित हैं, एकको सुन्दर बनानेके लिए दूसरेका रमणीय होना आवश्यक है।

व्यावहारिक धरातलपर अलंकारोंके द्वारा अपने कथनको कवि या लेखक श्रोता या पाठकके मनमें भीतर तक बैठानेका प्रयत्न करता है, बातको बड़ा-चढ़ाकर उसके मनका विस्तार करता है, बाह्य वैषम्य आदिका नियोजन कर आश्चर्यकी उद्भावना करता है तथा बातको घुमा-फिराकर वक्रताके साथ कहकर पाठककी जिज्ञासाको उद्दीप्त करता है। कवि अपनी बुद्धिका चमत्कार दिखलाकर पाठकके मनमें कौतूहल जाग्रत करता है। स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, जिज्ञासा और कौतूहल अलंकारोंके आधार हैं। साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार अलंकारोंके मूर्तरूप हैं। उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि साधर्म्य-मूलक; अतिशयोक्ति, उदात्तसार आदि अतिशयमूलक; विरोध, विभावना, असंगति, व्याघात आदि वैषम्यमूलक; यथासंख्य, कारणमाला, स्वभावोक्ति आदि औचित्यमूलक, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजोक्ति आदि वक्रतामूलक एवं यमक, श्लेष आदि चमत्कारमूलक हैं। अतएव निष्कर्ष यह है कि अलंकारोंका मूलाधार अतिशय, वक्रता और चमत्कार है। इन्हीं तीनोंके कारणभेदसे अलंकारोंके सहस्रो भेद किये गये हैं।

कवि उत्तमचन्दने अभिव्यक्तिको रमणीय बनानेका सबसे प्रबल साधन प्रस्तुतविधानको बतलाया है। प्रस्तुतकी श्रीबुद्धिके लिए अप्रस्तुतका उपयोग। यह अप्रस्तुतविधान प्रधानतः साम्यपर आश्रित रहता है। साम्य तीन प्रकारका होता है—रूपसाम्य, धर्मसाम्य और प्रभावसाम्य। अलंकारोंका प्राण या आधार यही अप्रस्तुतविधान है, इससे विभिन्न रूपों और भेदोंका आलम्बन लेकर अलंकारोंकी संख्याका वितान किया

गया है। भावोंके मानवीयकरणके लिए भी अलंकारोका प्रयोग किया जाता है। इन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकारोकी संख्या २४३ मानी है। लक्षण और उदाहरण बहुत कम अलंकारोंके दिये हैं।

जैन कवियोंने रीति साहित्यके अन्तर्गत छन्दविधानको भी माना है, अतएव छन्द-शास्त्रविषयक रचनाएँ अनेक उपलब्ध हैं। स्वयंभू कविका

छन्दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है ही, इसके अतिरिक्त हेम कविका

छन्दशास्त्र

छन्दमालिका (१७०६), चेतन विजयका लघुपिंगल (१८४७), ज्ञानसारका मालापिंगल (१८७६), मेघराजका छन्दप्रकाश (१९ वीं शती), उदयचन्दका छन्द प्रबन्ध और वृन्दावनका छन्दशतक श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंमें हिन्दी और संस्कृतके सभी प्रधान छन्दोंके लक्षण आये हैं। जैन कवियोंने भिन्न-भिन्न स्वाभाविक अभिव्यक्तियोंके लिए छन्दोंका आदर्श सौँचा तैयार किया है। जितने प्रकारकी अभिव्यक्तियाँ लयके सामञ्जस्यके साथ हो सकती हैं, उनका विधान छन्दशास्त्रमें किया है।

वास्तविक बात यह है कि लयका स्थान जीवनमें महत्त्वपूर्ण है। मानवकी हृत्तन्त्रियोंके अतिरिक्त नदी, निर्झर, पेड़-पौधे, लता-गुल्म आदिमें सर्वत्र लय पायी जाती है। जीवनका सारतत्त्व लय ही है, इसी कारण उत्कट हर्ष, विपादके उच्छ्वासोंमें गुरुत्व और लघुत्वके कारण लयकी लहरे उठती रहती हैं। मधुर स्वर और लयको सुनकर मानवमात्रकी अन्तररागिनी तन्मय हुए विना नहीं रह सकती है। अतः छन्द-विधान इसी लयको नियन्त्रित करता है, यह भाषामें रागका प्रभाव, उसकी शक्ति और उसकी गतिके नियमनके साथ अन्तर स्पन्दनको तीव्रतम बनाता है। जिस प्रकार पतंग तागेके लघु-गुरु सकेतोंके अनुसार ऊँची-ऊँची उड़ती जाती है, उसी प्रकार कविताका राग छन्दके सकेतोंपर उत्तरोत्तर गतिशील होता है। नादसौन्दर्य और प्रवाहका निर्वाह छन्दमें

ही किया जा सकता है। अतएव कविताको एक सुनिश्चित मार्गपर ले चलनेके लिए जैन-साहित्यकारोंने छन्द-व्यवस्था निरूपित की है।

१९ वीं शतीके उत्तरार्धमें कविवर वृन्दावनदासने १०० प्रकारके छन्दोंके बनानेकी विधि तथा छन्दशास्त्रकी आरम्भिक बातें बड़े सुन्दर और सरल ढंगसे लिखी हैं। इतना सरल और सुपाठ्य पिगल-विषयका अन्य ग्रन्थ अबतक हमें नहीं प्राप्त हो सका है। आरम्भमें ही लघु-गुरुके पहचाननेकी प्रक्रिया बतलाता हुआ कवि कहता है—

लघुकी रेखा सरल (l) है, गुरुकी रेखा जंक (s)।

इहि क्रम सौ गुरु-लघु परखि, पढियौ छन्द निशंक ॥

कहुँ कहुँ सुकवि प्रबन्ध महँ, लघुको गुरु कहि देत।

गुरुहूँको लघु कहत है, समुझत सुकवि सुचेत ॥

आठों गणोंके नाम, स्वामी और फलका निरूपण एक ही सवैयेंमें करते हुए बताया है—

मगन तिरुगु भूलच्छि लहावत, नगन तिलघु सुर शुभ फल देत।

मगन आदि गुरु इन्दु सुजस, लघु आदि मगन जल वृद्धि करेत ॥

रगन मध्य लघु, अगिन मृत्यु, गुरुमध्य जगन रवि रोग निकेत।

सगन अन्त गुरु, वायु अमन तगनत लघु नव शून्य समेत ॥

छन्दोंमें मात्रिक और वार्षिक छन्दोंका विचार अनेक भेद-प्रभेदों सहित विस्तारसे किया गया है। लक्षणोंके साथ उदाहरण भी कविने अत्यन्त मनोज्ञ दिये हैं। अचलधृत छन्दमें १६ वर्ण माने हैं, इसमें ५ भगण और १ लघु होता है। कवि कहता है—

करम भरम वश भमत जगत नित,

सुर-नर-पशु तन धरत भमित तित।

१. सम्पादक जमनालाल जैन साहित्यरत्न और प्रकाशक मान्यखेद जैन संस्थान, मलखेड (निजाम)

सकल अथिर लखि परवश परकृत,
धरत रतन जिन भनित अचलधृत ॥

इसी प्रकार गीता प्रकरण सप्तक और दण्डक प्रकरणमें अनेक रमणीय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कविकी इस रचनासे छन्दशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करनेमें पाठकोको अत्यन्त सहूलियत होगी। अशोकपुष्पमञ्जरी छन्द, जिसमें ३१ वर्ण एक गुरु एक लघुक्रमसे होते हैं, का कितना सुन्दर और सरस निरूपण किया है।

केवली जिनेशकी प्रभावना अर्चित मित,
कंज पे रहैं सु अन्तरिच्छ पाद कंज री।
मूप और विडाल मोर व्याल बैर टाल टाल,
हैं जहाँ सुमीन है निचीत भीति मंजरी ॥
अंग-हीन अंग पाय, हर्ष सो कहा न जाय,
नैनहीन नैन पाय मंजु कंज विजरी ॥
और प्रातिहार्यकी कथा कहा कहै सुवृन्द,
थोक शोकको हरै अशोकपुष्पमंजरी ॥

इसी प्रकार अनगशेखर, जलहरन, मनहरन आदि छन्दोका सोदाहरण लक्षण १०९ पद्योंमें बतलाया गया है। हिन्दी भाषामें जैन कवियोंने छन्दो-विषयक अनेक रचनाएँ लिखी हैं, इनमें कई रचनाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

कोप विषयक हिन्दी ग्रन्थोमें महाकवि बनारसीदासकी नाममाला,
कोप कैसरकीर्तिका नामरत्नाकर, विनयसागरकी अनेकार्थ-
नाममाला और चेतनविजयकी आत्म-बोधनाममाला

प्रसिद्ध हैं।

बनारसीदासकी नाममाला^१ हिन्दी भाषाका शब्दभण्डार बढ़ानेके

१. संपादक जुगलकिशोर मुस्तार, प्रकाशक—वीर सेवामन्दिर सप्त-
सावा, जि० सहारनपुर।

लिए एक अद्व्युत कृति है इसमें ३५० विषयोंके नामोंका दोहोमें सुन्दर सञ्चलन किया गया है। नामोंमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाके शब्दोंका भी व्यवहार किया गया है। कविने विषयारम्भ करते हुए तीर्थ-करके नाम लिखे हैं—

तीर्थकर सर्वज्ञ जिन, भवनासन भगवान्।

पुरुषोत्तम आगत सुगत, संकर परम सुजान्॥

बुद्ध भारजित केवली, वीतराग अरिहन्त।

धरमधुरन्धर पारगत, जगदीपक जयवन्त॥

यद्यपि यह कोप धनजय कविकी संस्कृतनाममालासे बहुत कुछ मिलता-जुलता है, पर उसका पद्यानुवाद नहीं है। अनेक नामोंमें कविने अन्य संस्कृत कोषोंकी सहायता ली है तथा अपने शब्दज्ञान-द्वारा अनेक मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं। हिन्दी भाषाका शब्दमण्डार इसके द्वारा पूरा किया जा सकता है। कविने जिस वस्तुके नामोंका उल्लेख किया है, उसका नाम आरम्भमें दे दिया है। कोषकारकी यह शैली आशुबोधगम्य है, तथा इसके द्वारा वस्तु नामोंको अवगत करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती है। सोनेके नामोंका उल्लेख करता हुआ कवि कहता है—

हाटक हेम हिरण्य हरि, कंचन कनक सुवर्ण।

इसी प्रकार रजत, आभूषण, वस्त्र, वन, मूल, पुष्प, सेना, ध्वजा आदि विषयोंकी नामावलीका निरूपण किया गया है। इस कोपमें कुल १७५ दोहे हैं। कोशमें कविने अचमा, अडोल, अंब, आढ, आठ, धान, खौरि, चकवा, जयवत, जेहर, झण्ड, टाड, डर, तपा, तलार, नरम, पतली, पेढ आदि देशी शब्दोंका भी प्रयोग किया है।

मैया भगवतीदासकी अनेकार्थनाममाला भी एक पद्यात्मक कोश है, इसमें एक शब्दके अनेकानेक अर्थोंका दोहोमें सञ्चलन किया गया है। इस कोशमें तीन अध्याय हैं, इनमें क्रमशः ६३, १२२ और ७१ दोहे हैं।

यह कोश भी हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। रचनाशैली सरस और सुन्दर है। कविने स्वयं ही कहा है—“अर्थ अनेक जु नामकी माला अनिय विचारि” ; नमूनेके लिए गौ और सारंग शब्दके पर्यायवाच्य शब्द नीचे दिये जाते हैं—

गो धर गो तरु गो दिसा गो किरना आकास ।

गो इन्दी जल छन्द पुनि गो वार्ता जन भास ॥

—गो-शब्द

कुरकट्ट काम कुरंगु कवि कोक कंभु कोदंड ।

कंजर कमल कुटार हलु झाहु कोपु पविदंड ॥

करट्ट करसु कंहरु कमट्ट कर कौलाहल चोर ।

कंचनु काकु कपोतु अहि कंदल कलसरु नारु ॥

खगु नगु चातिगु खंग खलु खरु खोदनड कुदालु ।

भूधरु भूरुह भुवनु भगु भट्ट भेकज भरु कालु ॥

भेखु महिपु उत्तिम पुरुसु धृपु पारस पापानु ।

हिमु जमु ससि सूरजु सलिल वारह अंग वखानु ॥

द्राप कृपु कजलु पवनु मेघु सचल सब भृंग ।

कवि सु भगौर्ता उच्चई ए कहियत सारंग ॥

—सारंग

परिशिष्ट

परिशीलित ग्रन्थोंके कतिपय प्रमुख ग्रन्थ-रचयिताओंका अति संक्षिप्त परिचय

महाकवि स्वयम्भूदेव—महाकवि स्वयम्भूदेवके पिताका नाम मारुतदेव और माताका नाम पद्मिनी था। इनका समय ईस्वी सन् ७७० है। यह ग्रहस्थ थे, इनकी दो पत्नियाँ थी। एकका नाम आदित्याम्बा और दूसरीका सामिअम्बा था। पुष्पदन्तके महापुराणके टिप्पणसे अवगत होता है कि यह 'आपुली सघीय' थे। यह पहले धनञ्जयके आश्रित थे, इस समय इन्होंने पउमचरितकी रचना की थी। इसके पश्चात् इन्होंने धवलङ्गयाका आश्रय ग्रहण किया था और इस समय इन्होंने 'रिट्टणेमिचरित' का प्रणयन किया।

स्वयम्भूदेवके अनेक पुत्र थे, इनमें त्रिभुवनदेव बहुत प्रसिद्ध और सुयोग्य विद्वान् थे। यह वचनसे ही पिताके समान कविता करने लगे थे। पउमचरितमें बताया गया है कि यदि त्रिभुवनदेव न होता तो पिताके काव्योंका, कुल और कवित्वका समुद्धार कौन करता। अन्य व्यक्ति जिस प्रकार पिताके धनका उत्तराधिकार ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार त्रिभुवनने अपने पिताके सुकवित्वका उत्तराधिकार लिया। स्वयम्भूका वंश ही कवि था। इनके पिता मारुतदेव भी अच्छे कवि थे। स्वयम्भूने अपने छन्दशास्त्रमें 'तहाय माउरदेवस्स' कहकर उनके एक दोहेका उदाहरण स्वरूपमें उल्लेख किया है।

अपभ्रंश भाषाके इस महाकविने पउमचरित—जैन रामायण और रिट्टणेमिचरित ये दो महाकाव्य एवं पद्धडिसावद्ध, पचमीचरित ये दो अन्य काव्य ग्रन्थ रचे थे। इनके अतिरिक्त 'स्वयम्भूच्छन्दस' नामक अपभ्रंशका छन्द ग्रन्थ तथा अपभ्रंशका एक व्याकरण भी लिखा था। यह व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध तो नहीं है, पर रामायणमें निम्न प्रकार उल्लेख मिलता है।

तावच्चि य सच्छंदोभमह अवब्भंस-मच्च-मायंगो ।

जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुशो पढइ ॥—पउमचरिउ १-५

महाकवि पुष्पदन्त—अपभ्रंश भाषाके महान् कवि पुष्पदन्त काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे । इनके पिताका नाम केशवभट्ट और माताका नाम मुग्धादेवी था । इनके माता-पिता पहले शैव थे, फिर जैन हो गये थे और अन्तमें जैन विधिके अनुसार सन्यास लेकर शरीर त्याग किया था । अभिमानमेस, अभिमानचिह्न, काव्यरत्नाकर, कविकुलतिलक, सरस्वती निलय और कव्वपिसल्ल (काव्यपिशाच) ये इनकी उपाधियाँ थीं । इन उपाधियोंसे प्रतीत होता है कि इनका स्वभाव अभिमानी था और यह अप्रतिम प्रतिभाशाली महाकवि थे । यह पहले किसी वीरराय नामक राजा-के आश्रयमे थे । वहाँ इन्होंने काव्यरचना भी की थी, परन्तु राजाद्वारा उपेक्षित होनेपर वहाँसे चलकर क्षीणकाय मान्यखेट आये । वहाँ राष्ट्र-कूटनरेश कृष्णराज (तृतीय) के मन्त्री भरतके आश्रममे रहने लगे और यहीं पर महापुराणकी रचना की । इनकी रचनाओंसे अवगत होता है कि यह विदग्ध दार्शनिक, प्रकाण्ड सिद्धान्तमर्मज्ञ और असाधारण प्रतिभाशाली कवि थे । इनका समय ई० सन् ९५९ माना जाता है । इनकी निम्न रचनाएँ हैं । तिसट्टिमहापुरिसगुणालंकार या महापुराण महाकाव्य और णयकुमार चरिउ तथा जसहरु चरिउ खण्डकाव्य है ।

महाकवि घनारसीदास—जैनसाहित्यमे हिन्दी भाषाका इतना बड़ा अन्य कवि नहीं हुआ । इनका जन्म एक धनी मानी सम्भ्रान्त परिवारमे हुआ था । इनके प्रपितामह जिनदासका साका चलता था, पितामह मूलदास हिन्दी और फारसीके पंडित थे और यह नरवर (मालवा) मे वहाँके मुसलमान नवाबके मोदी होकर गये थे । इनके मातामह मदन-सिंह चिनालिया जौनपुरके प्रसिद्ध जौहरी थे और पिता खड्गसेन कुछ दिनोंतक बगालके सुल्तान मोदीखॉके पोतदार रहे थे । इनका जन्म जौनपुरमे माघ सुदी ११ सवत् १६४३ मे हुआ था । यह श्रीमाल वैश्य

थे। यह बड़े ही प्रतिभाशाली सुधारक कवि थे। शिक्षा सामान्य प्राप्त की थी, पर अद्भुत प्रतिभा होनेके कारण यह अच्छे कवि थे। इन्होंने चौदह वर्षकी अवस्थामें एक हजार दोहा चौपाइयोंका नवरस नामक ग्रन्थ बनाया था, जिसे आगे चलकर, इस भयसे कि ससार पथभ्रष्ट न हो, गोमतीमें प्रवाहित कर दिया था।

इनके पिता मूलतः आगरा-निवासी ही थे तथा इन्हें भी बहुत दिनों तक आगरा रहना पड़ा था। उस समय आगरा जैनविद्वानोंका केन्द्र था। इनके सहयोगियोंमें पं० रामचन्द्रजी, चतुर्भुज वैरागी, भगवती-दासजी, धर्मदासजी, कुँवरपालजी और जगजीवनरामजी विशेष उल्लेख योग्य हैं। ये सभी कवि थे। महाकवि बनारसीदासका सन्तकवि सुन्दर-दाससे सम्पर्क था। बताया गया है—“प्रसिद्ध जैनकवि बनारसीदासके साथ सुन्दरदासकी मैत्री थी। सुन्दरदास जब आगरे गये थे तब बनारसी-दासके साथ सम्पर्क हुआ था। बनारसीदासजी सुन्दरदासकी योग्यता, कविता और यौगिक चमत्कारोंसे मुग्ध हो गये थे। तभी इतनी श्लाघायुक्त कठसे उन्होंने प्रशंसा की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसी-दासजी भी थे। उनके गुणोंसे सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये, इसीसे वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी।”

महाकवि बनारसीदासका सम्पर्क महाकवि तुलसीदासके साथ भी था। एक किवदन्तीमें कहा गया है कि कवि तुलसीदासने अपनी रामायण बनारसीदासको देखनेके लिए दी थी। जब मथुरासे लौटकर तुलसीदास आगरा आये तो बनारसीदासने रामायणपर अपनी सम्मति “विराजै रामायण घट माहीं। मर्म ही होय मर्म सो जानै मूरख समझै नाहीं।” इत्यादि पद्यमें लिखकर दी थी। कहते हैं इस सम्मतिसे प्रसन्न होकर ही तुलसीदासने कुछ पद्य भगवान् पार्श्वनाथकी स्तुतिमें लिखे हैं। ये पद्य शिवनन्दन द्वारा लिखित गोस्वामीजीकी जीवनीमें प्रकाशित हैं। इनकी निम्न रचनाएँ हैं—

१. नाममाला—एक सौ पचहत्तर दोहोंका छोटा-सा शब्दकोष है। इसकी सं० १६७० में जौनपुरमें रचना की थी।

२. नाटक-समयसार—यह कविवरकी सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण रचना है। इसकी रचना संवत् १६९३ में आगरामें की गयी थी।

३. बनारसी विलास—इसमें ५७ फुटकर रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसका संकलन संवत् १७०१ में पं० जगजीवनने किया था।

४. अर्द्धकथानक—इसमें कविने अपनी आत्मकथा लिखी है। इसमें संवत् १६९८ तककी सभी घटनाएँ दी गयी हैं।

मैया भगवतीदास—यह आगराके निवासी थे। ओसवाल जैनी और कटरिया गोत्रके थे। इनके पिताका नाम लालजी था और दशरथ साहू इनके पितामह थे। इनके जन्मसंवत् एवं मृत्युसंवत्के सम्बन्धमें कुछ पता नहीं है। हों इनकी रचनाओंमें संवत् १७३१ से १७५५ तकका उल्लेख मिलता है। वि० सं० १७११में हीरानन्दजीने पंचास्तिकायका अनुवाद किया था, उसमें उन्होंने आगरामें एक भगवतीदास नामक व्यक्तिके होनेका उल्लेख किया है। सम्भवतः मैया भगवतीदास ही उक्त व्यक्ति थे। इन्होंने कविता में अपना उल्लेख मैया, भविक और दास-किशोर उपनामोंसे किया है। इनकी समस्त रचनाओंका संग्रह ब्रह्मविलासके नामसे प्रकाशित है। यह बनारसीदासके समान अव्यात्मरसिक कवि थे। इनकी कवितामें प्रसादगुण एवं अलंकार सर्वत्र पाये जाते हैं। उर्दू और गुजराती भाषाका घुट भी इनकी रचनाओंमें विद्यमान है। थोड़े शब्दोंमें गहन अर्थ और परिष्कृत भावनाओंका निरूपण करना इनकी कविताकी प्रमुख विशेषता है। सरसता और सरलता इनके काव्यका जीवन है।

ब्रह्मगुलाल—यह पद्मावती पुरवाल जातिके थे। यह चंदवार (फिरोजाबाद, जिला आगरा)के पास टापू नामक ग्रामके निवासी थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ कृष्णजगादनचरित्र है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिसे अवगत होता है कि कविवर ब्रह्मगुलालजी भट्टारक जगभूषणके शिष्य थे।

टापू गोंवके राजा कीरतसिंह थे, यहीपर धर्मदासजीके कुलमे मथुरामल्ल थे । यह ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें प्रसिद्ध थे । कविने इन्हींके उपदेशसे सगुण मार्गका निरूपण करनेके लिए सवत् १६७१मे इस ग्रन्थकी रचना की थी । यह अच्छे कवि थे । भापापर इनका अच्छा अधिकार था ।

आनन्दघन या घनानन्द—यह श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध सन्त कवि हैं । यह उपाध्याय यशोविजयजीके समकालीन थे । यशोविजयका जन्म सवत् १६८० बताया जाता है, अतः इनका काल भी वही है । हिन्दीमें इनकी 'आनन्दघनवहत्तरी' नामक कविता उपलब्ध है, यह रामचन्द्र काव्यमालामें प्रकाशित है । यह आध्यात्मिक कवि थे । इनकी रचनाओंमें समतारस और शान्तिरसकी धारा अवश्य मिलती है । रचनाएँ हृदयको स्पर्श करती हैं ।

यशोविजय—यह भी श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य हैं । इनका जन्म सवत् १६८० और मृत्यु सवत् १७४५ के आसपास हुई थी । यह गुजरातके डभोई नामक नगरके निवासी थे । यह नयविजयजीके शिष्य थे । संस्कृत, प्राकृत, गुजराती और हिन्दी भाषामें कविता करते थे । संस्कृत भाषामें रचे गये इनके अनेक ग्रन्थ हैं । यह गुजराती थे, पर विद्याभ्यासके सिलसिलेमें इन्हें काशी भी रहना पड़ा था । इसी कारण यह हिन्दीमें भी उत्तम कविता करते थे । इनके ७५ पदोंका एक सग्रह 'जसविलास'के नामसे प्रकाशित है । इनकी कवितामें आध्यात्मिक भावोंकी बहुलता है । भाषा आढम्बर शून्य है, पर भाव ऊँचे हैं ।

खेमचन्द्र—यह तापगच्छकी चन्द्रशाखाके पण्डित थे । इनके गुरुका नाम शुक्तिचन्द्र था । आपने नागर देशमें संवत् १७६१ मे 'गुणमाला चौपई' अथवा 'गजसिंहगुणमालाचरित'की रचना की है । यह ग्रन्थ अभी-तक अप्रकाशित है । इसकी जो प्रति जैनसिद्धान्त भवन आरामे सुरक्षित उसका लिपिकाल सं० १७८८ है । इनकी कवितामें वर्णनोंकी विशेषता है । भापापर गुजरातीका बहुत बड़ा प्रभाव है । इनकी अन्य रचनाएँ अज्ञात हैं ।

भूधरदास—कविवर भूधरदास आगराके निवासी थे। इनकी जाति खण्डेलवाल थी। इनका समय अनुमानतः १७ वीं शतीका अन्तिम भाग या १८ वीं शतीका प्रारम्भिक भाग है। इनके द्वारा रचित पार्श्वपुराणकी प्रतिका लिपिकाल १७५४ है, अतः यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इनका समय १८ वीं शतीका पूर्वार्द्ध ही सम्भव है। इनकी कविता उच्चकोटिकी होती है। श्री प्रेमीजीने इनकी कविताके सम्बन्धमें लिखा है—“हिन्दीके जैन साहित्यमें पार्श्वपुराण ही एक ऐसा चरित ग्रन्थ है, जिसकी रचना उच्चश्रेणीकी है, जो वास्तवमें पढ़ने योग्य है और जो किसी संस्कृत प्राकृत ग्रन्थका अनुवाद करके नहीं, किन्तु स्वतन्त्र रूपमें लिखा गया है। इनकी सभी रचनाओंमें कवित्व है। निम्न तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—१—पार्श्वपुराण (महाकाव्य)—इसमें भगवान् पार्श्वनाथका जीवन वर्णित है। २—जैनशतक—यह नीतिविषयक सुन्दर रचना है। इसमें २०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय हैं। ३—पदसंग्रह—इसमें ८० पदोंका संकलन है।

द्यानतराय—यह कवि आगराके निवासी थे। इनका जन्म अग्रवाल जातिके गोयल गोत्रमें हुआ था। इनके पूर्वज लालपुरसे आकर आगरामें बस गये थे। इनके पितामहका नाम वीरदास और पिताका नाम श्यामदास था। इनका जन्म संवत् १७३३ में हुआ था और विवाह संवत् १७४८ में हुआ था। विवाहके समय इनकी अवस्था १५ वर्षकी थी। उस समय आगरामें मानसिंहजीकी धर्मशैली थी। कवि द्यानतरायने उसने लाम उठाया था। कविको प० विहारीदास और प० मानसिंहके धर्मोपदेशसे जैनधर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। इन्होंने संवत् १७७७ में श्री सम्मेदशिखरकी यात्रा की थी। इनका महान् ग्रन्थ धर्मविलासके नामसे प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थमें इनकी समस्त कविताएँ संगृहीत हैं, यह संकलन संवत् १७८० में कविने स्वयं किया है। इस संकलन में ३३३ पद संग्रहीत हैं, जो स्वयं एक बृहद्काव्य ग्रन्थका रूप ले सकते हैं।

पूजाओंके अतिरिक्त ४५ विषयोंपर इनकी फुटकर कविताएँ हैं। इनकी कविताएँ नीति और उपदेशात्मक अधिक हैं। भाषापर उर्दूका प्रभाव है। विचार और भावनाएँ सुलझी हुई हैं। ससारका जीता-जागता चित्र देखिए—

रुजगार बनै नाहिं धन तौ न घर माहिं
खानेकी फिकर बहु नारि चाहै गहना ।
देनेवाले फिरि जाहिं मिलै तो उधार नाहिं,
साक्षी मिलैं चोर धन आवै नाहिं लहना ।
कोऊ पूत ज्वारी भयौ घर माहिं सुत थयौ,
एक पूत मरि गयौ ताको दुःख सहना ।
पुत्री घर लोग भई व्याही सुता जम लई,
एते दुःख सुख जानै तिसे कहा कहना ॥

वृन्दावन—कवि वृन्दावनका जन्म शाहावाद जिलेके बारा नामक गाँवमें सन् १८४८ में हुआ था। आप गोरखगोत्रीय अग्रवाल थे। कविके वंशधर बारा छोड़कर काशीमें आकर रहने लगे थे। कविके पिताका नाम धर्मचन्द्र था। १२ वर्षकी अवस्थामें वृन्दावन अपने पिताके साथ काशी आये थे। काशीमें यह लोग बाबर गद्दीदकी गलीमें रहते थे।

वृन्दावनकी माताका नाम सितावी और स्त्रीका नाम रुक्मिणी था। इनकी पत्नी बड़ी धर्मात्मा और पतिव्रता थी। इनकी ससुराल भी काशीके ठंढेरी बाजारमें थी। इनके श्वसुर एक बड़े भारी धनिक थे। इनके यहाँ उस समय टकसालाका काम होता था। एक दिन एक किरानी अंग्रेज इनके श्वसुरकी टकसाला देखनेके लिए आया। वृन्दावन भी उस समय वहीं उपस्थित थे। जब उस किरानी अंग्रेजने इनके श्वसुरसे कहा—“हम तुम्हारा कारखाना देखना चाहते हैं, कि उसमें कैसे सिके तैयार होते हैं। वृन्दावनने उस अंग्रेज किरानीको फटकार दिया और उसे टकसाला नहीं दिखलायी। वह अंग्रेज नाराज होता हुआ वहाँसे चला गया।

द्वैयोगसे कुछ दिनोंके उपरान्त वही अंग्रेज किरानी काशीका कलेक्टर होकर आया। उस समय वृन्दावन सरकारी खजांचीके पदपर आसीन थे। साहब बहादुरने प्रथम साक्षात्कारके अनन्तर ही इन्हें पहचान लिया और मनमें बदला लेनेकी बलवती भावना जाग्रत हुई। यद्यपि कविवर अपना कार्य बड़ी ईमानदारी, सच्चाई और कुशलतासे सम्पन्न

करते थे, पर जब अफसर ही विरोधी बन जाय, तब कितने दिनोंतक कोई बच सकता है। आखिरकार एक जाल बनाकर साहबने इन्हें तीन वर्षकी जेलकी सजा दे दी। इन्हें शान्तिपूर्वक उस अग्रजके अत्याचारोंको सहना पड़ा।

कुछ दिनोंके उपरान्त एक दिन प्रातःकाल ही कलक्टर साहब जेलका निरीक्षण करने गये। वहाँ उन्होंने कविको जेलकी एक कोठरीमें पड़ासन लगाये निम्न स्तुति पढ़ते हुए देखा।

‘हे दीनबन्धु श्रीपति कृष्णनिधानजी।

अब मेरी व्यथा क्यों न हरो बार क्या लगी ॥’

इस स्तुतिको बनाते जाते थे और मैरवीमें गाते जाते थे। कविता करनेकी इनमें अपूर्व शक्ति थी, जिनेन्द्रदेवके ध्यानमें मग्न होकर धारा प्रवाह कविता कर सकते थे। अतएव सदा इनके साथ दो लेखक रहते थे, जो इनकी कविताएँ लिपिबद्ध किया करते थे। परन्तु जेलकी कोठरीमें अकेले ही ध्यान मग्न होकर भगवान्‌का चिन्तन करते हुए गानेमें लीन थे। इनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित हो रही थी। साहब बहुत देरतक इनकी इस दशाको देखता रहा। उसने “खजाची बाबू। खजाची बाबू” कहकर कई बार पुकारा; पर कविका ध्यान नहीं टूटा। निदान कलक्टर साहब अपने आफिसको लौट गये। थोड़ी देरमें एक सिपाहीके द्वारा इनको बुलवाया और पूछा “तुम क्या गाटा और रोटा था।” वृन्दावनने उत्तर दिया—‘अपने भगवान्‌से तुम्हारे अत्याचारकी प्रार्थना करता था। साहबके अनुरोधसे वृन्दावनने पुनः “हे दीनबन्धु श्रीपति” विनती उन्हें सुनायी और इसका अर्थ भी समझाया। साहब बहुत प्रसन्न हुआ और इस घटनाके तीन दिनों बाद ही कारागृहसे इन्हें मुक्त कर दिया गया। तभीसे उक्त विनती सकटमोचनस्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हो गयी है। इनके कारागृहकी घटनाका समर्थन इनकी कवितासे भी होता है।

‘श्रीपति मोहि जान जन अपनो,

हरो विघन दुख दारिद जेल।’

कहा जाता है कि राजघाटपर फुटही कोठीमें एक गार्डन साहब सौदागर रहते थे। उनकी एक बड़ी भारी दुकान थी। आपने कुछ दिन तक इस दुकानकी मैनेजरीका भी कार्य किया था। यह अनवरत कविता रचनेमें लीन रहते थे। जब यह जिनमन्दिरमें दर्शन करने जाते तो प्रति-

दिन एक विनती या स्तुति रचकर ही भगवान्‌के दर्शन करते । इनके साथ देवीदास नामक व्यक्ति रहते थे । इन्हें पञ्चावती देवीका इष्ट था । वह शरीरसे भी बड़े बली थे । बड़े-बड़े पहलवान भी इनसे भयभीत रहते थे । इनके जीवनमें अनेक चमत्कारी घटनाएँ घटी हैं । इनके दो पुत्र थे अजितदास और शिखरचन्द । अजितदासका विवाह आरामे दाबू मुन्नीलालजीकी सुपुत्रीसे हुआ था । अतः अजितदासजी आरा ही आकर बस गये । यह भी पिताके समान कवि थे । इनकी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं । इनके द्वारा रचित निम्न ग्रन्थ है—प्रवचनसार, तीस चौबीसी पाठ, चौबीसी पाठ, छन्दशतक, अर्हत्यासाकैवली और वृन्दावनविलास (फुटकर कविताओंका सङ्कलन) इनके द्वारा रचित एक जैन रामायण भी है जिसकी अधूरी प्रति आराके एक सज्जनके पास है ।

बुधजन—इनका पूरा नाम विरधीचन्द्र था । यह जयपुरके निवासी खण्डेलवाल जैन थे । यह अच्छे कवि थे । इनका समय अनुमानतः उन्नीसवीं शताब्दीका मध्यभाग है । कविता करनेकी अच्छी प्रतिभा थी । इनके द्वारा विरचित निम्न चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं १—तत्त्वार्थबोध (१८७१), २—बुधजनसतसई (१८८१), पञ्चास्तिकाय (१८९१) और बुधजनविलास (१८९२) । इनकी भाषापर मारवाड़ीका प्रभाव है । किन्तु पदोंकी भाषा तथा बुधजन सतसईकी भाषा हिन्दी है ।

मनरंग—इनका पूरा नाम मनरंगलाल है । यह कन्नौजके निवासी पल्लीवाल थे । इनके पिताका नाम कन्नौजीलाल और माताका नाम देवकी था । कन्नौजमें गोपालदासजी नामक एक धर्मात्मा सज्जन निवास करते थे । इनके अनुरोधसे ही इन्होंने चौबीसीपाठकी रचना की थी । इस प्रसिद्ध पाठका रचनाकाल सवत् १८५७ है । इसके अतिरिक्त इनके ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं—नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसन चरित्र, सप्तर्षि पूजा एवं शिखरसम्मेदाचलमाहात्म्य । शिखरसम्मेदाचलमाहात्म्यका रचनाकाल सवत् १८८९ है ।

अनुक्रमणिका

ग्रन्थकार एवं कवि

अ	च
अगरचन्द नाहटा १३७	चेतनविजय २३८, २४०
अब्दुल रहमान २१	ज
अमय कवि ३९	जगन्नाथराय ३२
अमयदेव सुरि २१	जायसी ३१, ३२, ३३
अम्बदेव ४१	जिनदत्त सुरि १३३
आनन्दधन ८४, १२७, १८१	जिनप्रभ सुरि १३२
ई	जिनसागर सुरि १३६
ईश्वर सुरि ४१	जिनसिंह सुरि १३६
उ	जिनसेन २२६, २३६
उत्तमचन्द्र २३६	जोधराज गोदिया ७०
उदयचन्द्र २३५, २३८	ज्ञानविजय ७०
उदैराज २३५	ज्ञानसार २३८
क	ङ
कबीरदास ८४, १०७, ११०, १११, ११२, १२७, १९९	डाक्टरास १८१
कुँवर कुशाल २३६	त
कुमारपाल ३९, ४०	तुलसीदास ३१, ३४, ३५, ३६, १०७, १२१, १२२, १२३, १२७, १००
कृष्ण द्वैपायन १२९	तैलव ३९
कैसरकौत्ति २४०	त्रिभुवनदेव २१, ४३

द		२०८, २१४, २१५, २२२,
		२२५, २२८, २४०
दादू	१०७	
देवचन्द्र	६१	विहारी ३८
दौलतराम	७४, ७८, ९१, ९३, ९९, १०८, ११०, ११३, १२७, १८१	बुभजन ७४, ७५, १००, ११६, १२०, १२७, १८१
	२०५	कृन्द १९९
ज्ञानतन्त्र	८९, ९०, ११६, १८१, १८७, १८९, १९२	कृन्दावन १०२, १२२, २३८, २३९
ध		ब्रह्मगुलाल ५७
		ब्रह्मजिनदास २२
धनपाल	२१, ३३	भ
धर्मसूत्र	४१, ५५	भगवानदास २३२
धवल	०१	भैरवलाल नाट्टा १३७
घाट्ट कवि	०१	भागचन्द्र ७४, ७५, ७८, ९९, ११७, १२७
न		भारमल ७०
नयमल	७०	भृघरदास ४१, ४३, ७९, ८७, ८९, ११०, १११, ११४, १२०, १२७, १८१, १९५, २२३, २२४
नयनन्दि	४३, ४८	भैया भगवतीदास ५७, ७६, ८२, ८४, १४०, १५७, १६५, १६८, १७३, १८१, १८५
नवलशार	६८	भोज ३९
प		म
पञ्चकीर्ति	४३	मनरगलाल ५९
परिमल कवि	६६	मल्लकदास १०७
पुष्पदन्त	२१, ३७, ४३, ५४	माइल्लधवल २१
प्रसाद [जयशंकर]	१२७	
य		
वनारसीदास	२२, ७४, ७८, ८०, १०८, १२४, १२७, १४०, १४७, १५२, १५५, १८१,	

मानकवि	२३५	विजयसूरि	४१
मानशिव	२३५	विद्यापति	३१, ११५
मालकवि	४१	विनयचन्द्र	४१
मीरा	१०७	विनयसागर	२४०
मुख	३९	विनयसूरि	४३
मेवराज	२३८	विनोदीलाल	२०१
य		श	
यद्योविजय	८६	श्रीचन्दमुनि	२१
योगचन्द्र	२१	स	
र		सागरदत्त	२१
रत्नसेन	३२	सूरदास ३७, ३८, १०७, ११५,	
रविदास	१०७	११७, ११८, ११९, १२१,	
रहीम	१९९	१२७	
रामसिंह मुनि	२१	सेवाराम	७०
रामानन्द	३४	सोमप्रभ	३९, १८२
रायमल्ल	७०	त्वयम्भू	२१, ३४, ३५, ४३
राहुल साहत्यायन ३४,	३५	ह	
रूपचन्द्र	२२, १८१	हेमकवि	२३८
स		हेमचन्द्र	२१, ३७, ३८
वर्द्धमान सूरि	२१	हेमविजय	२२
विजयभद्र	४१	हीरालाल कवि	६७

ग्रन्थोंकी अनुक्रमणिका

अ		उपदेश शतक	१८१.
अक्षरवत्तीसी	१४०	उपशम पञ्चीसिका	१४०
अक्षरवत्तीसिका	१८१	ऐ	
अंजनासुन्दरीरासा	५३, ५५	ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह	१३७
अध्यात्म वत्तीसी	१४०, १८१	क	
अध्यात्म हिंडोलना	१५५	कथाकोप	२१
अनादि वत्तीसिका	१४०, १८१	कर्मलुत्तीसी	१८१
अनित्य पञ्चीसी	१८५	काव्यप्रकाश	२२२
अनूप रसाल	२३५	कुमारपालप्रतिबोध	३९, ४०, ५३
अनेकार्थ नाममाला	२४०	कृपणचरित	४१, ५३
अपभ्रंशदर्पण	३२	कृपणजगावन काव्य	५७
अर्धकथानक	२०८	ग	
अलकारचिन्तामणि	२२६, २३६	गजसिंह गुणमाल चरित	६४
अलकारआशयमंजरी	२३६	गुणमंजरी	१८१
आ		गुरुपदेश श्रावकाचार	१८१
आतमबोध नाममाला	२४०	गौतमरासा	२२, ५३
आदिनाथ पुराण	२२	च	
आदिपुराण	४८		
आनन्दवहत्तरी	१८१	च	
आराधनाकथाकोष	२१, ७०	चन्द्रप्रभचरित	६७
आश्चर्य चतुर्दशी	१८१	चन्द्रालोक	२२२
उ		चारदत्तचरित	७०
उत्तरपुराण	४८	चेतनकर्मचरित्र	१४०, १५७

	छ	धर्मचौरी	१८१
छन्दप्रकाश	२३८	धर्मरहस्यवाचनी	१८१
छन्दप्रबन्ध	२३८	त	
छन्दमालिका	२३८	नयचक्र	२१
छन्दशतक	२३८, २३९	नवरस	२१०
छद्दाला	१८१, २०५, २०७	नागकुमारचरित	५३, ५४, ७०
ज		नाटकपञ्चीशी	१४०
जम्बूचरित	५३	नाटकसम्यसार	१४०
जम्बूस्वामीचरित	२१	नाममाळा	२४०
जम्बूस्वामीरासा	४१, ५३, ५५	नाम्नकाकर	२४०
जयतिमुवनगाथास्तोत्र	२१	निधिमोक्षणकथा	७०
जयविलाससंग्रह	८६	नेमिचन्द्रिका	५१
जायसीग्रन्थावली	३३	नेमिनाथचटपट्ट	४१, ५३
जैवचरचरित	७०	नेमिराजुल्लारङ्गमाळा	२०२
जैनशतक	१८१	नेमिव्याह	२०१
ज्ञानपञ्चीशी	१४०, १८१	प	
ज्ञानवाचनी	१४०, १८१, १८३, १८५	पठरुचरित-रामायण	२१, २९, ३०,
त		३१, ३४, ३५, ३६, ४३, ४८	
तिसट्टिमहापुरिसुणालंकार	२०, ४३,	पद्ममी चरित	५३
	४८	पद्मेन्द्रिय संग्रह	१४०, १६१
तेरहकाठिया	१४०, १४७	पद्मपुराण	४१
द		पद्मावत	३१, ३६, ३४
दर्शनकथा	७०	पद्मिनीचरित	२१
ध		परमात्मछत्तीसी	१४०
धन्यकुमारचरित	५३	परमात्मप्रकाश	२१
धर्मदत्तचरित	५३	परमार्थदत्तक दोहा	१८१

पार्श्वपुराण	४१, ४३, ५०	महाभारत	१२९
पुण्यासवकथाकोष	७०	मालापिंगल	२३८
पुण्यपञ्चीसिका	१८१	मिथ्यात्वविध्वसनचतुर्दशी	१४०
पूरणपञ्चासिका	१९२	मोक्ष पैढी	१४०, १८१
प्रद्युम्नचरित	७०	य	
प्रबन्धचिन्तामणि	३९, ४०	यशोधर चरित्र	४१, ५३, ५४
व		योगसार	२१
वरवै	१४०	र	
वाहुबलीरास	५३	रामचरितमानस	३१, ३५, ३६
बुधजनसतसई	१८१, १९९	रामायण	३४
ब्रह्मविलास	८२	रसमीमासा	२३२
भ		रसमजरी	२२२
भवसिन्धु चतुर्दशी	१४०, १५२	रिट्टणेभिचरिड	४३
भविष्यदत्तचरित	७०	रेवन्तगिरिरासा	४१, ५३
भविस्यत्तकहा	२१, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३६	ल	
भाषाकवि रसमजरी	२३५	लखपतबयसिन्धु	२३६
भूधरपदसंग्रह	८७	लघुपिंगल	२३८
भूधरशतक	१९४, १९५	लघुसीतासतु	५७
भोजप्रबन्ध	३९, ४१	ललितागचरित्र	४१, ५३
म		व	
मधुबिन्दुक चौपाई	१४०, १७३	वर्द्धमान चरित	१८१
मनवत्तीसी	१४०, १८१	विवेकवीसी	१८१
मलयचरित	७०	वैद्यविरहार्ण प्रबन्ध	२३५
मल्लिनाथ महाकाव्य	४३	वैरसासिचरिड	२९
महापुराण	२१, ३७	वैराग्यपञ्चीसिका	१८१
		व्यसनत्यागषोडश	१८१

व्योहारपञ्चीसी	१८१, १९०	सुखवत्तीसी	१८१
श		मुदर्शनचरित्र	४३, ४८, ४९, ७०
शतअष्टोत्तरी	१६५	मुबोधपंचासिका	१८१
शान्तिनाथपुराण	७०	मुलसाख्यान	२१
शिवपञ्चीसी	१४०-१८१	सक्तिमुक्तावली	१८१, १८२
शिक्षावली	१८१	सूत्रावत्तीसी	१४०
शीलकथा	७०	सोलहतिथि	१४०
शृंगार तिलक	२२२	संवपतिसमरारासा	२२, ४१, ५३
श्रीपालचरित	४१, ६६	सयोगद्वात्रिंशिका	२३५
श्रेणिकचरित	२२, ४१	स्वप्नवत्तीसी	१४०, १८१
स		स्वयम्भूराभाषण	३४
सज्जनगुणदशक	१८१	ह	
सन्देहरासक	२१		
सप्तश्रेत्ररासा	२२, ४१	हनुमन्चरित	७०
सप्तव्यसनचरित	७०	हरिवंशचरित—कृष्णचरित	२९, ३०
सम्यक्त्वकौमुदी	७०	हरिवंशपुराण	२१, ४१, ४३
सिद्धचतुर्दशी	१४०	हिन्दीकाव्यधारा	३४

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय		श्री हरिवंशराय वखन	
जेरो-शायरी [द्वि० स०]	८)	मिलनयामिनी [गीत]	४)
शेरो-मुखन [पौचौभाग]	२०)	श्री अनूप शर्मा	
जैन-जागरणके अग्रदूत	५)	वर्द्धमान [महाकाव्य]	६)
गहरे पानी पैठ	२॥)	श्री रामगोविन्द त्रिवेदी	
जिन खोजा तिन पाइयो	२॥)	वैदिक साहित्य	६)
श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर		श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य	
आकाशके तारे : धरतीके फूल	२)	भारतीय ज्योतिष	६)
जिन्दगी सुसकराई	४)	हिन्दी-जैन-साहित्य-परिणीलन	२॥)
श्री मुनि कान्तिसागर		श्री नारायणप्रसाद जैन	
खण्डहरोका वैभव	६)	ज्ञानगंगा [सूक्तियों]	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	४)	श्रीमती शान्ति एम० ए०	
डॉ० रामकुमार वर्मा		पञ्चप्रदीप [गीत]	२)
रजतरिमि [नाटक]	२॥)	श्री 'तन्मय' बुखारिया	
श्री विष्णु प्रभाकर		मेरे वापू [कविता]	२॥)
सधर्पके बाद [कहानी]	३)	श्री बैजनाथसिंह विनोद	
श्री राजेन्द्र यादव		द्विवेदी-पत्रावली	२॥)
खेल-खिलौने [कहानी]	२॥)	श्री भगवत्शरण उपाध्याय	
श्री मधुकर		कालिदासका भारत [१-२]	८)
भारतीय विचारधारा	२)	श्री गिरिजाकुमार माथुर	
श्री रावी		धूपके धान	३)
पहला कहानीकार	२॥)	श्री सिद्धनाथकुमार एम० ए०	
श्री लक्ष्मीशंकर व्यास		रेडियो नाट्य शिल्प	२॥)
चौलुक्य कुमारपाल	४)	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	
श्री सम्पूर्णचन्द्र		हमारे आराध्य	३)
हिन्दू विवाहमें कन्या-		सस्मरण	३)
दानका स्थान	१)	रेखाचित्र	४)
		प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी	
		शरतके नारीपात्र	४॥)

ज्ञानपीठके महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकाशन

पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर		पं० के० भुजबली शास्त्री	
महावन्ध [१]	१२)	कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय	
जैन शासन [द्वि० स०]	३)	ग्रन्थसूची	१३)
पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री		प्रो० हरिदामोदर बेलणकर	
महावन्ध [२, ३, ४]	३३)	सभाप्य रत्नमञ्जूषा	२)
सर्वार्थसिद्धि	१२)	पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी	
पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य		नाममाला [सभाप्य]	३॥)
तत्त्वार्थवृत्ति	१६)	प्रो० ए० चक्रवर्ती	
तत्त्वार्थराजवार्तिक [१]	१२)	समयसार [अंग्रेजी]	८)
न्यायविनिश्चय विवरण		थिरकुरल [तामिल लिपि]	५)
[भाग १-२]	३०)	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	
पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य		करलम्बण [द्वि० स०]	॥)
आदिपुराण [भाग १]	१०)	श्री भिक्षु धर्मरक्षित	
आदिपुराण [भाग २]	१०)	जातकट्टकथा [पाली]	९)
उत्तरपुराण	१०)	श्री कामत्ताप्रसाद जैन	
धर्मशर्माभ्युदय	३)	हिन्दी जैनसाहित्यका	
पं० हीरालाल शास्त्री, न्यायतीर्थ		संक्षिप्त इतिहास	२॥=)
वसुनन्दि-श्रावकाचार	५)	श्रीमती रमारानी जैन	
जिनसहस्रनाम	४)	आधुनिक जैनकवि	३॥)
पं० राजकुमार जैन साहित्याचार्य		पं० गुलाबचन्द्र व्याकरणाचार्य	
मदनपराजय	८)	पुराणसारसंग्रह [भाग १-२]	४)
अध्यात्म-पदावली	४॥)	पं० शोभाचन्द्र भारिखल	
पं० नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य		कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न	२)
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	४)	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	
		मुक्तिदूत [उपन्यास]	५)

